दान चिन्तामणि

लेखक
प्रो. जी. ब्रह्मप्पा

अनुवादन
एम. के. भारती रमणाचार्य

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)

- **कृति** : दान चिन्तामणि
- **लेखक** : प्रो. जी. ब्रह्मप्पा
- **हिन्दी अनुवाद** : एम. के. भारती रमणाचार्य
- **संस्करण** : प्रथम, जून, 2012
- **आवृत्ति** : 2200
- **मूल्य** : 50/-
- **प्राप्ति स्थान** : धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
  बाहुबली कॉलोनी, सागर
  94249-51771
  dharmodayat@gmail.com
- **मुद्रक** : विकास आफसेट, भोपाल

प्रकाशकीय

कल्याणी के उत्तरवर्ती चालुक्यों के वंश एवं साम्राज्य की स्थापना में जिन धर्मात्माओं के पुण्य, आशीर्वाद और सद्भावनाओं का योग रहा उनमें सर्वोपरि महासती अत्तिमब्बे थीं, जिनके शील, आचरण, धार्मिकता, धर्म प्रभावना, साहित्यसेवा, वैदुष्य, पातिव्रत्य, दानशीलता आदि सद्गुणों के उत्कृष्ट आदर्श से तैलप आहवमल्ल का शासनकाल धन्य हुआ।

इस सम्राट् के प्रधान सेनापति मल्लप की वह सुपुत्री थीं। वाजीवंशीय प्रधान अमात्य मन्त्रीश्वर धल्ल की वह पुत्रवधु थीं। प्रचण्ड महादण्डनायक और वीर नागदेव की वह प्रिय पत्नी थीं और कुशल प्रशासनाधिकारी वीर पदुवेल तैल की स्वनामधन्या जननी थीं।

उत्तम संस्कारों में पली, दिगम्बर गुरुओं का मार्गदर्शन लेकर महासती अत्तिमब्बे ने परोपकार और जिनशासन की सेवा करने का संकल्प लिया था। उस महासती ने अपने जीवन का प्रत्येक क्षण और परिवार की सम्पदा का कण-कण परोपकार में लगा दिया, उसकी प्रकृति इतनी कोमल थी कि वह किसी को दुखी नहीं देख सकती थी, उनकी कृपा जैन और जैनेतर, छोटे-बड़े, सभी पर समान रूप से बरसती थी। स्वर्ण एवं मणि-माणिक्यादि महर्घ्य रत्नों की 1500 जिन प्रतिमाएँ बनवाकर उन्होंने विभिन्न मंदिरों में प्रतिष्ठाापित की थीं, अनेक जिनालयों का निर्माण एवं जीर्णोद्धार कराया था और आहार-अभय-औषध-विद्या रूप चार प्रकार का दान अनवरत देती रहने के कारण वह '**दान चिन्तामणि**' कहलायीं थीं।

वह महान् महिला प्रत्येक दम्पति को एक तीर्थंकर प्रतिमा भेंट करके उनसे कहती - नित्य जिनदर्शन करना और किसी एक ग्रन्थ की पाँच प्रतियाँ करवाकर जिनालयों में स्थापित करना। जिनधर्म की अतिशय प्रभावना करने के कारण महासती अत्तिमब्बे को '**कर्नाटक माता**' के नाम से ख्याति प्राप्त हुई। उनका चरित्र पुराणों में अंकित हुआ। उन महिमामयी श्राविका की धर्मोपासना प्रणम्य है और आज प्रेरणादायक है।

उभयभाषा चक्रवर्ती महाकवि पोन्न के शान्तिपुराण (कन्नड़ी) की स्वद्रव्य से एक सहस्र प्रतियाँ लिखवाकर उन्होंने विभिन्न शास्त्रभण्डारों आदि में वितरित की थीं। स्वयं सम्राट् एवं युवराज की इस देवी के धर्म कार्यों में अनुमति, सहायता एवं प्रसन्नता थी। सर्वत्र उसका अप्रतिम सम्मान और प्रतिष्ठा थी।

अत्तिमब्बे ने गरीब गर्भवतियों महिलाओं को एक हजार अच्छी-अच्छी गाभिन चाँदी की नकेल और सोने की सींगवाली एक-एक गाय दान में दी।

महासती अत्तिमब्बे की एक महत्त्वपूर्ण इच्छा थी कि मैं एक हजार जिन-मुनियों को आहार दान करना चाहती हूँ। वह भी एक साथ। उनकी यह इच्छा भी पूर्ण हुई। हजार से भी अधिक मुनियों को एक ही छप्पर के नीचे शास्त्रोक्त विधि से आहारदान दिया। वह दृश्य कितना अद्भुत रहा होगा।

डॉ. भास्कर आनन्द सालतोर के शब्दों में - जैन इतिहास के महिला जगत् में सर्वाधिक प्रतिष्ठित प्रशंसित नाम अत्तिमब्बे है। अत्तिमब्बे को जिन जननी के समकक्ष माना है। 'बुधजन वंदिता'! 'कविवर कामधेनु'! 'चक्रवर्ती-पूजिता'! 'जिनशासन प्रदीपिका'! 'दानचिंतामणि'! 'विनय चूड़ामणि'! 'सम्यक्त्व शिरोमणि'! 'शीलालंकृता'! 'गुणमालालंकृता'! आदि उपाधियों से अलंकृत किया था।

दक्षिण भारत के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ प्रो. जी. ब्रह्मप्पा ने कर्नाटक की शान महासती अत्तिमब्बे पर कन्नड़ में यह उपन्यास 1965 में लिखा, उसी समय मैसूर विश्वविद्यालय ने इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित करके पुरस्कृत किया। अगले वर्ष श्री रेवतीरमणाचार्य ने राष्ट्रभाषा में अनुवाद करके यह उपन्यास हिन्दी पाठकों को उपलब्ध कराया गया। अनेक वर्षों से अनुपलब्ध इस कृति का प्रकाशन सन् 2001 में चन्द्रगिरि महोत्सव समिति ने पं. नीरजजी, सतना के सम्पादकत्व में किया। पश्चात् अनेक प्रकाशकों ने भी इस कृति को प्रकाशित कर गौरव बढ़ाया। अतः हम उनके आभारी हैं।

धर्मोदय साहित्य प्रकाशन भी इस कृति को प्रकाशित कर गौरवान्वित है। कृति के प्रकाशन की प्रेरणा श्रमण शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के संघस्थ मुनि महाराजों से मिली, जिससे यह कार्य सुलभता से सम्पन्न हुआ। यह कृति जन-जन के लिए दान की प्रेरणा में सहकारी बनेगी, इस पुनीत भावना के साथ पाठकों के करकमलों में सादर समर्पित है।

प्रकाशक

दान चिन्तामणि

1.

जिनचन्द्रमुनि पूर्वाभिमुख करके पीठ पर बैठे थे। होमकुण्ड के भस्म में मुनि के मुख और सिर अच्छी तरह मले गए। तदनन्तर जिनचन्द्र ने अपनी मुट्ठी में केशराशि पकड़ इस भाँति जड़ से उखाड़ी मानों कर्म की जड़ ही उखाड़ रहे हों। दाढ़ी-मूँछ तक ऐसे ही उखाड़ी गई। फिर भी वे हँसमुख थे। अन्य भक्तवृन्द बचे-खुचे बाल उखाड़ने लगे, पर बहुत संभल संभलकर। इस कार्य में अतिमब्बे एवं उसकी बहिन गुंडुमब्बे का उत्साह वर्णनातीत था। वे दोनों इस तरह काम कर रही थीं, मानों जिनमूर्ति का निर्माल्य उतार रही हों।

इन बहिनों को उत्साह सांक्रामिक बना; औरों ने भी इस कार्य में हाथ बँटाना शुरू किया। पर महामुनि जिनचन्द्रजी प्रतिमा के समान बैठे थे। भक्तवृन्द ने मुनि के सिर और मुख के सभी बाल उखाड़ दिए। इस लोंच के समाप्त होने पर जिन-गन्धोदक अच्छी तरह मल दिया गया। इससे मुनि जी इतना प्रसन्न हुए मानों उनको संजीवनी का स्पर्श ही प्राप्त हुआ हो। शरीर पर पड़े हुए बाल पिच्छिका से झाड़ लिए। अत्तिमब्बे के अपने पास बिठाकर मुनि जिनचन्द्रजी ने आशीर्वाद दिया - तुम दोनों सम्यक्त्व चूड़ामणि बनो।

पुंगनूर में जिनचन्द्र जी की यह लोच-क्रिया बड़ी धूम से मनाई गई। जब चालुक्य महामंत्री नागमय्य के नेतृत्व में कार्य आयोजित था तो कहना क्या ? नागमय्य के पुत्र मल्लप और पुन्नमय भी सारा राजकाज छोड़ परिवार सहित उस समारोह में सम्मलित थे। जिनचन्द्रजी उस वंश के कुलगुरु थे।

आप सदा सम्पत्ति-समुद्र में तैरने वाले नागमय्य के परिवार को सही रास्ते पर ले चलने वाले कर्णधार का काम किया करते थे। महा पराक्रमी मल्लप और पुन्नमय पर भी आपका अंकुश था। आपकी अनुमति और आशीर्वाद के बिना न नागमय्य किसी कार्य में प्रवृत्त होता न उनके बेटे ही किसी काम में हाथ लगाते।

लोच के बाद मुनि के केश गुच्छों का नदी में विसर्जन करना था। अतएव सभी राज-मर्यादाओं के साथ जुलूस निकला। राजकीय धुरीण नागमय्य और उनके पुत्र नंगे पाँव चल रहे थे। उनकी भक्ति सराहनीय थी। इस प्रकार केश

विसर्जन क्रिया भी पूर्ण हुई।

उस दिन जिनचन्द्रजी ने व्रत रखा। उस समारोह में सम्मिलित भक्तवृन्द को नागमय्य ने प्रीति-भोज दिया। भोजन के उपरान्त प्रमुखों की सभा हुई। वे सब जिनचन्द्रजी के दर्शनार्थ आए थे। जिनचन्द्रजी के साथ जटाधारी समण पोन्न भी विराजमान थे। पंप कवि भी उपस्थित थे। उन्होंने इन दोनों को साष्टांग नमन किया। दोनों ने आशीर्वाद दिया - 'धर्मवृद्धिरस्तु' कवि पंप ने एक-एक करके अपने परिवार के सभी व्यक्तियों का परिचय करा दिया।

जिनचन्द्रजी ने वार्तालाप प्रारम्भ किया.....

''पंपदेव! इन दिनों में तुम क्यों जड़ भरत बन बैठे हो ?''

जड़ भरत! वे तो महाज्ञानी थे। वे कहाँ और मैं कहाँ ?

पंपदेव खिन्न थे।

''हमारा मतलब भी यही था। पूर्णज्ञानी बनने के बाद ही मौन मुकुट सा शोभायमान बनेगा। तुमने इधर कुछ रचना नहीं की, क्यों ? पादरस (पारे) से रहने वाले तामस बनते जा रहे हो ?''

मुनि जी के कथन में आक्षेप सूचक ध्वनि थी।

''महाप्रभु अरिकेसरी के चल बसने के बाद मुझे कुछ भी नहीं रुच रहा है।''

पंप का गला बैठ गया।

''अरिकेसरी सचमुच महान् थे। उनकी मृत्यु से संसार को बड़ी क्षति उठानी पड़ी है। यह तो ठीक है, पर हम लोगों का कर्तव्य तो है कि जितने दिन जीते रहें तब तक सांस लेते रहें।''

''ठीक है। पर क्या सूरज के डूबने पर कमल खिले रहेंगे ? मेरी स्फूर्ति की साकार मूर्ति थे अरिकेसरी! मेरे उत्साह के उद्‌गम थे अरिकेसरी! मेरे उल्लास के फूल थे अरिकेसरी! ऐसे व्यक्ति को खोकर जिन्दा रहना निर्लज्जता है। यह जीवन व्यर्थ है। अब किसके लिए जिऊँ ?''

पंप की बातों में जीवन के प्रति अनासक्ति का भाव था।

''पंपदेव! एक व्यक्ति के पीछे लोक व्यापार रुक नहीं सकता। यह संसार प्रवाह है। यहाँ आने वाले आते रहते हैं जाने वाले जाते रहते हैं। चंद दिनों के

लिए साथ रहते हैं पर कुछ दिन बाद विवश होकर अपने प्रिय बन्धुओं को छोड़कर जाना ही पड़ता है। आदिपुराण के कवि हो तुम! तुम ही अगर ऐसे बन बैठो तो लोगों का मार्गदर्शन कौन करे ? ऐसे आर्तभाव से क्या तुम्हारा भला होगा ?''

''महात्माजी! मैंने भी कई बार इसी प्रकार सोचा है। औरों को ऐसा ही उपदेश दिया भी है। पर अरिकेसरी का मरण मेरे लिए दुस्सह बना है। उनसे प्रदत्त वस्तु, वाहन, वस्त्रादि को सजाकर देखा करता हूँ तो क्षणभर के लिए विरह व्यथा लुप्त-सी दिखाई देती है। पर दूसरे ही क्षण मुझे ऐसा लगता है मानों एक एक वस्तु मुझे धिक्कारते हुए कह रही हो - देख अरिकेसरी नहीं रहे, तू क्यों रह गया ? अरिकेसरी के दिए गए नव रत्नों को तब देखता था अब भी देखता हूँ पर आँसू बहाते हुए। यह बात स्पष्ट हो गई है कि अरिकेसरी के बिना मेरे लिए स्वर्ग भी नरक रहेगा।'' कवि के आँसू फूट निकले। गला बैठ गया। सारे अवयव भावोद्रेक से काँप उठे।

''पंपदेव! आँसू बहाने से तो केवल आँखें दुखने लगेगी, अरिकेसरी तो नहीं आएँगे। इस दुर्बलता को हटा दो। आत्मा की अमरता की बात सोचो। इसमें तुम्हारा भी हित है और लोक का भी। सुनो! शान्तिपुराण सुनने का मेरा चाव दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। तुम्हारा आदिपुराण एक महान् ग्रन्थ है। तुम्हारा भारत सचमुच हमारे भारत सा महान् एवं अनर्घ है। अतएव शुभ शान्तिपुराण रचो।''

पंप को कार्योन्मुख करने के भाव से जिनचन्द्रजी को कहना पड़ा।

पंप ने उत्तर दिया -

''मैं लिखने लगूँ ? क्या यह संभव है ? अरिकेसरी की चिता में ही मैंने काँटा भी जला दिया। क्या कभी विधवा भी संतान पा सकेगी ? भले ही पावे पर क्या उसका समादर होगा ? पंपदेव से आगे बोलते नहीं बना। उत्तरीय से आँसू पोंछने लगे। इस दृश्य को देखकर सात-आठ वर्ष की बालिका अत्तिमब्बे पंप के पास आई और बोली..... मामाजी आप क्यों रोते हैं ? आपको क्या चाहिए ? आपका क्या खो गया है ? ऐसे कहते-कहते अपने लहंगे की छोर से आँसू पोंछने लगी। दूसरी ओर से गुंडुमब्बे यह कहते-कहते दौड़ आयी कि मामा! तुम्हें क्या हुआ है ? हमारे यहाँ तो कोई नहीं रोता।''

इन दोनों बालिकाओं को पंपकवि ने हाथ पसारकर अपनी ओर खींच लिया। उनकी आत्मीयता से प्रभावित हुए। दोनों को अपनी गोद में बिठा लिया।

भावोद्रेक में उन लड़कियों के आँसू उमड़ पड़े महाकवि ने उनके आँसू पोंछे। बोले – मैं अब नहीं रोऊँगा। तुम्हारी.....। आगे कह नहीं सके।

अत्तिमब्बे ने फिर पूछा – ''मामा, तुम्हें क्या चाहिए ?''

बेटी, जिस वस्तु को खोकर मैं दुःखी हूँ, उसे कोई लाकर नहीं दे सकता.... पंप की वाणी खिन्नता से सनी हुई थी।

''मैं ला सकती हूँ'' गुंडुमब्बे ने आश्वासन दिया।

''मैं भी ला सकती हूँ'' अतिमब्बे ने दृढ़ता से कहा।

''मामाजी! कहो न ? क्या खो गया है ?''

दोनों ने प्रश्न किया।

''बेटी तुम सुनकर क्या करोगी ? हमारे महाराजा चल बसे। समझी ? अब उनको कौन ला सकता है ?''

पंप की माँग अत्यन्त जटिल थी।

पर क्षणार्थ में अत्तिमब्बे ने इसका समाधान ढूँढ़ निकाला और बोल उठी ''हाँ, तुम्हारे राजा चल बसे, पर हमारे राजा तो हैं। मैं उनको बुला लाती हूँ।''

गुंडुमब्बे का उत्तर सीधा था –''मामाजी, तुम हमारे यहाँ ही ठहर जाओ।''

''कौन खिलाएगा ? पिलाएगा ?'' पंप ने तर्क किया। भोली–भाली लड़कियों की बातों में विनोद पा रहे थे।

''मैं करूँगी।'' अत्तिमब्बे ने दृढ़ता से उत्तर दिया।

''मुझे कपड़े ?'' पंप की माँग बढ़ती गई।

''मेरे दादाजी के कई कपड़े हैं, पहन लीजिए। पिताजी की धोतियाँ भी मैं दूँगी''– गुंडुमब्बे ने आश्वासन दिया।

इन दोनों की बातों से पंपकवि का दुःख दब गया। अरिकेसरी जैसी उदारता की मूर्तियाँ इस कर्नाटक में कई हैं– ऐसा सोचकर प्रसन्न हुए।

''देखो पंप जी! बच्चे कितने नादान होते हैं ? इन्हें क्या अभाव है ? केवल सारी दुनियाँ की झंझटों को ढोए दबे जाते हैं, हमारी सांस घुटती जाती है। सच बात तो यह है कि जो बच्चों सा नादान हो वही सच्चा ज्ञानी है। खैर! तुम पुराण लिखना शुरू करो। तुम्हारा शोक वहाँ रस प्रवाह उमड़ा देगा।''

जिनचन्द्र जी ने इन शब्दों से पंप को प्रेरित करने का प्रयत्न किया।

''फिर वही आज्ञा! मुझसे लिखते नहीं बनता। इस जन्म में पुनः न लिखने की मैंने कसम खाई है। आपकी इच्छा तो शान्तिपुराण लिखवाने की है न ?''

'जी हाँ।'

''यह कोई बड़ी बात नहीं। आपकी बगल में ही बैठे हैं न, ये पोन्नजी, ये रामायण की रचना कर चुके हैं। ऐसे कवि चक्रवर्ती के लिए यह कोई बड़ी बात नहीं होगी। ये शान्तिपुराण लिखेंगे। आज्ञा हो।''

पोन्न ने उत्तर दिया।

''देखिए, प्रश्न सीधा है। आपको शान्तिपुराण लिखने का आदेश हुआ है, आप लिखिए।''

''स्वामीजी, मेरा आशय समझिए। मैंने एक लौकिक और एक पारमार्थिक– दोनों रचनाएँ की हैं। आप भी एक पुराण की रचना करें तो बड़ा अच्छा होगा। रामायण सफल लौकिक काव्य है। शान्तिपुराण आपका अलौकिक अर्थात् पारमार्थिक काव्य बन जाये।''

यों युक्ति पूर्वक खिसक जाने का प्रयत्न पंप ने किया।

''पोन्नजी भी लिखें और आप भी लिखिए'' अत्तिमब्बे बोली।

''हाँ–हाँ, आप दोनों लिखें। एक मैं लूँगी। एक मेरी दीदी।''

गुंडुमब्बे ने स्फूर्ति से कहा। अपनी बात पर आप फूली न समाई। नाच उठी। वहाँ उपस्थित सभी लोग इनके भोलेपन से असीम आनंद का अनुभव करने लगे।

पंप ने उन दोनों को प्यार से गले लगाया और पूछा –

''बेटियो, चलो हमारे साथ। हम अपने यहाँ ले जाएँगे।''

''क्यों मामाजी! तुम्हीं ने कहा कि वहाँ राजा की मौत हो गई है। यहाँ राजा हैं, हम यहीं रहें। अत्तिमब्बे ने कहा।''

''क्यों मामाजी! यह स्थान आपको पसंद नहीं आया ?''

गुंडुमब्बे ने प्रश्न किया।

''बड़ा अच्छा है। तुम्हारा यह देश बड़ा उत्तम है।''

पंप ने आश्वासन दिया।

''तो यहीं रह जाओ न'' अत्तिमब्बे ने दृढ़ता से कहा।

''तुम्हारी मामी को तो बुला लाना होगा।''

पंप ने मुस्कुराते हुए कहा।

''हाँ हाँ, उनको बुला लाना है'' गुंडुमब्बे ने स्वीकृति दी।

''यह मामाजी का बहाना है। यहाँ से जाने के बाद फिर नहीं लौटेंगे'' अत्तिमब्बे ने ताड़ लिया।

''ठीक कहती हो बेटी'' जिनचन्द्रजी के ओंठ खिल उठे।

तब तक चुपचाप बैठे हुए नागमय्य ने पंप कवि को अपने यहाँ ठहरा लेने के इरादे से कहा – देखिए, आज रात को कविजी के श्रीमुख से आदिपुराण सुनने का चाव उमड़ रहा है। कौन दरवाजे पर आए इस सुअवसर को जाने देगा ? हमारा अहोभाग्य है। आप हमारी प्रार्थना स्वीकार कीजिए।

''यह बहुत ही उत्तम प्रस्ताव है। शिवरात्रि के दिन प्रथम तीर्थेश का चरित हो। सो भी महाकवि के श्रीमुख से ही। क्या यही आनन्द की बात है।''

जिनचन्द्र जी ने समर्थन किया।

''बहिन! माताजी कहानी सुनाएँगे'' अत्तिमब्बे ने संतोष प्रकट किया।

''ओह! तब तो हम इनको ओझाजी कहें'' गुंडुमब्बे बोल उठी। दोनों आनंद से पुलकित हो रही थीं।

नागमय्य का परिवार बड़ा था। महा साहसी मल्लप और चतुर पुन्नमय्य दोनों उनके पुत्र रत्न थे। उनकी पत्नी न थी। परमात्मा की कृपा से मुँहमांगी सुहागिन की मौत कभी पा चुकी थी। पुन्नमय्य की कोई संतान नहीं थी। पर मल्लप की गोद कभी खाली नहीं रही। नागमय्य की पतोहू, उनकी भावज अब्बकब्बे थी। मल्लप की इस धर्मपत्नी ने कई संतानों को जन्म दिया। गुंडुमय्य, एलमय्य, चिक्कपोन्नमय्य, आहवमल्ल और वल्ल – ये पाँच पुत्र थे। इनके बाद अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे का एक साथ जन्म हुआ था। अब्बकब्बे की तीसरी लड़की थी नागियब्बे। इस प्रकार आठ संतानों की माँ बनकर उस देवी ने नागमय्य का घर भर दिया था।

नागमय्य और जिनचन्द्र समवयस्क थे और बचपन के साथी थे। नागमय्य

ने जिस समय लौकिक कार्यक्षेत्र अपनाया था, उसी समय जिनचन्द्र जी ने आध्यात्मिक क्षेत्र को अपनाया था और संन्यास स्वीकार किया था। नागमय्य ने लौकिक में यश प्राप्त किया, जिनचन्द्रजी ने पारमार्थिक साम्राज्य में अद्वितीय स्थान प्राप्त किया।

नागमय्य के पूर्वज के वेदवेदान्त में पारंगत कौंडिण्य गौत्र के ब्राह्मण थे। इस वेद-विद्या में नागमय्य की काफी पहुँच थी। जिनचन्द्र जी के प्रभाव से उन्होंने यज्ञ-याग का त्याग किया था और जैनागमों का अध्ययन किया। जैनधर्म के अहिंसा तत्त्व से नागमय्य अत्यन्त प्रभावित थे। अतएव, उन्होंने अपनी इच्छा से जैन दीक्षा ली। बाद में इनके परिवार के लोग एक-एक करके जैन दीक्षा लेते गए। उधर देवेन्द्र मुनिजी ने पंप के पिता अभिराम को जिन दीक्षा दी थी।

सर्वत्र जैनधर्म फैल गया। यज्ञ वेदी के स्थान में दया वृक्ष के चबूतरे बनाये गए। यज्ञस्तम्भ पर अहिंसा का ध्वज फहराने लगा।

नागमय्य चालुक्यों के महामात्य थे। चालुक्यों की दूसरी शाखा के आश्रय में पंप कवि थे। पौन्नजी यद्यपि समण थे, फिर भी राष्ट्रकूट दरबार के कवि के रूप में प्रसिद्ध थे। कभी-कभी जैनधर्म सम्बन्धी महोत्सवों में सभी सम्मिलित हुआ करते थे। उन दिनों के संन्यासी राजकीय परिवार में से धर्म रूपी मंदराचल के सहारे कन्नड़ संस्कृति रूपी अमृत निकालने में लगे हुए थे। उन दिनों के राजा महाराजाओं का सिर अहिंसा के सम्मुख आप झुका करता था। वैसे ही उनके अमात्य गण दयावृक्ष के माली बने रहते थे।

जिनचन्द्रमुनि ऊँचे आसन पर विराजमान थे। उनके बगल में समण पौन्नकवि विराज रहे थे। वेदिका पर पंप कवि आदिपुराण का पाठ कर रहे थे। सुन्दर लिखावट थी। सहस्रों पत्र थे। उनको श्रीगंध के पटल के बीच में जोड़कर ग्रन्थ बनाया गया था। श्रीगंध के उन पटलों के चौकोर सोने के मढ़े गए थे। सोने में सुगन्ध की बात यहाँ चरितार्थ दिखाई दे रही थी। उस सुगन्ध में मानो धर्म की शीतलता ने चार चाँद लगा दिए थे।

आदिपुराण ग्रन्थ बड़ा मनमोहक था। कदली-गर्भ-श्याम पंप कवि भी बड़े आकर्षणीय व्यक्ति थे। न अत्यन्त ऊँचे कद के थे, न छोटे ही। देखने वाले देखते ही रह जायें, ऐसा व्यक्तित्व था। खिले कमल-सा मुख, नीलोत्पल से विकसित नेत्र, विशाल और उन्नत भाल, घुंघराले केश, अखाड़े की साधना से गठित सुन्दर शरीर - इस प्रकार के कन्नड़ देश के नवमन्मथ से थे। यों तो ढलती

उम्र थी, पर देह की कान्ति में जरा भी मलिनता नहीं आई थी। दो महर्षियों के बीच में रस-सेतु के समान पंप कवि विराजमान थे। एक ओर कर्मबन्ध से मुक्त जिनचन्द्र जी थे। उनके केश-लोमरहित सिर और मुख देखते ही बता देते थे कि यहाँ कर्म की जड़ कट गई है। दूसरी ओर जटाधारी समण पौत्र थे। उनके जटाबंध देखते ही ऐसा भाषित होता था कि कर्म भले ही हो - पर मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकेगा, क्योंकि मैंने उसको अपने हाथों कस लिया है। ऐसे दोनों के बीच में पंप महाकवि आसनारूढ़ थे।

नागमय्य के यहाँ आँगन में उस ग्राम के सभी श्रावक एकत्रित थे। वहाँ एक चबूतरा बना था। उस पर समवसरण का दृश्य सजाया गया था। सोने का समवसरण था। रत्नों का तोरण लगा था। चाँदी के खम्भे थे। स्फटिक मणि के तीन पीठ रखे हुए थे। अंतिम पीठ पर केसर फैलाये हुए चारों ओर मुँह किए चार सिंह थे। सिंहों के पीठ से लगे खिले हुए रक्त कमल थे। इन कमलों पर जिनबिम्ब रखा हुआ था। वह पारदर्शक पीत शिला की मूर्ति थी। उस मूर्ति के पीछे घी का दिया प्रज्वलित था। उस मूर्ति से छनकर आने वाली दीप किरणों ने सुवर्ण रश्मि का भ्रम फैला दिया था। श्रावकों को ऐसा लगा मानों वे सचमुच समवसरण ही देख रहे हों।

जब कभी नागमय्य का भक्ति-भाव उत्कर्ष दशा तक पहुँच जाता ऐसे दृश्यों को सजाकर चरितार्थ हो जाता। नागमय्य ने इन दिनों में राजकाल का सर्वथा त्याग किया था। अपने सुयोग पुत्रों पर यह भार डालकर आप आध्यात्मिक साधना में लगे हुए थे। परिवार के लोग नागमय्य से व्यर्थ के संभाषण में भय मान रहे थे। अतएव कोई उनसे बातें नहीं करता था। केवल अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे में इतना साहस था कि दादाजी के गले लगकर खेला करती थीं। यह देख घर के लोगों ने इन्हीं दोनों के जिम्मे नागमय्य की सुख-सुविधाओं की बात छोड़ रखी थी। नागमय्य की आध्यात्मिकता का प्रभाव इन दोनों पर भी पड़ा था। जब चाहें तब ये बालिकायें आप ही समवसरण की झांकी सजा देती थीं और स्वयं इन्द्राणी बन जाती और जिनमूर्ति को गोद में लेकर खिलाती थी। आज तो इनके उत्साह का पारावार उमड़ पड़ा था।

समवसरण की एक ओर जिनचन्द्र और पोन्न के बीच में पंप कवि सुखासीन थे तो दूसरी ओर नागमय्य एवं दो-एक गण्य व्यक्ति बैठे हुए थे। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे के अभिनय का प्रबन्ध भी हुआ था।

अत्तिमब्बे इन्द्र बनी हुई थी। गुंडुमब्बे बनी थी इन्द्राणी। आदिदेव के गर्भावतरण-कल्याणक का जब अभिनय हुआ तो देखने वालों को इतना आनंद हुआ मानों बांझ ने संतान को जन्म दिया हो। निर्मल अंतःकरण वाले बच्चों का खेल ही मनमोहक होता है। ये दोनों मानो नई चमेली थीं। मुक्तिद्वार-सी अहिंसा कांति से आकर्षक मुखाकृति थी। मूर्तिवत् दया दाक्षिण्य ये दो नेत्र थे। सृष्टि के रहस्य को बाहर ला रखने वाली पैनी ठुड्डी थी। उनकी उभरी हुई ठुड्डी से पता चलता है कि ये दोनों देखने में जितनी कोमल है, उतनी ही व्रत-नियमों के पालन में दृढ़ भी हैं। भरे हुए गाल थे। लता को भी लजाने वाली देह देखने वालों का चाव क्षण-क्षण बढ़ाती रहती। कारण यह कि ये सुन्दरियाँ अभिनय करते समय जिस किसी मुद्रा में खड़ी होती वहीं एक नूतन आकर्षण भंगिमा बन जाती थी।

गर्भावतरण का अभिनय पहले हुआ। जब तीर्थंकर पुरी में रत्नवृष्टि होने के दृश्य का अभिनय हो रहा था तब दर्शकों के सम्मुख असली रत्नों की झड़ी लगा दी गई थी क्योंकि नागमय्य ने इसका प्रबन्ध कर दिया था। पर श्रावकों का मन इन सुंदर बालिकाओं के कलापूर्ण अभिनय में इतना मग्न था कि ये रत्न ज्यों के त्यों पड़े रहे। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे दोनों ने अंजुलियों में भर-भर कर श्रावकों की ओर रत्नों को उछाला। नखशिख तक नवरत्नों से अलंकृत कुसुम कोमलता में भी व्रत-नियमादि में दृढ़ता के द्योतक उभरी ठुड्डियों वाली ये कन्याएँ साक्षात् कुसुमित कल्प वेलि-सी लग रहीं थीं। यद्यपि ये दोनों हथेलियों में रत्नों को भर-भर कर श्रावकों की ओर फेंका करतीं थी पर वहाँ कोई इन जड़ रत्नों की ओर ध्यान नहीं दे रहा था। जिस प्रकार उस समवसरण में तृप्ति का साम्राज्य था, उसी प्रकार की तृप्ति इस समवसरण में भी थी। तृप्ति और आनन्द का ही साम्राज्य था।

जन्माभिषेक कल्याणक का अभिनय प्रारम्भ हुआ। तब श्रावकों के नेत्रों से आनंद वाष्प बह निकला। देवेन्द्र बनी अत्तिमब्बे ने इन्द्राणी बनी हुई गुंडुमब्बे को अंदर भेजा और उसकी प्रतीक्षा करती हुई सी उत्कंठ-मुद्रा में खड़ी रहीं। इन्द्राणी का कार्य गुरुतर था, क्योंकि जिन शिशु को ले आना था। वहाँ पहले उसकी माँ को मोह निद्रा में सुलाकर दूसरे माया-शिशु को वहाँ रखना था। तब जिन-शिशु को गोद लिए आना था। उस दृश्य का अभिनय इस सफलता के साथ उसने किया कि उसमें अभिनय का भ्रम ही नहीं रहा। सबके सब पुलकित हुए।

बाहर जिन-शिशु के दर्शनार्थ उत्कंठित होकर खड़े हुए इन्द्र ने अर्थात्

अत्तिमब्बे ने, उस शिशु को देखते ही इस ममता के साथ उसे गोद में उठा कर गले लगाया कि सचमुच वहाँ उपस्थित माताएँ भी मात मानें। तत्पश्चात् उस जिन शिशु को ऐरावत पर बिठाकर मेरुपर्वत ले जाने का अभिनय हुआ। वहाँ ले जाने पर पाण्डुक शिला पर बिठाकर क्षीरसमुद्र के फेनिल पय से क्षीराभिषेक हुआ। यों तो जिन-मूर्ति पर सचमुच क्षीराभिषेक कर दिया। इस मोहक दृश्य में श्रावक ऐसे तल्लीन थे कि उसे अभिनय और यथार्थ में अंतर का अनुभव ही नहीं हो रहा था। इस प्रकार इन बालिकाओं ने पंचकल्याणक महोत्सव का अभिनय कर दिखाया कि श्रावकों का चित्त रससिक्त हुआ और देह आनंद पुलकित। उस दृश्य को देखते हुए नेत्र टकटकी बाँधे रह गए।

पंप महाकवि यह दृश्य देखकर पुलकित हुए। उनकी दृष्टि में अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे दोनों काव्य-कलिका सी लगीं, जिनचन्द्रजी का भक्तिभाव उद्याप्त था। पोन्न कवि रस प्रवाह में बह गए। नागमय्य ने नेत्रों से आनन्द वाष्प बह निकला। अभिनय समाप्त हुआ कि नागमय्य ने इन दोनों लड़कियों को वेषभूषा उतारने का भी समय नहीं दिया, यों ही गोद में बिठाकर वात्सल्य भाव से गद्‌गद् हो गए। स्त्रियों की पंक्ति में सबके सामने बैठी हुई अब्बकब्बे मानों पयोंबुधि में तैर रही थी। चालुक्य महामात्य दल्लप नागमय्य बगल में ही बैठे थे। अतएव ज्योंही नागमय्य की गोद में इन बालिकाओं को देखा त्योंही उनको अपनी गोद में बिठा लिया और उनको इस भाँति कसकर गले लगाया मानों यह बताना चाहते हों कि वे कभी अपने हाथ लगी इन निधियों को पराए हाथ नहीं सौंप सकते।

पंप कवि के काव्यवाचन सुनने का चाव श्रावकों में क्षण-क्षण बढ़ रहा था। कवि के सम्मुख ग्रन्थ सजा हुआ था। अरिकेसरी ने श्रीगंध एवं सोने के पटलों पर काव्य लिखवाया था। पंप कवि को सुवर्ण-संपुट भेंट में दिया था।

प्रथम तीर्थेश के दिव्य जीवन चरित को एक ओर पंप महाकवि ने महाकाव्य में निबद्ध किया था तो दूसरी ओर अरिकेसरी ने उस महाकाव्य का सुवर्ण संपुट निकाला था। पंप कवि के सुवर्ण संपुट में चाँदी के रत्नजड़ित चौखट थे। पंप कवि ने सर्वप्रथम काव्य से मंगलाचरण के पद्य सुनाये। पंचपरमेष्ठियों का स्मरण भक्ति भाव से किया। पंप की वाणी दुंदुभि-स्वर के समान लग रही थी। पंप कवि के श्यामल मुख की सित दंत पंक्ति शुक्ति में स्थित मोती का स्मरण दिला रही थी।

आदिदेव का दिव्यवृत्त, स्वयं कवि के श्रीमुख से जो संदर्भानुसार रागरागिनियों में अभिव्यक्त हो रहा था तो, सुनने वाले श्रावकों के भाग्य का द्वार ही मानों खुला हुआ था।

यद्यपि जयवर्मा ज्येष्ठ पुत्र थे पर उनके पिता अपने कनिष्ठ पुत्र को राज्य देकर चल बसे। इससे जयवर्मा को बड़ा आघात पहुँचा। नागरिक जीवन से जी ऊब उठा। कानन की ओर आकृष्ट हुए, विरक्त बने। अपने हाथ से अपने सिर के बालों को कसकर उखाड़ लिया और जिनदीक्षा ली। पंचनमस्कार जपते-जपते जयवर्मा उन केशों को अपने हाथ से वामी में डालने लगे तो सहसा सांप ने काट लिया। उसी समय आकाश में एक विमान दिखाई दिया। एक ओर विष की लहर चढ़ रही थी, दूसरी ओर खेचर दम्पति की रसीली प्रेम पगी बातें सुनाई दे रही थीं, उनकी मनमोहक आकृति मन को बरबस अपनी ओर खींचे जा रही थी। परिणाम यह हुआ कि जयवर्मा के मन में वैसे ही खेचर बनने एवं ऐसे ही विषय भोग करने की लालसा प्रबल हो उठी। उस खेचर विमान के साथ इनके अंतरंग की कल्पनाएँ भी उड़ने लगीं। इसी धुन में जयवर्मा के प्राण पखेरू उड़ गए। इस कथा का सुंदर निरूपण पंप महाकवि ने किया। वहाँ उपस्थित सहृदयों पर मानों जादू फिर गया। इधर कर्म के उत्थान-पतन रूपी उत्पात का साक्षात्कार केवल जिनचन्द्रजी को हुआ, अतएव आप बड़े खिन्न बने। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे की समझ में यद्यपि कोई बात नहीं आई फिर भी पंप कवि की गंभीर ध्वनि में डूब सी गई थीं। अतएव वे एकाग्र भाव से सुन रही थीं।

कथा आगे बढ़ी। जयवर्मा अगले जन्म में महाबल खेचर बने। उनके अंत:करण में जो-जो लालसाएँ अंतिम क्षण में जाग्रत हुई थीं सभी व्रत के प्रभाव से अब पूर्ण हुईं। उन्होंने अपने को धन्य समझा। उनके स्वभाव के अनुरूप सचिव भी मिले, जिससे महाबल की भोगलालसा दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी। पर स्वयंबुद्ध नामक एक अमात्य भी था, जो कभी-कभी भोगों की नश्वरता का स्मरण दिलाया करता था। परिणाम यह हुआ कि महाबल खेचर अपने अंतिम दिनों में परम विरक्त बने। उन्होंने भोगों का त्याग किया, दिगम्बर बने। इस प्रकार अंतिम सांस छोड़ी। पंप महाकवि ने महाबल के धार्मिक जीवनोत्कर्ष का बड़ा आकर्षक वर्णन सुनाया। श्रावकों के मन पटल पर उनका चित्र चढ़ गया। यहाँ तक कि अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी पंप महाकवि के काव्य की कमनीयता का अनुभव करने लगीं।

महाबल खेचर का जीवन समाप्त हुआ। ईशान कल्प में एक सहस्रदल कमल विकसित हुआ। उसमें से षोडशवर्षीय एक देव प्रकट हुआ। स्वयं आश्चर्य चकित हो वह चारों ओर देखने लगा। तब वहाँ उपस्थित वृद्धों ने कहा – तुम पूर्वजन्म में महाबल थे। अब तुम्हारा जन्म देवयोनि में हुआ है। तुम्हारा नाम ललितांग रहेगा।

देवांगनाओं के साथ नित्य रास लीला में ललितांग का जीवन चाव से ढलने लगा। नित्य नया रंग रचा जाता। स्वयंप्रभा नामक देवांगना पर ललितांग विशेष आसक्त रहा। चिरकाल तक उसके प्रणय सिन्धु में बैठा रहा। देवलोक में भी मृत्यु आ धमकी। ललितांग को मृत्यु की सूचना मिली। उसके सहजाभरण और सहज कुसुम मालाएँ मलिन हो गयीं। शरीर की कांति फीकी पड़ गई।

मौत की आहट पाकर ललितांग कांप उठा। कसकर कल्पवृक्ष पकड़ लिया और आयु की मांग की। कामधेनु के चरणों पर लिपटकर मृत्यु से बचाने की प्रार्थना की। चूड़ामणि को गले बाँधकर गिड़गिड़ाया। अंत में अपनी प्रेयसी स्वयंप्रभा की शरण में गया। उसे सबकी सहानुभूति यथेष्ट प्राप्त हुई पर कोई उसे एक दिन के लिए भी नहीं बचा सका। वहाँ के वृद्धों ने कहा – यद्यपि यह देव लोक है, फिर भी यह नाशवान है। मरने के लिए ही हमारा जन्म होता है। अतएव शोक का त्याग करो और बचे हुए दिनों को जिनेन्द्र के भजन में बिताओ।

ललितांग में विवेक जाग्रत हुआ। बचे हुए छह महीनों को जिनबिम्ब के दर्शन और पूजा में लगाया। देवांगनाओं ने पूजा द्रव्य जुटा कर हाथ बँटाया। कल्पवृक्ष ने फल दिया। कामधेनु से जिनाभिषेक के लिए अमृतधारा प्राप्त हुई। जिनबिम्ब की चरण सेवा करते करते, पंचनमस्कार जपते–जपते ललितांग ने प्राण–त्याग किया। महाकवि पंप ने इस भाँति ललितांग के स्वर्गच्युत होने के प्रसंग का वर्णन सुनाया कि सब अनुभव करने लगे मानों वे स्वयं स्वर्ग से वंचित हुए हों।

तदनंतर पंप कवि ने स्वयंप्रभा के विरह का वर्णन किया। इससे श्रोताओं का कोमल अंतःकरण पिघल कर बह उठा। सबको आँसू बहाते देखकर अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी आँसू बहाने लगीं।

ललितांग का अगला जन्म मानव पर्याय में हुआ। मर्त्य लोक में उसका नाम वज्रजंघ पड़ा। स्वयंप्रभा असह्य विरह ताप से चल बसी। वह भी इस लोक में आई। उसका नाम श्रीमती था। यहाँ श्रीमती और वज्रजंघ का विवाह हुआ। उन्होंने

अबाधित रीति से दीर्घकाल तक अनंतसुख भोगा। एक दिन की बात है। सेवकों ने इनके शयनागार में सुगंध-धूम लगाकर गवाक्ष बंद किया। ऐसा नित्य किया करते थे। पर उस दिन के बाद में गवाक्ष खोलना भूल गए, धुँआ अधिक उड़ने लगा। इधर दैव प्रेरणा से उन्होंने खिड़कियों को इस भाँति बंद किया कि मंद मारुत तक झांक कर उनके प्रणय सुख में बाधा नहीं डाल सके। परस्पर गलबाही किए रात भर विहार करते रहे। पर उसी मुद्रा में न जाने कब इन दोनों के प्राण पखेरू उड़ गए। सबेरे सेवकों को कलेवर मात्र मिले। यही तो प्रणय जीवन का आदर्श है। पंप कवि ने इस अध्याय को समाप्त किया। श्रोताओं की भावुकता रस-धारा बन बह चली।

अगले जन्म में इन दम्पति का जन्म भोग-भूमि में हुआ। वहाँ चारण मुनियों को भक्ति से भिक्षा-दान करने के पुण्य-प्रभाव से अगले जन्म में भोगभूमिजा स्वयंप्रभा स्त्री जन्म से निवृत्त होकर स्वयंप्रभ देव बन गई। तदनन्तर जन्म में श्रीधरदेव सुविधि नामक महाराजा बने। स्वयंप्रभ सुविधि का पुत्र केशव बना। इस प्रकार पंप कवि ने आदिदेव बनने तक की भवावली का निरूपण संक्षेप में सुना दिया।

आदिदेव बड़े राग रसिक थे। उनकी रसिकता में उनकी प्रेयसी यशस्वती एवं सुनंदा के योग से चार चाँद लगे। दिन दूनी रात चौगुनी वेग से उनकी रसिकता रंग पकड़ने लगी। तीन लोक के गुरु बनने वाले आदि तीर्थंकर संसार में ऐसे मग्न हुए मानों संसार को ही जीवन का सार-सर्वस्व मान रहे हों। आपको जगाने के लिए देवेन्द्र को नीलांजना के नृत्य की व्यवस्था करनी पड़ी। लता सी कोमल, मदन चाप सी, आमधुराकार, उस सुंदरी को झूले पर झूलते हुए देखकर आदिदेव भी आसक्त बने। पर उस सुर-वारवनिता का अंत उस रंगशाला में ही हुआ। मानों कला में वह कमनीय कांति लीन हो गई। रंग में भंग न हो, इस आशय से यद्यपि देवेन्द्र ने उसकी प्रतिकृति सृष्टि करके अभिनय को चालू रखा।

आदिदेव ने इसे ताड़ लिया। उनको अपने जीवन का लक्ष्य स्पष्ट दिखाई देने लगा। जातरूपधर बन षण्मास तक तप किया। भिक्षाटन करते और छह महीने बिताए। पिछले भवों में स्वयंप्रभा, श्रीमती, भोगभूमिजा आदि बनकर आदिदेव के जीवन को रसमय बनाने वाली आत्मा, उस जन्म में श्रेयांस बन, प्रतीक्षा कर रही थी। जैसे ही उसने आदिदेव को अपने द्वार पर देखा, ईख के रस से उनके अंजली -पुट को भर दिया। उसका पान करते आदिदेव संतृप्त हुए। आगे चलकर कुछ

समय तक आदिदेव तप करते रहे। अंत में उनके घातिकर्मों का नाश हुआ और वे जिनेन्द्र बने। तीनों लोकों में जीव के नाना जन्मों के कारणभूत कर्म की जटिलता का स्वरूप उन्होंने जाना और उससे निवृत्त होने का उपदेश दिया, कर्म से छुटकारा पाने का उपाय भी सुझाया।

पंप महाकवि की दिव्य वाणी ने इस प्रकार आदिदेव के दिव्य जीवन का जीता जागता वर्णन सुना दिया।

तब तक रात बीत गई थी और उषाकाल की रमणीय छटा छाई हुई थी। श्रोतागण महाकवि का यशोगान करते अपने-अपने घर गए। अत्तिमब्बे दौड़कर पंप के पास आई और बोली ''मामाजी बड़ी सुन्दर कथा है।''

इतना कह अपने कंठ से मुक्ताहार निकालकर पंप के गले में पहना देना चाहती थी कि उधर गुंडुमब्बे भी भागते-भागते आई और बोली - तुमने तो मामाजी, हम लोगों को देवलोक के दर्शन करा दिए - यों कहते-कहते वह अपनी रत्नांगुलीय को उतारकर पंप कवि की अंगुली में पहनाने का उपक्रम करने लगी।

''देखो बेटा! तुम्हारे यह गहने मुझे नहीं चाहिए। क्या तुम मुझे मनचाही दे सकोगी ?''

ऐसा कह क्षण भर उनका कुतूहल-पूर्ण और उदार मुख देखकर उनको अपनी ओर खींच लिया और उनके मुग्धमुखों का चुम्मा लेते हुए कहा - ''यह चाहिए, समझी'' दोनों से अपना मनचाहा पुरस्कार पाकर कवि अपने को धन्य समझने लगे। अवर्णनीय वात्सल्य रस में बह गए।

❑❑❑

2.

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे का विद्याभ्यास जिनचन्द्र जी के यहाँ होने लगा। प्रतिभावान शिल्पी के हाथ में पड़ने पर कड़ा पत्थर भी सुन्दर विग्रह बन जाता है तब अमृतशिला का कहना ही क्या ? शिल्पी का श्रम कम होगा और मूर्ति भी सुंदर बनेगी। इन दोनों लड़कियों की शिक्षा सुदृढ़ धार्मिक नींव पर प्रारम्भ हुई। उस नींव पर महाकाव्य के सौन्दर्य और संदेशों का महल खड़ा कर दिया गया। सुन्दर शरीर श्री से युक्त इन बालिकाओं को संगीत एवं नर्तन में भी शिक्षा दी गई। खिले हुए कमल से निकलने वाले मकरंद पान मत्त भ्रमर के समान स्वर उनके मुखारविंद से निकला करता था।

नागमय्य का घर क्या था, कवियों और कलाकारों का मिलन स्थल था। वह उनके लिए आश्रयदाता साक्षात् सुरतरु थे। प्रातःकाल से संध्या तक वहाँ रसधारा प्रवाहित रहती थी। धार्मिक सिद्धान्तों का निरूपण भी होता रहता था। ऐसे वातावरण में रहने वालों पर विशेष कर बच्चों के मन पर उसका प्रभाव पड़ना अनिवार्य ही था। श्रीगंध के कारखाने में जाने पर चाहे या न चाहे शरीर सुगंधि से लिप्त होता ही है।

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे दोनों वीर पुत्रियाँ थीं। मल्लप इनके पिता थे, और परमवीर नागमय्य दादा। आगे चलकर इन लड़कियों को किसी न किसी वीर की बहू बनना ही था। अतएव छात्र वातावरण में रहने वाली इन लड़कियों ने क्षत्रियोचित विद्याएँ भी सीख लीं। तलवार की धनी बन गईं। घुड़सवारी में सहज ही निपुण बन गईं। भाईयों के समान दोनों पहली श्रेणी की तीरंदाज भी बन गई। मछलियों की संतानें क्या किसी से तैरना सीखती हैं ?

वसंत मारुत के स्पर्श से पुलकित कल्पना-सी दोनों लड़कियों ने तारुण्य में प्रवेश किया। सहज सुंदर इन तरुणियों पर संस्कृति का तिलक और क्षात्र तेज की रोली खूब फब रही थी। इनको देखने से अभी-अभी सुनार के यहाँ से आई सुवर्ण प्रतिमा का भान हो रहा था। यद्यपि दोनों लड़कियाँ यौवन में पदार्पण कर चुकी थीं, पर नागमय्य की दृष्टि में अभी तक वे दुधमुँही-सी थीं।

जिनचन्द्र मुनि अत्यन्त वृद्ध बने। कमर झुक गई। हाथ पैर कांपने लगे। आँखें कम सूझ रही थीं। बिना शोधे जिनमुनि अन्न स्वीकार कर नहीं सकते थे। इधर नागमय्य की उम्र भी करीब-करीब वही थी। पर अखाड़े में गठित बदन था। अभी शक्ति कुंठित नहीं हुई थी। पर आध्यात्मिक चिंतन में सदा व्यस्त अंतःकरण संसार से ऊब उठा था।

एक बार जिनचन्द्रजी ने कहा - ''नागमय्य! मुझे अब सल्लेखना दीक्षा लेनी होगी।'' नागमय्य के सिर पर मानों बिजली टूट पड़ी। कुछ नहीं बोले।

''क्यों चुप हो ?'' जिनचन्द्र जी ने और छेड़ा।

''जी, जब आप सल्लेखना ग्रहण करेंगे तब मेरा क्या होगा ?''

''तुम्हारा क्या होगा ? यहाँ कौन किसका है ? सब अपना-अपना देख लेते हैं। अपना राग और अपनी डफली, यही दुनिया की रीत है। अब मेरा जिन्दा रहना ठीक नहीं क्योंकि अब मेरा जीना क्या है, अधिक से अधिक व्रत भ्रष्ट होना और औरों पर बोझा बन कर रहना है। जिस दिन शरीर भिक्षाटन के लिए असमर्थ हो जाये उसी दिन सल्लेखना लेने की विधि है।''

''जो हो। अब तक मैं जिन्दा हूँ, आपको सल्लेखना ग्रहण करने की आवश्यकता नहीं है। आपके बिना मैं जीवित रहना नहीं चाहता।''

यों कहते-कहते नागमय्य का गला बैठ गया। अस्सी वर्ष से साथ-साथ जीवन बिताया था।

''नागमय्य! देखो यह मोह-कर्म तुम्हें सता रहा है। इतने दिनों तक धार्मिक क्षेत्र में साधना करने पर भी तुम्हारा अज्ञान दूर नहीं हुआ। बताओ, मैं कौन हूँ और तुम कौन हो ? जब शरीर तक हमारा अपना नहीं है तो और किसका भरोसा है ? शरीर तक कर्म का परिणाम है। आत्म-विकास के मार्ग में वह भी बंधन है। इस कर्म का नाश करना ही होगा। जब तक व्याकरण, अलंकार, छन्द आदि रस के पोषक बने रहते हैं तब तक काव्य में उनका स्थान है। जब उनसे रसास्वादन में विघ्न हो या रसाभास का वे कारण बनें तो उनको काव्य से हटाना ही होगा। इसी भाँति इस देह का स्थान-मान भी है। अब तक यह शरीर तपस्या के लिए उपयुक्त था। अब यह थका हुआ है। अब मानों यह कह रहा है कि अब मुझसे सहा नहीं जाता। अधिक मत सताओ। बेचारे पर मैं अधिक बोझ डालकर दबाना नहीं चाहता। अतएव सल्लेखना ग्रहण करने की स्वीकृति दे दी।''

'महाराज', नागमय्य बोले ''आप बड़े अनासक्त हैं। अनायास ऐसी बातें करते जा रहे हैं, पर मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है।''

''नागमय्य! महर्षियों की महानवमी मौत ही है। क्या तुमने श्रवणबेलगोल में नहीं देखा ? पद-पद पर सल्लेखना की महिमा-द्योतक फलकें लगी हुई हैं। शिला पर अंकित सल्लेखना व्रती महर्षियों की नामावली का भी कोई अंत है ? वे आज भी नक्षत्र की भाँति जाज्वल्यमान हैं। जीवन भर समाधि-मरण की कामना करते हुए अंतकाल में उसे पाकर धन्य बने महर्षियों के जीवन वृत्त को अपने सिर आँखों पर रखकर विश्व को सुनाने वाली ये चट्टानें क्या भुलाई जा सकेंगी। श्रवणबेलगोल मानों इनका आगार है। समाधि-मरण का प्रधान केन्द्र है।''

जिनचन्द्रजी की वाणी में आवेग का कंपन स्पष्ट था।

''गुरुजी, तब आप मुझे भी वह व्रत दे दीजिए। मैं आपका अनुचर हूँ। जीवन भर आपके मुँह से कभी नहीं निकला है। पूजा समय साथ देने वालों को क्या कोई प्रसाद बाँटते समय खाली हाथ बाहर कर देगा ? मुझे भी सल्लेखना की दीक्षा दी जाए।''

नागमय्य आँसुओं से मुनि के चरण धो रहे थे।

''अरे नागमय्य, उठो। मैं तपस्वी हूँ और तुम भाव तापसी हो। तुमने साधु-संतों की सेवा करते-करते कर्म को मंगल स्रोत बना लिया है। कवियों के भाग्य का कल्पवृक्ष बनकर तुमने लोभ को कुचल डाला है। दीनों के लिए कामधेनु बनकर तुमने विश्वानुकंपा की साधना की है। उस दिन जब तुम्हारी पोतियों ने गर्भावतरण का अभिनय किया था, तुमने सचमुच की रत्न-वृष्टि करके पुराणों में लिखी बात को प्रत्यक्ष कर दिखाई थी। तुम बड़े महानुभाव हो। यदि मैं चल बसूँ तो मुझ जैसे दस-एक विरक्त तुम्हारे आश्रय में आ सकते हैं। अब धैर्यपूर्वक मुझे सल्लेखना की अनुमति मिल जाए।''

मुनि जी ने धीरज बँधाया।

''गुरुजी! आपका कहना यथार्थ है। पर आप निरशन करते-करते घुलते जायें और मैं देखता रहूँ। यह नहीं हो सकता।''

नागमय्य की वाणी कांप रही थी।

''नागमय्य! अनंत काल से मेरे अनंत जन्म हुए हैं। न जाने कितनी बार जन्मा और कितनी बार मरा हूँ। मरने के लिए जन्मा। जन्म लेने के लिए मरा।

कितने भवों में कैसे-कैसे निकृष्ट जीवन बिताए हैं ? स्त्रियों के पीछे मरने वालों की क्या कमी है ? जमीन-जायदाद के लिए हाय-हाय करने वालों की क्या गिनती है ? कनक के पीछे काल के कवल बनने वाले पुरुष कितने नहीं होंगे ? किसी ने इसका हिसाब लगाया है ? पर धर्म के नाम पर मरने वाले कहाँ मिलते हैं और मिलें भी तो कितने मिलते हैं ? जब करना अनिवार्य है तो धर्म के नाम पर क्यों न मरें। आत्मोद्धार के निमित्त मृत्यु को क्यों न गले लगावें, मनोदौर्बल्य को दूर करो। उठो! हृदय से इस सल्लेखना का अनुमोदन करो। अनुमोदन-पुण्य तुम्हारा हो।''

जिनचन्द्रजी ने सांत्वना दी।

''सुनिए! मैं आपके सन्मार्ग का रोड़ा नहीं बन रहा हूँ। मैं तो केवल अपने लिए सल्लेखना व्रत की दीक्षा माँग रहा हूँ। यदि उस महाव्रत से आपकी भलाई होगी तो क्या मेरी भलाई नहीं हो सकती ? आपके साथ मैं भी अन्नोदक त्याग कर बैठ जाऊँगा।''

''अर्जुन के साथ रहकर कायर उत्तरकुमार भी साहसी बन गया था। उसी भाँति आपके साथ रहकर मैं भी व्रती बनना चाहता हूँ। आप अनुग्रह कीजिए। मेरी कामना पूर्ण हो।''

पति के साथ चितारोहण करने वाली सती के समान नागमय्य अनुमति के लिए गिड़गिड़ा रहे थे।

जिनचन्द्रजी आवाक् बने। क्या किया जाए ? नागमय्य को सल्लेखना दीक्षा दें तो उसके परिवार के लोगों पर क्या बीतेगा ? वे क्या कहेंगे ? ऐसे सोचते-सोचते फिर भी नागमय्य की थाह लेने के संकल्प से बोले।

''नागमय्य! मैं तुम्हें सल्लेखना नहीं दे सकता। तुम गृहस्थ हो। तुम्हें अनवरत साधना करते-करते क्रमशः महामुनि का पद प्राप्त करना होगा। तभी महाव्रतों के अनुष्ठान का अधिकार प्राप्त होगा। क्षणिक आवेश में आकर सहसा व्रत ले बैठना ठीक नहीं। सल्लेखना का अर्थ केवल अन्न जल का त्याग नहीं है। रागद्वेष का सर्वथा त्याग करना होगा। मृत्यु को प्रेयसी के समान गले लगाना होगा। बिना साधना के ऐसे महाव्रतों की दीक्षा नहीं लेनी चाहिए।''

नागमय्य ने दृढ़ता से उत्तर दिया -

''गुरुदेव! क्या मैं कोई बच्चा हूँ ? भूसुर कुल में मेरा जन्म हुआ है। क्षात्र

में जीवन बिताया है। मन जैनधर्म की श्रेष्ठता पर मुग्ध हुआ है। मेरे चारों ओर सदा धार्मिक वातावरण रहा है। उसी से मेरा जीवन ओत-प्रोत है। तिसपर आप गुरु होते हुए अपने शिष्य पर संदेह करें तो मैं क्या कहूँ ? न जाने मेरी क्या दुर्गति होगी।''

''नागमय्य! तुम्हारा आग्रह माना भी जाये तो एक बात विचारणीय है। सल्लेखना देने के सम्बन्ध में अनेक बातों पर विचार करना पड़ता है। जब चाहे तब दें या लें - ऐसा यह व्रत नहीं है। यदि देश में अकाल पड़ा हो या शरीर में असाध्य रोग घर कर बैठा हो या शरीर अत्यन्त दुर्बल हो गया हो तो साधक सल्लेखना ले सकता है।''

''ठीक है। यह तो सामान्य नियम है पर जिनचन्द्रजी के शिष्यों के लिए यह नियम लागू नहीं हो सकता। इसका अपवाद भी अवश्य होगा।''

''तुम्हारे पुत्र मानें तो मेरी कोई आपत्ति नहीं।''

''महाराज! क्या यह ठीक है ? कटघरे में पड़े हुए शेर को छुटकारा पाने के लिए क्या शिकारी की ही अनुमति लेनी होगी ? मौका पाते ही भाग खड़े होने में ही बुद्धिमत्ता है। आपने मुझे जिनदीक्षा दी है। अब यह दीक्षा देने में आना-कानी क्यों ? जब जैन ही बन गया तो जैनों का महाव्रत क्यों न साधूँ! आप ही सोचिए क्या आपका यह कथन उचित है ? शिष्य को कर्मारण्य में भटकने छोड़कर आप खिसक जायें - यह कैसी नीति है ?''

जिनचन्द्रजी निरुत्तर थे। क्षण भर मौन रहे। चिंता-मुद्रा में बैठे रहे। आँखें खोलकर नागमय्य की आँखों में आँखें डालकर देखा। अपने ज्ञान के सहारे ताड़ लिया कि नागमय्य की आयु भी समाप्त होने आई है। तब दृढ़ संकल्प करके मुस्कुराते बोले -

''खैर! चिंता न करो। मैं तुम्हें सल्लेखना दूँगा, पर कुछ सुधार के साथ। प्रतिदिन क्रम से आहार का प्रमाण कम करते जाना चाहिए। बत्तीस कौर से व्रत आरम्भ करें और एक-एक कौर कम करते जाएँ। इसी भाँति पानी का प्रमाण भी कम होते जाए। साथ ही आत्मचिंतन में मन लगाते जाना चाहिए। देह की क्षण भंगुरता पर दृढ़ विश्वास रहना चाहिए। परमात्मा के अतिरिक्त अन्य सब वस्तुओं का स्नेह छोड़ देना होगा। अनुभव में यह लाना होगा कि बोलना, सुनना, रागद्वेष, रोग आदि परम ज्योति स्वरूप आत्मा पर लगे कर्म-संकुल हैं। इस देह की ममता तक त्याग कर परमज्योति रूप बन जाओगे।''

जिनचन्द्रजी के यों अनुग्रह करते ही नागमय्य के भक्ति भाव से चरणों में दण्डवत् किया और चरण धूलि लेकर उसे अपने माथे पर लगा लिया।

जिनचन्द्रजी के सल्लेखना की वार्ता हवा के साथ-साथ चारों ओर फैल गई। लोगों ने नागमय्य के लघु-सल्लेखना की बात भी सुनी। मल्लप और पुन्नमय ने उस व्रत की कठोरता के कारण उसका न रहना ही उचित समझा; यहाँ तक कि उसे स्वीकार करने के सम्बन्ध में अपना विरोध भी व्यक्त किया। मल्लप के परिवार का परिवार ही आकर जिनचन्द्रजी के सामने गिड़गिड़ाया। अंत में कम से कम, अपने दादा को इस धार्मिक घोर अत्याचार से मुक्त कर देने की प्रार्थना की। नागमय्य के आठ पोते थे। अपने दादा का धर्म के नाम पर अन्न जल-लिए बिना मर जाना उनको भी अच्छा नहीं लगा। उन्होंने नागमय्य पर भरपूर दबाव डाला। रोए! कलपे। संन्यासियों की बात अलग है। दादा तो गृहस्थ हैं। गृहस्थों को इस प्रकार कठोर दीक्षा देना सरासर अन्याय है - इस प्रकार जिनचन्द्र के सामने विरोध व्यक्त किया। अत्तिमब्बे ने आग्रह पूर्वक कहा - ''दादाजी चाहें तो कषाय सल्लेखना धारण करें, उन्हें सल्लेखना की आवश्यकता नहीं है। हम कभी इसे नहीं मानेंगी'' गुंडुमब्बे ने स्वयं दादा के साथ अन्न-जल त्यागकर बैठ जाने की धमकी दी।

नागमय्य के परिवार रूपी नंदनवन पर भयंकर आँधी बह निकली। ऐसा लगा कि सारा उपवन उजड़ जायेगा। मल्लप को जैनधर्म की यह निष्ठुरता खटकने लगी। पुन्नमय ने कहा - दाना-पानी छोड़ आत्महत्या कर ले उसे भी सल्लेखना महाव्रत कहकर सम्मान दें, यह अनर्थ है और अधर्म भी। गुंडुमब्बे ऐसे चुपचाप बैठे रही मानों सिर पर बिजली टूट पड़ी हो। एलमय्या ऐसे छटपटा रहे थे मानों उसे कंपकपी लगी हो। हारे हुए जुँआरी की भाँति चिक्कपोन्न सिर झुकाये बैठे थे। आहवमल्ल सोच रहे थे कि किस प्रकार इस धार्मिक अत्याचार को रोका जा सकेगा। मल्ल ने समझा कि अब दादाजी नहीं रहेंगे, इस कारण से एक ओर खिन्न बैठे थे। औरों को रोते कलपते देखकर नागकन्या भी रो पड़ी। अब्बकब्बे को इतना दुःख हो रहा था मानों अपनी माता का देहान्त अभी-अभी हुआ हो।

सहसा जल्दी आने की सूचना पाकर पोन्न कवि पुंगनूर दौड़े आए। पंप महाकवि सरपट चले आए मानों हवा में उड़ते-उड़ते आए हों। सारी परिस्थिति समझ में आ गई। जिनचन्द्र मुनिजी और नागमय्य के अंतरंग की बातें समझने में देर न लगी। इन दोनों कवियों को एकान्त में बुलाकर नागमय्य की अंतिम दिन की सूचना जिनचन्द्रजी ने दी। संस्कार सम्पन्न दोनों कविवरों ने सल्लेखना का अनुमोदन

किया। सल्लेखना के पूर्व जिन नियमों का पालन करना था उनकी ओर जिनचन्द्रजी का ध्यान पंप कवि ने खींचा। सल्लेखना अनिवार्य माना गया पर जानबूझ कर पंपकवि ने एक सप्ताह भर उसको किसी बहाने टलवा दिया।

निश्चय हुआ कि श्रवणबेलगोल से चामुण्डराय के माता-पिता अर्थात् महाबलय्य और काललादेवी को बुलाया जाये। नागमय्य के परिवार वालों को विशेष कर पोतियों को समझाने में, सांत्वना देने में पंप और पोन्न दोनों को जमीन आसमान एक करना पड़ा। अंत में रहस्य में जिनचन्द्रजी ने जो कुछ आयुर्दाय के बारे में बताया था, उसका भी उल्लेख करना पड़ा। पोन्नमय श्रवणबेलगोल गया और मल्लप पुंगनूर में सल्लेखना के लिए प्रबन्ध करने लगे।

जिनचन्द्रजी दैवज्ञ थे। उन्होंने सल्लेखना के लिए शुभ तिथि, वार, नक्षत्र आदि का निश्चय किया। भक्तिपूर्वक अंतिम आहारादि की विधि पूरी की गई। मध्याह्न के पूर्व जिनचन्द्रजी भिक्षा के लिए निकले। उनकी बगल में पिच्छिका थी, बाएँ हाथ में कमण्डलु था और दाहिना हाथ कंधे पर था। मार्ग भर के सभी जैन गृहस्थों में यह उत्साह उमड़ आया था। सबने घर बार खूब सजाए रखा था। वंदनवार लहरा रहे थे। रंगोली से घर बार की शोभा अवर्णनीय बनी थी। सबने मुनि जी को भिक्षा देने मिष्टान्न बनाया था। पानी और पक्वान्न लिए द्वार पर प्रतीक्षा करते खड़े रहे। मंगलद्रव्य लिए सुहागिनें खड़ी थीं। पता नहीं रहता कि किसके यहाँ मुनिश्री भिक्षा स्वीकार करेंगे। भाग्यवश अपने घर आये तो, क्योंकि **श्रावकों का विश्वास है कि जैन मुनि को भिक्षा देने से गोम्मटेश्वर को महामस्तकाभिषेक कराने के बराबर पुण्य प्राप्त होता है।** तब सोचिए कि श्रावकों का उत्साह क्यों न उमड़ें ?

इधर जिनचन्द्रजी निर्विकार भाव से रास्ते पर चले। कौन जाने ये कहाँ खड़े होंगे। सबकी दृष्टि अपने-अपने घर उनका स्वागत कर रही थी। धीरे-धीरे मुनि जी आगे बढ़ते गये। एक गृहस्थ के द्वार पर आ खड़े हुए। दम्पति ने आकर पाद-प्रक्षालन किया पर न जाने क्या हुआ, वे आगे बढ़े। भिक्षादान का भाग्य यों अचानक खिसकते देख दम्पति खिन्न हुए, पर करें क्या ?

ऐसे ही दो-एक जगह और हुआ। अंत में जिनचन्द्रजी नागमय्य के यहाँ आए। मल्लप और उनकी धर्मपत्नि अब्बकब्बे ने आगे बढ़कर अर्घ्य-पद्यों से मुनिवर्य की पूजा की। प्रतीक्षा कर ही रहे थे। झटपट जो कुछ करना था किया।

तिष्ठ-तिष्ठ कहते हुए मुनिजी की परिक्रमा की। दंडवत् किया। न्यौछावर किया और हृदय से स्वागत किया।

घर के अंदर ले जाकर पादपूजा की। विधि है कि मुनि खड़े-खड़े अन्न स्वीकार करें। विधि का पालन हुआ। घर के सभी लोगों ने आकर मुनिवर्य के हाथ में एक-एक कौर अन्न दिया और अपने जन्म को सफल माना। मुनिजी बाँयीं हथेली पर दाहिनी हथेली रखकर, अंगूठे से छानकर, परीक्षा करके, कौर मुँह में रख लेते थे। नागमय्य, पंप, आहाव, मल्लप एवं उनके परिवार के सब लोगों ने अन्नदान दिया। जो-जो गृहस्थ अपने घर पर मुनि को खिला न पाए थे, वे दौड़ते-दौड़ते यहाँ आए और मुनिजी की हथेली पर कौर रखकर कृतकृत्यता का अनुभव करने लगे। खेचर कन्याओं के समान सुंदर अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी इस अन्न-यज्ञ में सम्मिलित हुईं।

किसी पर अपनी आसक्ति न दिखाते हुए केवल अनासक्त भाव से मुनिजी अन्न स्वीकार करते जा रहे थे। क्या भव्यात्माओं के दिए गए अन्न जल में कोई दिव्यता हो सकती है ? नहीं, पर उस महर्षि के स्पर्श से भक्तों का दिया हुआ अन्न जल मानों सिद्धरस से ओतप्रोत सा बना। जैसे ही महर्षिजी अघाए वैसे ही अपनी दाहिनी हथेली उठा ली। श्रावकों ने कलश से पानी दिया। उससे हाथ मुँह धो लिया। कुछ ही क्षण में अंतर्मुखी हुए। उस मुद्रा में उसी प्रकार अचल दिखाई दे रहे थे।

बहिर्मुख होते ही जिनचन्द्रजी ने चन्द्रप्रभ तीर्थंकर की पूजा की। भक्ति सहित जिनगंधोदक सिर आँखों पर लगाया। तीर्थंकर को साष्टांग प्रणाम किया और परमात्मा के सम्मुख सल्लेखना संकल्प किया। जिनालय के सभा-मंदिर में अन्न जल त्याग कर हंसोपासना में तन्मय बैठ गए।

यह कैसा साहस है। इसे देखने के लिए आस-पास के गाँवों से लोग आने लगे। जैसे-जैसे यह समाचार दावाग्नि के समान फैलता गया वैसे ही वैसे दूर-दूर से श्रावकों और श्राविकाओं का दल आने लगा। साधु-संतों का मेला पुंगनूर में लग गया। जिनचन्द्रजी के बारे में प्रतिदिन समाचार प्राप्त कर लेने का प्रबन्ध इर्द-गिर्द के राजा महाराजाओं ने कर लिया। चारों ओर भक्ति की बाढ़-सी उमड़ पड़ी। बंकापुर से अजितसेनाचार्य जी आए। श्रवणबेलगोल से नेमिचन्द्राचार्य जी पधारे। तलकाडु से महाबलय्य और उनकी पत्नी काललादेवी भी आईं। उनके आने तक दो सप्ताह बीत गए थे।

प्रथम सप्ताह में महाव्रती जिनचन्द्रजी को कभी-कभी दिन-चर्या के लिए उठना पड़ता था। वे हँसते-हँसते धार्मिक चर्चा में भी भाग लिया करते थे। मुख पर मंदस्मिति अंकित रहती थी। भव्यात्माओं से पूर्ण अनुकम्पा से मिलते रहते थे। नेमिचन्द्राचार्य एवं अजितसेनाचार्यजी को जैन-धर्म तथा जैन संस्कृति के प्रसार के लिए कटिबद्ध रहने की आज्ञा दी। महाबलय्य को अपने निकट बुलाकर अहिंसा-वृक्ष की जड़ की रक्षा करते रहने का आदेश दिया। काललादेवी के कानों में कहा.... देखो बेटी, तुममें धार्मिक महत्त्वाकांक्षा की कमी नहीं है। वह और बढ़ती जाएगी। तुम कृतयुग में भरतेश द्वारा स्थापित 520 चाप प्रमाण बाहुबली की मूर्ति की कल्पना करके नित्य उसकी मानसिक पूजा किया करो।

ऐसे ही राष्ट्रकूट सार्वभौम मुम्मडी कृष्णराय को बुलाकर समझा दिया कि सार्वभौमत्व की अपेक्षा आत्मज्ञान का साधन ऊँचा है अतएव आत्मसिद्धि में मन लगाते जाएँ। गंग मारसिंग को बुलाकर आदेश दिया कि निस्संग बनने का अभ्यास किया करें।

सल्लेखना के प्रारम्भिक दिनों में बारी-बारी से आकर पोन्न, पंप, नागमय्य आदियों ने तीर्थेशों के दिव्य चरितों को सुनाया। इन पुण्य-चरितों का श्रवण करके जिनचन्द्रजी दैहिक कष्ट भूलकर आनंद सागर में तन्मय हुए। संतान का मुँह देखकर जिस प्रकार दारुण प्रसव पीड़ा को माताएँ भूल जाती हैं, इसी प्रकार परम ज्योति स्वरूप अपनी आत्मा के चिंतन में मगन मुनि जी क्षुत्-पिपासादि परिषहों को भूले। तीर्थंकर पुराण श्रवण के बाद कुन्दकुन्दाचार्य के समयसार को सिद्धान्त कवि चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने पढ़वाया। अजितसेन ने और एक बार उसे पढ़वाकर चाव से सुना। इस प्रकार शुद्ध जिनधर्म में तन्मय बने। जिस प्रकार शिकार के लिए तैयार खड़े हुए साही के पास कोई भटक नहीं सकता उसी प्रकार महर्षि के पास माया, मोह, मान, लोभ आदि नहीं भटक सके। धीरे-धीरे सदा निर्विकल्प समाधि में रहते हुए जिनचन्द्रजी ध्रुवतारा की भाँति बन गए।

सल्लेखना का तीसरा सप्ताह बीता। अब उठना बैठना कष्टकर प्रतीत होने पर लेटे रहते थे। पर उनका चित्त पंचपरमेष्ठियों में लीन था। शरीर कृश बना; पर दृष्टि तेज थी। कभी-कभी ओंठों पर मुस्कान खिंच जाती थी। जिस मंदिर में मुनिजी बैठे थे वह औरों के लिए एक बड़ा पवित्र तीर्थ बना। हजारों की संख्या में लोग आ आकर भक्तिपूर्वक दूर ही से मुनिजी के दर्शन पाकर सदा उमड़-उमड़ कर आने वाले भक्त वृन्द को जगह देते हुए जा रहे थे। एक ही बाजू पर लेटे हुए

मुनिजी की देह ठठरी मात्र रह गयी थी।

इधर नागमय्य नित्य अन्न सेवन कम करने का अनुष्ठान किया करता था। मल्लप और पोन्नमय्य अन्य सभी व्यवहारों का त्याग करके पितृ-सेवा में ही रहने लगे। उन्हीं के साथ सोते-जागते पहले उनको खिलाकर आप खाते। षोडशवर्षीय अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे दादाजी को अन्नदान करके बाद में माताजी के साथ मित आहार लिया करती थीं। एक ओर सर्वथा अन्न जल का त्यागकर साधना करते हुए जिनचन्द्रजी थे। दूसरी ओर प्रतिदिन नियत रीति से एक-एक कौर कम सेवन करने वाले नागमय्य थे। इस कठिन व्रत के अनुष्ठान को देखते रहने पर भी धीरे-धीरे अत्तिमब्बे जीवन के परम रहस्य को समझने का सफल प्रयत्न करती रही। उधर भोगोपभोग पर उनके मन में विरक्त भाव दृढ़ होता गया इधर गुंडुमब्बे की दृष्टि में मौत डराने वाली नहीं रही।

जिनचन्द्रजी को सल्लेखना लिए तैंतीस दिन बीत गए। नागमय्य का संकल्प पूर्ण हुआ। अंतिम दिन पूर्ण निराहार बीता। पर उनके चित्त में जरा भी क्षोभ नहीं था। समयसार को पढ़वाकर सुना करते थे और आत्मचिंतन का अभ्यास किया करते थे। अब उनकी भी समाधि लग रही थी। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे वीणावादन के साथ समयसार सुनाती थीं और जिन-स्तुति का पाठ करती थीं। इन कन्यामणियों के कलकंठ से ध्वनिरूप में परंज्योति के प्रकट होने का अनुभव नागमय्य करते थे। एक बार नागमय्य उस नाद माधुर्य में आत्म रूप में लीन हो गए। वीणावादन के अंत में जब इन्होंने दादाजी के मुँह की ओर देखा तो वहाँ केवल मुस्कुराहट थी। शरीर निश्चेष्ठ था। दोनों के मुँह से सहसा 'दादा-दादा' शब्द निकल पड़ा। मल्लप और पोन्नमय दौड़ आए। देखभाल की। तब निश्चय किया कि अब प्राणज्योति शांत हुई है। पंप, पोन्न आदि सबने आ घेरा। इस झमेले में क्षणभर के लिए जिनचन्द्रजी को वे भूल बैठे। मध्याह्न का सूर्य सिर पर चमक रहा था। उधर जिनचन्द्रजी के प्राण भी उड़े। पहले अपने शिष्य को मुक्ति मार्ग का पथिक बनाकर आप पीछे से गए।

सबके आँसू बह निकले। नागमय्य के परिवार में खलबली मची। चालुक्यों का ध्वज उतर गया। राष्ट्रकूटों का ध्वज भी उतरा। गंगों का ध्वज झुक गया। मल्लप पर मानों बिजली ही टूटी थी। पोन्नमय रणधीर था पर अब अधीर बन अबला-सा रो पड़ा। नागमय्य की पतोहू यों रो रही थी मानों उसके पिता ही चल बसे हों। सबके सब पोते आकर दादा के कलेवर से लिपट कर चीखने चिल्लाने

लगे। अत्तिमब्बे की दशा ऐसी थी कि मानों उस पर वज्रपात हुआ हो। गुंडुमब्बे छाती पीट-पीट कर रोने लगी। नागमय्य की मृत्यु से जैन समाज की रीढ़ टूट सी गई थी। बेंगिमंडल नायक विहीन बना।

सब लोगों का दु:ख एक पलड़े पर हो तो अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे का दु:ख दूसरे पर था, क्योंकि इन दोनों का शैशव, बचपन और तारुण्य माता-पिता के पास नहीं, दादाजी के पास बीता था। दादा की गोद इनका सिंहासन था। दादा के साथ सैर सपाटे को जातीं; सो भी उनके कंधों पर चढ़कर। दादाजी के साथ खातीं, पीतीं, दादा की नींद सोतीं। यों कहें कि दादा ही उनके लिए सब कुछ थे। ऐसे दादा से विहीन यह लोक उनको कुंभीपाक-सा डरावना दिखाई दे रहा था। अभी-अभी यौवन के पदार्पण करने वाली इन नव तरुणियों पर दादा की मृत्यु वज्राघात बन कर आई।

महामुनि का पवित्र कलेवर उठाया गया। उठाने वाले थे मारसिंह, पंप और राष्ट्रकूटों के कृष्णराय एवं पोन्नमय। भक्ति भाव से उस कलेवर को लिए जा रहे थे, मानों जिनेश्वर की उत्सव पालकी ले जा रहे हों और एक बात थी। भक्ति के क्षेत्र में राजा और रंक का भेद कहाँ ? यहाँ यह बात चरितार्थ हुई थी।

इस अर्थी के पीछे-पीछे नागमय्य की अर्थी निकली। अत्तिमब्बे, गुंडुमब्बे अब्बकब्बे और मल्लप उसे ढो रहे थे और किसी को छूने तक नहीं दिया। स्त्रियों को हटाने का सबका प्रयत्न व्यर्थ हुआ। जुलूस का मार्ग आँसू से सिंचित था। जनता पीछे-पीछे आ रही थी और अपनी वाष्पांजली देती जा रही थी।

श्मशान में चंदन, कर्पूर की चिताओं पर रखकर दोनों की अंत्येष्टि की गई। जिनचन्द्रजी की चिता को पंप कवि ने अग्नि स्पर्श करा दिया, नागमय्य की चिता को मल्लप ने। इस कार्य में उनके पुत्रों ने भी हाथ बँटाया।

जिनचन्द्रजी और नागमय्य दोनों महात्मा थे। जब तक जीवित थे तब तक लोक हित की साधना में तत्पर रहे। जब मृत्यु आई तो तत्पूर्व ही लोक हित साधना में अपने शिष्यों को नियोजित किया और मृत्यु के पश्चात् भी अपनी उसी लोक कल्याण कामना-सी सुगंध फैलाकर जल रहे थे। लोक हित कामना की सुगंध कोसों तक महक उठी थी।

❑❑❑

3.

नागमय्य के मरण से सारा पुंगनूर अनाथ बना। लोग रो रहे थे। पर जनता की स्मरण-शक्ति बहुत शीघ्र कुंठित हो जाती है। जिसका जितना निकट सम्बन्ध रहता है, उतना ही अधिक उसका दु:ख होता है। पर काल का लेपन सब दु:खों को भुला देता है। मल्लप तथा पुन्नमय को पितृ-वियोग का दु:ख भूलकर राजकाज संभालना पड़ा। अब्बकब्बे का दु:ख अवश्य इन दोनों के दु:ख की अपेक्षा अधिक दिनों तक बना रहा। कारण यह कि नागमय्य उसके ससुर नहीं थे, मानों पिता थे; पिता से भी अधिक थे।

सर्वाधिक दु:ख अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे को था। दादा ही मानों इनके जीवन का सर्वस्व था। दादा के कमरे में जातीं तो आँसू फूट निकलते। दादा के साथ ही खाया करती थीं, अब भोजन के लिए बैठती तो खाते नहीं बनता था। उठकर बिना खाए यों ही चली जातीं। दिन-दिन कृश बनती गईं। शरीर की कांति फीकी पड़ी। जीवन में अब कोई आकर्षण नहीं रहा। उत्साह तो बिल्कुल नहीं था। प्राय: दादा की चिता पर ही जीवन के उत्साह को भी जला आईं थीं। इनको देखकर अब्बकब्बे की चिंता बढ़ने लगी। सोचा करती कि उनका शोक कैसे दूर करें ? उसे भय था कि कहीं शोक के मारे कुछ और अनर्थ न हो। अतएव मन-बहलाने का प्रयत्न करने लगीं। अपूर्व रत्नाभरण बनवा कर दिया। आशा थी कि और लड़कियों के समान ये लड़कियाँ भी इस पर मुग्ध हो जाएँगी और अपने दादा को भूलती जाएँगी। पर बात उल्टी निकली। उन गहनों को देखते ही रत्नवृष्टि कराने वाले उस दादा को स्मरण कर फूट-फूट कर रो उठीं मानो अपने दादा पर मोतियों की वृष्टि करने में लगी हों। नाना प्रकार के टुकूल मंगवाकर पहनने का आग्रह करते हुए अब्बकब्बे कहती कि लो ये तुम्हें फबते हैं, इन्हें पहनो। पर अत्तिमब्बे कहती कि अब कौन हमें सजी हुई देखकर, फूले न समाने वाला है। गुंडुमब्बे बोल उठती अब यह सब व्यर्थ है। दादा ही नहीं रहे तो इन्हें लेकर क्या करें।

माता ने आग्रह करके एक बार चमेली की कलियों से दोनों की वेणी

पिरोई। वे दादा को दिखाने के लिए भूलकर, उनके कमरे की ओर दौड़ पड़ीं। वहाँ जाने पर ही इनको होश आया कि दादाजी अब इस संसार में नहीं हैं। धड़ाम से कटे हुए केले के समान गिर पड़ीं। आहार की मात्रा प्रतिदिन कम होते देख अब्बकब्बे दिग्भ्रांत हुई। सोचने लगी, क्या ये कहीं दादाजी के समान ही अन्नजल कम करने का संकल्प कर बैठी हैं। जब से दादाजी की मृत्यु हुई तब से भूलकर उन्होंने वीणा पर हाथ नहीं फेरा। मधुर स्वर में गाने वाली इन युवतियों ने अब मौन धारण किया। मयूरी सी मस्त होकर मयूर नृत्य करने वाली इनको दादा की मृत्यु ने पंगु बना दिया था। ये सब घुंघरू देखकर भाग जातीं। दादाजी के कमरे में दादाजी के चबूतरे पर वीणा, घुंघरू आदि पड़े-पड़े धूल धुसरित हो गए थे।

पति से एक बार अब्बकब्बे ने कहा –

''देखो! दादा जी के शोक में लड़कियाँ कैसे घुलती जा रही हैं। इनका क्या होगा ?''

''क्या करें ? कुछ समझ में नहीं आता।''

मल्लप ने निरुपाय होकर उत्तर दिया।

''पर क्या यों ही छोड़ दें ?''

''छोड़ना नहीं चाहिए। मैं भी मानता हूँ। पर बताओ तो सही कि क्या किया जाए ?''

''देखो तुम्हारा सारा समय बाहर कट जाता है। तुम हमारा दुःख क्या जानो ? आठों पहर घर में पड़ी हुई मैं जानती हूँ। मुझसे यह देखा नहीं जाता। कहीं कुछ अनर्थ हो जाए तो पछताओगे।''

''क्या ऐसी बात है। ऐसी चिंताजनक स्थिति है ?''

''क्या और कुछ बताना होगा ? देख ही रहे हो कि पहले जैसे खाती नहीं और पहनती भी नहीं। गहना देखते ही इनका गला बैठ जाता है। हमेशा चुपचाप बैठी रहती हैं। वसंत मारुत के शीतल स्पर्श से इठलाने वाली माधवी लता सी ये लड़कियाँ अब भूलकर भी नहीं हँसतीं। इनकी ऐसी दशा हुई है कि मैं क्या कहूँ, सदा मैं इसी शोक में घुल रही हूँ। सोचा करती थी कि इनका विवाह बड़ी धूम से करूँगी। पर न जाने हमारे भाग्य में क्या है ?''

''क्या विवाह कर दें ?''

''देखो, जो चाहे करो। मैं केवल यही चाहती हूँ कि वे पहले जैसी थी वैसी बन जायें।''

''योग्य वर कहाँ हैं ?''

''क्या बिना पूछ-ताछ किए वर हमारे पास आएँगे ?''

''हाँ, आप ही आएँगे। पर समय चाहिए। जल्दबाजी में यह काम नहीं होगा।''

''जो हो, पहले ऐसा कुछ तो करो कि ये शोक भूल जायें। नहीं तो अवश्य ये पागल हो जाएँगी।''

दृढ़ता के साथ पति को चेतावनी दी।

''और एक कार्य आ पड़ा है न, नहीं तो''

''लड़कियों के विवाह से भी अधिक जरूरी काम है क्या ? वह कौन-सा है ? सुनूँ तो।''

''जरा असमाधान सूचक ध्वनि में पूछा।''

''जिनचन्द्रजी की इच्छा थी कि कन्नड़ में शान्तिपुराण सुनें। जीते जी उनकी इच्छा पूरी नहीं हुई। कम से कम अब उस महात्मा की इच्छा पूर्ण करनी होगी।''

''करो। कौन माना करता है ? पर लड़कियों के विवाह और इसको एक ही पलड़े में न रखो। किसी कवि को बुलवाओ और लिखवाओ। पर वह अलग बात है। यह अलग बात है।''

''मैं भी मानता हूँ। पर सोचो तो सही क्या काव्य लिखवाना कोई साधारण बात है ? क्या इसे सुलभ मानती हो ? क्या जब चाहे तब हमें चाँदनी मिलेगी ? औरों के इच्छानुसार कभी भ्रमर भी गुंजार करेंगे ? किसी के कहने मात्र से वसंत मारुत बह निकलेगी ? यदि चाहो तो एक हफ्ते के अंदर सौ व्याह कर सकता हूँ; पर अपनी मर्जी के अनुसार लिखने वाले कवि को कहाँ से लाऊँ ?''

मल्लप ने असली बात कह दी।

''क्या कहूँ ? किसी के घर मक्खन हो तो भी वह घी के लिए तरसता रहे तो उसे कहाँ से समझ ला दें।''

''घर का मक्खन ? तुम्हारा मतलब ?''

''तुम एक बार भाई पंप से कह दो, क्या वे नहीं मानेंगे ? पौन्न जी से प्रार्थना करने पर यह काम नहीं बन सकता ?''

अब्बकब्बे ने मार्गदर्शन किया।

''ठीक है, इन दोनों को बुलवा लें। दोनों को महर्षि की अंतिम अभिलाषा ज्ञात ही है। हम भी आग्रह पूर्वक दबाव डालें। जो हो शान्तिपुराण की रचना पहले आरम्भ हो जाए। विवाह की बात तब उठा ली जाएगी।''

मल्लप ने अपना कार्यक्रम बता दिया।

''दोनों काम एक साथ हो सकते हैं।''

''एक साथ ही हो सकते हैं पर योग्य वर मिलें तब न ?''

''अभी तो सौ विवाह की डींग मार रहे थे। इतनी जल्दी मुकुर गए ?''

''स्त्रियों के सामने बोलना ही नहीं चाहिए। अभी ताना मारने लगीं ?''

''ओह! ऐसी कौन-सी बात कही कि ताना समझने लगे ?''

''देखो तुम्हारी सांत्वना के लिए एक ही क्यों सौ विवाह कर देने की बात कही थी; उस बात को लेकर अब मुझ पर ताना मारती हो और पूँछती भी हो नादान सी, कि मैंने क्या कहा ?''

''ताना नहीं मारा! मैंने केवल तुम्हारी शक्ति का स्मरण दिलाया।''

''जैसे कैकेई और द्रौपदी ने स्मरण दिलाया था ?''

''शांतं पापं! शांतं पापं!! कैसी बात कहते हो! यह अन्याय है।''

''ओहो! अब तक कवयित्री बनकर बोल रही थीं। अब''

''ठीक है, जब मेरी स्फूर्ति का स्रोत तुम सामने हो तो मैं क्यों न कवि बनूँ ?''

अब्बकब्बे की बातों में उल्लास की दृढ़ता थी। उसी धुन में मल्लप वहाँ से उठे।

पंपकवि और पोन्नकवि दोनों पुंगनूर पधारे। उनके सामने मल्लप ने जिनचन्द्र की मनीषा कह सुनाई। उस दिगम्बर यति की बात वेद विधि के समान मान्य है। कुछ भी हो शान्तिपुराण की रचना हो जानी चाहिए। जब यह कार्य समाप्त हो तब मैं उसकी सौ प्रतियाँ लिखवा कर बेटियों के विवाह के अवसर पर

सुवासिनियों में वितरित करूँगा।

मल्लप ने विनय पूर्वक निवेदन किया।

''इस युग में महाकवि पंप जी हैं। आप ही को शान्तिपुराण लिखना होगा। जिनचन्द्रजी भी यही चाहते थे।''

पोन्न ने कहा।

''महानुभाव! आप मेरे मर्म पर क्यों मारना चाहते हैं ? अरिकेसरी के साथ ही मेरी लेखनी की शक्ति चली गई है। उस महाप्रभु के पीछे मेरी प्रतिभा लुप्त हो गयी है। मेरी कल्पना शक्ति कुंठित हुई है। अब मुझसे लिखते नहीं बनता। पोन्नजी आप त्यागी हैं, महात्मा हैं। आपका चित्त निर्विकार है। आप समभाव से सुख-दुःख देख सकते हैं। आप स्थितप्रज्ञ हैं। इस युग के कवि चक्रवर्ती भी आप हैं। अतएव आप ही शान्तिनाथ का भव्य चरित गाइए। मैं केवल उस बृहद् गान-शिशु के लिए दादी का काम करूँगा। जिस व्यापारी का बेड़ा डूब गया हो और दिवाला निकला हो उसके पास माँगना उचित नहीं। इससे उसे दुःख मात्र होगा। आप कवि चक्रवर्ती हैं; शान्तिनाथ तीर्थंकरों में चक्रवर्ती हैं। आप उस बृहद् गाथा के कवि हों, गायक हों - यही मेरी प्रार्थना है।''

पंप कवि ने निवेदन किया।

पुन्नमय्य ने नमस्कार किया और कहा ''जब तक आश्वासन नहीं मिले तब तक यहाँ से न उठूँगा। पोन्न जी के सामने बैठ गया।''

ठीक उसी समय पोन्नजी अलौकिक प्रेरणा का अनुभव करने लगे। जिनचन्द्रजी की आशा-पताका फहराती हुई दिखायी दी। जब लोक-कल्याण-कामना से शान्तिनाथ पुराण लिखवाने की इच्छा उस त्यागी महात्मा में जागी उस घड़ी का महत्त्व समझने में, उस सद्भावना में तल्लीन होने में पोन्न जी को देर न लगी। उस समय जटाधारी समण कवि आनंद से पुलकित हुए। जटा विकंपित हुई। आँखों के सामने मानों समवसरण उतर आया। उनके गले से मानों संगीत स्वयं मुखरित हो उठा।

वे अनुग्रह पूर्वक बोले - ''ठीक है। मैं शान्तिनाथ पुराण रचूँगा। जिनचन्द्रजी की अंतिम अभिलाषा पूर्ण हो और साथ ही साथ पंपजी की इच्छा सफल हो। मल्लप की मनौती पूर्ण हो। पुन्नमय्य की मनीषा सार्थक हो। अत्तिमब्बे और

गुंडुमब्बे के जीवन में शान्तिनाथ पुराण में धार्मिक क्रांति का उद्घोष हो।''

नागमय्य के घर पर पड़ा हुआ शोक का कुहरा पंप और पोन्नजी के आगमन से दूर हुआ। संसार सारोदय नाम से विख्यात पंप के रहते समय उदासी कहाँ रह सकेगी ? निराशा के लिए जगह कहाँ ? अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे के लिए मानों पंपजी के पास रहते समय दादा के पास रहने का सा आनंदानुभव होता था। पंपजी से विक्रमार्जुन विजय और आदिपुराण सुने। सुन सुनकर कंठ पाठ किया। पंप महाकवि के चरणों में रहकर इन दोनों ने भारतीय नारी के कर्तव्य का ज्ञान सीखा। कला में कला सी तन्मय बनी नीलांजना के पात्र की गरिमा से अवगत हुई।

यौवन में पदार्पण करती हुई इन दोनों लड़कियों ने समझा कि अपना सौन्दर्य, अपने लावण्य, अपनी प्रतिभा, अपने ज्ञान, अपने धन-कनक आदि की सार्थकता तभी है जब वे परमात्मा के चरणों में अर्पित हों। यौवन के प्रारम्भ में योग्य धार्मिक संस्कार नहीं मिले तो मानव दानव बन जायेगा। पंप कवि ने इस रहस्य का भी निरूपण किया कि यदि दैहिक सौन्दर्य पर पारमार्थिक संस्कार का रंग नहीं चढ़े तो सुरसुंदरी भी विषकन्या बन जायेगी। यदि यौवन की मस्ती पर भक्ति का अंकुश नहीं हो तो इन्द्रियाँ हमें पथभ्रष्ट करके गड्ढे में गिरा देंगी।

उन्होंने यह पाठ भी पढ़ाया कि पहले व्यक्तिगत रागद्वेष को कुचल देना चाहिए नहीं तो, स्त्री का जीवन आँसू का समुद्र बनेगा।

एक ओर पोन्नकवि काव्य-कन्या को नचा रहे थे। दूसरी ओर पंप कवि कर्नाटक के स्त्री रत्नों को कर्नाटक संस्कृति के चाक पर चढ़ाकर चमका रहे थे; उनके जीवन को रस कलश बना रहे थे।

इधर मल्लप योग्य वरों के अन्वेषण में लगे रहे। पढ़ी लिखी-सुसंस्कृत कन्याओं के अनुरूप वर पाना बड़ा कठिन है। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे बड़े घराने की लड़कियाँ ठहरीं। चालुक्य महामंत्री की लाड़ली पोतियाँ थीं। सौन्दर्य की बात कौन कहे। कहीं ये पूर्ण सोलह शृंगार से सजधज कर खड़ी हो जातीं तो आकाश के खेचर विमान तक खड़े हो जाते और इनका अनुपम सौन्दर्य देखकर खेचर बालाएँ मोहित हो जातीं। इन दोनों तरुणियों को देखने से ऐसा लगता था, मानों कला और कमनीयता की सजीव प्रतिमा हैं। यदि नृत्य करते समय इनको देखें तो ऐसा लगता मानों इन्द्रधनुष पर चढ़कर मयूरी इठला रही हो। इनकी चाल नृत्य की

गति बनी। इनका बोल संगीत बना। तिस पर वे काव्य और शास्त्र दोनों में पारंगत थीं। ऐसी लड़कियों के लिए योग्य वर पाना सुलभ-साध्य नहीं था।

''पंपदेवजी, हमारी लड़कियों के योग्य वर चाहिए ?''

एक बार मल्लप ने विचार व्यक्त किया।

''राजकुमारों में से देखना होगा। कम स्तर वालों को नहीं।''

''पर हम कहाँ और राजकुमार कहाँ! यह कैसे होगा ?''

''देखो! तुम्हारी इन कन्याओं से विवाहित होकर कोई भी राजकुमार अपने को धन्य मानेगा। समझे ?''

''आप भले ही अपने पास के सोने को अपरंजी कह लें पर इनका मूल्य ग्राहक समझे तब न ?''

पर खरा सोना कहीं भी रहे खरा ही लगेगा।

''खैर! राजकुमारों में ही सही, बताइए इनके योग्य कौन हैं ? कोई नहीं दिखाई देता।''

''क्यों राष्ट्रकूट के कर्क युवराज हैं। ऐसे ही गंग वंशज मारसिंह के छोटे भाई राचमल्ल भी हैं। पुरातन काल से राष्ट्रकूट और गंग सगे सम्बन्धी रहे हैं। परस्पर गौरव रखते हैं और आदर भी देते हैं। अतएव सदियों से दोनों वंश समृद्ध बन सके हैं। जिस पर ये दोनों खानदान जैनधर्म के आधारस्तम्भ से हैं। इनके राज्य में अहिंसा की जड़ जम गई हैं। ऐसे राजकुमारों के होते हुए हमारी सम्यक्त्व चूड़ामणि-सी ये कुमारियाँ क्यों घर पड़ी रहें ?''

''देखिए, वे क्या हमारे यहाँ विवाह करने के लिए तैयार हैं ?''

''सुनो! पहले पूछ लो कि अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे उनसे विवाह कर लेने के लिए तैयार हैं या नहीं ?''

ऐसा कहकर हँस पड़े।

दो-एक दिन बीत गए। एक बार एकाएक चालुक्य महामंत्री दल्लप पुंगनूर आए और सीधे मल्लप के यहाँ पधारे। दोनों में कुशल प्रश्न हुआ। खानपान का प्रबन्ध अतिथि के योग्य श्रीमंत ढंग से किया गया। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे ने मिलकर परोसा। भोजन करने वालों को लग रहा था कि कहीं देवलोक से सुरसुन्दरियाँ आकर अमृत परोस रही हैं। इसी कल्पना में दल्लप ने कुछ अधिक

ही खा लिया। पंप कवि के मन में पुरानी स्मृति जागृत थी। अरिकेसरी और आप एक साथ जेंवनार करते तो महारानी अपने हाथ से परोसा करती थीं, आज फिर ऐसा ही अनुभव किया। भोजन समाप्त हुआ। पान दिया गया। तब दल्लप ने मल्लप से अपने संताप को व्यक्त करते हुए कहा – ''हाँ, यह बात सही है। पर हमारा क्या बस है ? एक बात अवश्य है। आप ही अब हमारे समाज के बुजुर्ग हैं। आपके मार्ग–दर्शन की प्रतीक्षा हम लोग कर रहे हैं।''

मल्लप ने विनय पूर्वक उत्तर दिया।

''आप मेरे मार्गदर्शन की प्रतीक्षा में हैं। खूब, खूब।''

''क्यों हँसते हैं ? आप मुझसे वयोवृद्ध हैं और अनुभवी भी। न केवल आप मार्गदर्शन दें, आप अनुग्रह भी करें। आपकी आज्ञा सिर आँखों पर रखकर पाली जाएगी। घर पर एक बुजुर्ग व्यक्ति का रहना योग्य है। उन पर सारी जिम्मेदारी रहती है और हम लोग आज्ञाकारी बनकर आराम से रह सकते हैं।''

''मल्लप! मेरी समझ में आप ही बुजुर्ग हैं। अपनी समझ के अनुसार चलिए। नागमय्य जैसे सात्त्विक वृत्ति वाले महापुरुष की संतान सदा सन्मार्ग की ही पथिक रहेंगी। आप और आपके छोटे भाई स्वनाम–धन्य पोन्नमय्य हमारे समाज की दो आँखें हैं। आप दोनों हमारे राजकाज के दो पंख हैं।''

''दल्लप जी! आप हमको बना रहे हैं। खैर! आपकी बात मानें हम आँख और पंख हैं, तब भी आप हमारे समाज के मस्तिष्क हैं, इस बात को न भूलिएगा। नेत्र हों चाहें पंख हों, मस्तिष्क के इशारे पर ही वे काम कर सकते हैं।''

''मल्लप ने उत्तर दिया।''

''मल्लपजी, कौन आपसे संभाषण में जीत सकता है। पोन्नमय्य जैसे युद्ध के मैदान में तलवार के धनी हैं ? वैसे मैं बातों का धनी हूँ ?''

मल्लप ने वाक्य पूरा किया और हँसे। दोनों खूब हँसे।

''सुनिए मल्लपजी, मैं अपना कार्य ही भूले बैठा था।''

''कहिए! क्या आज्ञा है ?''

''आपने हमारे नागदेव को देखा है ?''

''हाँ, हाँ देखा है।''

''वह विवाह के योग्य है। कइयों से नारियल आए हैं। पर एक बात है।

स्वर्गीय नागमय्य ने एक बार हमसे कहा था कि हमारा समधी आपको बनना ही होगा। तब मैंने भी कहा था कि बिना आपको बताए मैं लड़के की शादी थोड़े ही करने वाला हूँ। आज नागमय्य रहते तो बात ही दूसरी थी। आज आपसे मिलकर नागमय्य की इच्छा कह देने और आपकी इच्छा भी जानने के लिए मुझे आना पड़ा।''

दल्लप ने बड़े संकोच से अपनी बात कह सुनाई।

''दल्लपजी, आपका मतलब समझ गया। पर एक बात है। यदि हमारे पूज्य पिताजी ने कुछ कहा हो तो हम क्या उसे टाल देंगे ? हाँ, दो-एक दिन आप यहीं ठहरिए। एक बार में अपने घर में पूछ लूँ। लड़कियों की इच्छा भी जान लूँ। आपका आना बड़ा ही अच्छा हुआ। आप मौके पर आए हैं। बात तय हो जाए। इससे बढ़कर और क्या चाहिए।''

दूसरे दिन चामुण्डराय पुँगनूर पधारे और मल्लप से मिले।

''रावजी, आपके आगमन की सूचना मिली होती तो राजमर्यादा पूर्वक आपकी अगवानी कर सकते थे। आप गंगराजा के राजगुरु हैं। वीरमार्तण्ड हैं, महामंत्री हैं, रण कलि हैं। ऐसे महानुभावों का बिना पूर्व सूचना दिए आना केवल आपका सौजन्य और वात्सल्य का द्योतक है; पर हम तो स्वागत करने के सदवकाश से वंचित हुए।''

मल्लप ने कहा।

''देखिए। जब आपके पूज्य पितृपाद स्वर्गस्थ हुए तब हम युद्ध के मैदान में व्यस्त थे। वहाँ से आ न सके। केवल हमारे माता-पिता ही आ सके थे। नागमय्य की मृत्यु से हमारे समाज ने एक अनर्घ्य रत्न ही खोया है।''

चामुण्डराय ने संताप व्यक्त किया।

''हाँ, हाँ फिर भी आप जैसे हितैषियों के होते हुए हम पितृ विहीन होकर भी अनाथ नहीं बने हैं- यही सांत्वना की बात है।''

मल्लप ने विश्वास पूर्वक कहा।

''नागमय्य के गुणगान में हमारी माताजी थकती ही नहीं। हमारे पिताजी का तो कहना है - जीना है तो नागमय्य जैसे जीना चाहिए क्योंकि वे जीना और मरना दोनों जानते थे। उनकी याद में दोनों कभी-कभी रो पड़ते हैं सचमुच ऐसे

व्यक्ति का न रहना हमारे कर्नाटक के लिए अपार कष्ट हुआ है। हमारा दुर्भाग्य है।''

''आप जैसे महाशयों से साधुवाद पाने के कारण मैं तो यही कहूँगा कि हमारे पिताजी मरे नहीं, अमर हुए हैं।''

यह कहते समय मल्लप की पलकें भींग गई। अपने दौर्बल्य को छिपाने के लिए बातें बदलकर बोले – ''क्षमा कीजिए। मुझे क्या हुआ है ? दूर से आए हुए आपको बातों में फँसाए रखा; आतिथ्य का समुचित प्रबन्ध तक नहीं किया। उठिए उठिए! कृपया स्नानादि से निवृत्त हो जाइए।''

रसोई घर में हलचल मची थी। कल ही चालुक्य प्रधान का सत्कार समारम्भ हुआ था। आज गंगों के प्रधान चामुण्डराय के स्वागत सत्कार के योग्य प्रबन्ध करना था। श्रीमंतों का भाग्य उन्हें हर कहीं अमरपुरी का भोग देता ही है।

कर्नाटकों के महान् व्यक्तियों का वह प्रीति–भोज था। उस प्रीति–भोज में दल्लप, अभी–अभी आए चामुण्डराय, वहीं बहुत दिनों से रहने वाले पंपकवि, मल्लप, पोन्नमय्य एवं मल्लप के सभी पुत्र सम्मिलित थे। मल्लप की पत्नी अब्बकब्बे और पोन्नमय्य की स्त्री कौसल्यब्बे परोसने लगीं।

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी यथासमय इनके साथ हाथ बँटा रहीं थीं। सोने की थाली में भरा हुआ अन्न अनर्घ्य मोती सा लग रहा था। सोने के बर्तन और चाँदी के कलछे आदि थे। इनमें भक्ष्य, भोज्य, पायसादि पकवानों को ऐसे सजाकर लाती थीं कि देखने में आँखें अघाती नहीं थीं। कभी–कभी अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे चपला सी चमक कर चली जाती थीं। इनके आगमन से ऐसा लग रहा था मानों फूलभरी कल्पलता अपनी ओर झुकी आ रही हो।

अतिथि सोने की थाली में खा रहे थे। उनके चारों ओर सोने की कटोरियाँ थीं। उनमें चाँदी के चम्मच रखे गए थे। संभ्रम और प्रेम का मधुर वातावरण था। परोसने वालों का प्रेमपूर्ण मृदुभाव और उनके नूपुरों की मधुर ध्वनि में सुंदर संगीत का ठाट जम गया था और आनंद भी मिल रहा था।

''संसार का सच्चा सुख भोजन ही है।''

चामुण्डराय ने पंप से कहा।

''केवल भोजन ही सच्चा सुख नहीं दे सकता। आप जैसे महानुभावों की

सहपंक्ति प्राप्त हो तो मुझ जैसा अभागा कवि भी सचमुच संसार सारोदय का नाम सार्थक मान सकता है।''

पंप के होंठों पर मुस्कुराहट खिली, पर ध्वनि में खिन्नता थी।

''पंप जी आप महाकवि हैं। फिर भी अपने को अभागा कहते हैं। आप कृपाण-हस्त बनकर चतुरंग बल भयंकर रूप दिखा चुके हैं। कंठ उठाकर विश्व कवि श्रेणी में अग्रणी बने हैं। आपके श्रीमुख से निसृत काव्य दुन्दुभिनाद है। भोजन समारोह में तो सचमुच संसार सारोदय हैं। विश्वकवि, हमारी हस्ती किस गिनती में है। बताइए ?''

चामुण्डराय ने तर्क किया।

''आपकी हस्ती चिरस्थायी है, आप अजर और अमर हैं। आपका साहस, आपकी सहृदयता, इससे बढ़कर आपकी जिनभक्ति - हमारे जैसे दसों कवियों की वर्ण्य वस्तु हैं। आपका साहस देश के कोने-कोने में शिला फलकों पर अंकित मिल रहा है।''

पंप कवि ने चामुण्डराय के वास्तविक गुणों का उल्लेख किया।

''आप दोनों की बातों से एक बात स्पष्ट हुई।''

दल्लप बीच में बोल उठे।

''स्पष्ट हुई ? कौन-सी बात ?''

चामुण्डराय का मुँह दल्लप की ओर था।

''आपके शब्दों में पंप जी महाकवि हैं और अमर हैं। पंप जी के कथनानुसार आप साहस, सहृदयतादि के कारण अजर और अमर हैं। आप महानुभावों के साथ रहने का सौभाग्य पाकर हम पुनीत बने हैं।''

''जब अगल-बगल में पारस पत्थर हो तो लोहा कब तक लोहा-बना रह सकेगा ?''

दल्लप हँसे।

''सच बात है। आप अवश्य लोहे की मूर्ति हैं। युद्ध में आपके पंजे में आए हुए शत्रु से ही पूछना चाहिए। आप उनके स्वप्न में भी साक्षात् काल जैसे लगते हैं।''

चामुण्डराय कहकर मुस्कराए।

''हाँ! मैं अवश्य मानता हूँ कि आप तीनों अपने-अपने क्षेत्र में श्रेष्ठ हैं। पंपदेव कवि श्रेष्ठ हैं तो चामुण्डराय जी और भाई दल्लप योद्धा श्रेष्ठ हैं।''

मल्लप ने चुटकी ली।

''बात के धनी। मुँह क्या खोला हास्य रस का स्रोत ही बहा दिया।''

पंप ने हँसते-हँसते कहा।

''देखिए कवि चक्रवर्ती जी! मुझे केवल षट्रस का ज्ञान है।''

मल्लप हँसे।

''ठीक तो है, अन्य रसों का आधार षट्रस ही हैं।''

दल्लप का फौव्वारा छूटा।

ऐसे हास्य और विनोद में सबका भोजन समाप्त हुआ। सबके मुँह पर प्रसन्नता झलक रही थी।

दोपहर की तपती धूप ढलने लगी और एक बार मल्लप के यहाँ सभा-भवन में सब एकत्रित हुए। सबके बीच में पंप महाकवि तिलक प्रायः शोभा दे रहे थे। आपकी बगल में तकिए के सहारे गद्दी पर चामुण्डराय विराजमान थे। दूसरी बगल में ऐसे ही दल्लप बैठे थे। मल्लप सबकी दृष्टि का केन्द्र बन बैठे थे। जलपान का प्रबन्ध हुआ।

इधर वह समाप्त हुआ उधर पोन्नकवि भी पधारे। उनको ऊँचा आसन दिया गया। वयोवृद्ध होते हुए भी पंप महाकवि ने पोन्न को साष्टांग प्रणाम किया क्योंकि वे जटाधारी समण थे। उनके पीछे उपस्थित अन्य सज्जनों ने भी नमस्कार किया।

'धर्मवृद्धिरस्तु'

यह आशीर्वचन गूँज उठा।

पोन्न ने चामुण्डराय से प्रश्न किया -

''नेमिचन्द्राचार्य जी कैसे हैं ? स्वस्थ हैं न ?''

''जी हाँ सानंद हैं। आपके कुशलक्षेम की वार्ता लाने की आज्ञा हुई है।''

चामुण्डराय ने उत्तर दिया।

''नेमिचन्द्राचार्य जी आज के साधु-समाज के तिलक हैं। जैन सिद्धान्त के पारंगत आचार्य हैं। जैनागमों पर उनकी जैसी अधिकारवाणी और किसकी है ? वे हमारे युग के वीरसेन महर्षि हैं।''

पोन्नकवि आचार्यजी के गुणगान करने में अघाते नहीं दिखाई देते थे।

''आप जानते होंगे कि हाल ही में नेमिचन्द्राचार्य जी ने गोम्मटसार नामक ग्रन्थ की रचना की है। इसमें जीव और कर्म के विचित्र एवं निगूढ़ सम्बन्ध का वैज्ञानिक विवरण दिया है।''

चामुण्डराय की ध्वनि में अभिमान था।

''जी! बहुत अच्छा। आप कब उन्हें यों ही बैठे रहने देते हैं। कुछ न कुछ महत्त्व का कार्य कराते रहते हैं। कहिए, क्या हमारे लिए भी उस ग्रन्थ रत्न की एक प्रति मिलेगी ?''

''अवश्य, अवश्य मिलेगी।''

पोन्न कवि के प्रश्न का समाधान जनक उत्तर देते हुए चामुण्डराय ने कहा -

लेकिन अभी नहीं। उसकी एक सौ प्रतियाँ बनवाई जा रही हैं। मेरे पुत्र जिनदेवन के विवाह के शुभ अवसर पर उसका प्रकाशन करूँगा। आशा है कि उस शुभ अवसर पर आपका शुभ आशीर्वाद हम अवश्य पाएँगे।

''रावजी, आपका आदर्श बड़ा ऊँचा है और अनुकरणीय है। यदि जिन भक्त अपने-अपने घरों में विवाह, यज्ञोपवीत आदि शुभ अवसरों पर ग्रन्थ वितरण का महत् कार्य भी करेंगे तो जैन-संस्कृति का भविष्य उज्ज्वल बना रहेगा। विवाह काम-प्रधान है पर धर्म के वातावरण में काम प्रेम बनेगा और तारक भी। आप यहाँ हमसे भी ग्रन्थ लिखवा रहे हैं।''

''धन्य भाग! आपके भुवनैक रामाभ्युदय और पंपकवि ने विक्रमार्जुन विजय ग्रन्थों से हम खूब प्रभावित हैं; साहसी भी बन सके हैं। हमारा विश्वास बढ़ा है। ओह! वह कैसा ग्रन्थ है। वीर रस का वर्णन पढ़ते-पढ़ते खून खौल उठा था। उसी धुन में हमने संकल्प किया था कि भरसक दुष्ट-शक्तियों का दमन करें। दूसरे से विदित हुआ कि युद्ध बड़ा क्रूर कर्म है। जहाँ तक हो सके उससे दूर ही रहना चाहिए। शासन की बागडौर संभालने वालों को इसका ज्ञान अवश्य चाहिए। खैर, कृपया आप कौन-सी रचना कर रहे हैं ?''

चामुण्डराय ने कुतूहल व्यक्त किया।

''जिनचन्द्रजी शान्तिपुराण सुनना चाहते थे, पर उनकी इच्छा जीवित रहते समय पूर्ण नहीं हुई। परोक्ष में ही सही, यह कार्य समाप्त करके उनको अर्पित करें, इस उद्देश्य में मल्लप और पोन्नमय्य हमसे शान्तिपुराण लिखवा रहे हैं।''

ग्रन्थ कहाँ तक आया है ?

''अब तो समाप्त ही समझिए। अत्तिमब्बे के शुभविवाह के अवसर पर इस ग्रन्थ का प्रकाशन होगा। शान्तिनाथ भगवान् की मूर्ति का पञ्चकल्याणक है। उनकी गाथा का प्रकाशन मल्लप अपनी पुत्रियों के कल्याण महोत्सव पर कराना चाहते हैं। यह बहुत ही योग्य संकल्प है।''

पोन्नकवि की मधुरस्मिति ने वातावरण में मधुरता घोल दी।

''क्या अत्तिमब्बे की सगाई पक्की हुई है ? वह भाग्यवान वर कौन है ? चामुण्डराय ने आश्चर्य से मल्लप से जिज्ञासा की।''

''अभी सगाई पक्की नहीं हुई है। पर दल्लप की सवारी उसी उद्देश्य से आई है। उनके स्वनामधन्य पुत्र नागदेव ही हमारी लड़की के योग्य वर हैं।''

मल्लप की बातें सुनकर दल्लप फूले नहीं समाए।

''आप दूसरी लड़की का भी विवाह कर दीजिए। यों तो वे यमज कन्याएँ हैं। इनका जन्म एक साथ हुआ है विवाह भी एक साथ हो जाए।''

चामुण्डराय ने गंभीरता से सुझाया।

''योग्य घर मिल जाए तो वह भी संभव है।''

पंप महाकवि ने कह ही दिया।

''क्या आपकी लड़कियों के लिए वरों की कमी है ? विलम्ब करने से वंचित रहने का भय सबको बना ही रहता है। यही सोचकर हमारी मातुश्री ने हमें यहाँ भेज दिया है। जब बहुत दिन पहले एक बार हमारे माता-पिता यहाँ आए हुए थे तब सुनते हैं कि श्रीमती अब्बकब्बे ने प्रस्ताव किया था और हमारे माता-पिता ने इस सम्बन्ध को स्वीकार भी किया था। आपकी दो कन्या मणियों में आप जिसे चाहें दीजिए, हम संतुष्ट होंगे। अत्तिमब्बे दल्लप की पतोहू बने, योग्य ही है पर गुंडुमब्बे हमारी पतोहू बन जाए। हमारे माता-पिता वृद्ध हैं। पोते के विवाह के लिए

आग्रह कर रहे हैं। यदि आप महानुभावों की अनुमति मिले तो दोनों विवाह श्रवणबेलगोल में ही हों। पवित्र क्षेत्र में शुभ कार्य सम्पन्न हो। सारा प्रबन्ध हम कर देंगे।''

चामुण्डराय बोल रहे थे उनकी भावुकता पर सबके सब स्थंभित से थे।

मल्लप सोचने लगे अचानक दोनों कन्या रत्नों की माँग दो योग्य घरों से हो रही है - इसका क्या जवाब दें ? दल्लप को नागमय्य से वचन मिला है तो अब्बकब्बे ने काललादेवी को वचन दिया है। दोनों अच्छे घर हैं। चामुण्डराय जी गंग राज्य की रीढ़ हैं, राष्ट्रकूट साम्राज्य के अधिकृत महामात्य हैं। दूसरा घर दल्लप का है वे चालुक्य राज्य के आधारस्तम्भ हैं और नागमय्य के बचपन के साथी हैं। लड़कियों का भाग्य है कि ऐसे घरों से माँग आई है। धन्य भाग!

और यदि ये दोनों विवाह सम्पन्न हो जायें तो कर्नाटक के सभी राज-घरानों को स्नेह सूत्र में बँध जाने का मौका मिलेगा। जैन संस्कृति के फूलने और फलने का सुअवसर भी प्राप्त होगा।

मल्लप यह जानकर मन ही मन फूले नहीं समा रहे थे। पर आत्म-संयम दिखाते हुए औचित्य पूर्ण उत्तर दिया -''आनंद की बात है फिर भी मुझे एक बार घर में विचार करने दीजिए।''

''क्या विचार करना है ? मान लो। बधाई है बधाई! तुम्हारा और तुम्हारी लड़कियों का अहोभाग्य है। अत्तिमब्बे दल्लप के घर की शोभा बढ़ाये और गुंडुमब्बे चामुण्डराय के घर की। कर्नाटक में शान्ति स्थिर होगी और अब युद्ध ही नहीं होगा। गंग और राष्ट्रकूट पक्के जैन हैं। वे राजा मूल-मूर्ति से हैं। दल्लप और तुम दोनों चालुक्यों के रक्षाकवच हो। अहिंसा सूत्र में अब सारा कर्नाटक बँध जाये।''

पंप कवि की भावना मुखरित हो उठी। ''पंप कवि जी में नवचैतन्य दिखाई दे रही है।'' पोन्न ने हँसते-हँसते कहा।

''नव्य चैतन्य! सच है। इस विवाह की बात से मैं अवश्य पुलकित हो उठा हूँ। इतना आनंदित हूँ कि कुछ कह नहीं सकता क्योंकि हमारे महाप्रभु की इच्छा उससे पूर्ण हो जायेगी। कर्नाटक में अब शान्ति और सुभिक्ष नामावशेष हो गए हैं। महाप्रभु अरिकेसरी का दिवंगत होना क्या था क्षुद्र शक्तियों का सिर उठाना था। वे अंतिम दिनों में मुझसे कहा करते थे। पंप, कुछ तो करो पर व्यर्थ के

रक्तचाप से कर्नाटक की रक्षा करो। कर्नाटक की नदियों में वीर पुत्रों का रक्त प्रवाहित हो रहा है, इसे यत्न पूर्वक रोक दो। राजा-महाराजाओं की झूठी प्रतिष्ठा की बलि-वेदी पर सारी प्रजा की सुख शान्ति चढ़ाई जा रही है।''

''ऐसे विचार करते-करते वे चल बसे। इन-विवाहों से मेरे प्रभु की वह अंतिम आशा पूर्ण हो जायेगी, जो संधि-विग्रह से भी पूर्ण नहीं हो पायी थी। विवाह से वह सम्पन्न होते देखकर में कृतकृत्य हो रहा हूँ।''

इस प्रकार पंपजी ने एक व्याख्यान ही दे दिया और कर्नाटक के राजकीय जीवन पर इन विवाहों से पड़ने वाले प्रभाव का स्पष्टीकरण किया।

''आपका कहना यथार्थ है। मैं भी यही सोचकर आनंदित हूँ। फिर भी मल्लप जी घर में एक बार पूछ लें।''

चामुण्डराय ने कहा। यह सुनकर मल्लप का मन उल्लसित हुआ।

मल्लप अपनी पत्नी से मिले। उनके चेहरे पर विचित्र शान्ति विराज रही थी। जीवन्मुक्त के समान वह दिखाई दे रही थी। अपने जीवन की सब समस्याओं का उत्तर पाकर कृतकृत्यता का अनुभव कर रही थी। इस धुन में बैठी हुई अब्बकब्बे को तब तक पति के आगमन का पता नहीं चला जब तक उन्होंने उसका नाम नहीं लिया। अपना नाम सुनकर वह चौंकी। भाव समाधि से बहिर्मुख होते ही उसके मुँह से निकला - ''ओह! तुम!''

''और कौन यहाँ आएगा ?''

''नहीं-नहीं, मैं कुछ और ही ध्यान में थी।'' ''मुँह ही बता रहा है।''

''क्या मुँह पर कुछ लगा है ?'' अब्बकब्बे ने आँचल से मुँह पोंछ लिया।

''ऐसा कुछ नहीं लगा है जो पोंछने से जाने वाला हो। क्यों व्यर्थ कष्ट उठाती हो।''

''एकाएक कई बड़े-बड़े मेहमानों के आ जाने पर भोजनादि का प्रबन्ध करना पड़ा। इस गड़बड़ी में संभव है कि कुछ न कुछ मुँह पर या अन्यत्र लगा हो।''

''ये किसलिए आए हैं, जानती हो ?'' ''मैं क्या जानूँ ?''

''जानती हो, फिर भी छिपाती हो।'' ''भला, तुम से भी छिपाऊँ ?''

''सुना कि तुमने काललला देवी को वचन दिया था।''

''वचन ? नहीं तो।''

''रावजी के पुत्र से सगाई की बात कभी तुम औरतों में चली थी और तब तुमने अपनी बेटी देने की बात मानी थी। अब बात पक्की करने के लिए ये आए हैं। क्यों हमसे इसे छिपा के रखा ?''

''यह बात है। यह तो कोरी बात थी। यदि तुम्हें पसंद न हो तो कह दो, यह नहीं हो सकता। हमारी कोई आपत्ति नहीं।''

''तुम वचन देकर घर बुलाओ और मैं ना कहकर निष्ठुर बनूँ। खूब।''

''तुम लोग राजा महाराजाओं से सगाई पक्की करने की धुन में हो ? मैं तो रावजी का स्तर अपने योग्य मानती हूँ।''

''तुम तो जानती हो वही हमारे लिए भी मान्य है।''

''उस समय की बात है। उस समय मानने न मानने का प्रश्न नहीं था। अब विचार लो।''

''क्या ? नहीं मानती हो।'' ''मानती हूँ। अब भी मुझे यह सम्बन्ध पसंद है।'' ''अगर मैं नहीं मानूँ तो.....?''

''जब नहीं मानते हो तो मेरा क्या बस है। यों ही मैंने वाग्दान किया था। अब वह पूरा नहीं हो सका। मैं थोड़े ही जीभ काढ़े बैठी हूँ। पति ही बात न रखें तो नारी क्या कर सकेगी ? अधिक से अधिक आँसू बहायेगी और आप ही मन को सांत्वना देकर चुप हो जायेगी। सोचा था कि बेटी के ब्याह में मेरा भी हक रहेगा।''

अब्बकब्बे की पलकें भींगी सी दिखाई दीं।

''क्या मेरी बेटी नहीं है ?'' ''है। किसने ना कहा ?''

''तब तुमने पहले इसका जिक्र मुझसे क्यों नहीं किया ? मेरी भी सलाह ले लेती ?''

''ऐसा कौन बुरा काम मैंने किया है ? अच्छे कार्यों में सलाह मशवरा क्यों ? मैंने बात की है तो कालला देवी से, न कि रावजी से। स्त्रियों की बात है। जब परस्पर मिलती हैं तो ऐसी बातें आती रहती हैं। यों ही बात आई थी मान लिया था। अब लाज रखना न रखना तुम्हारे हाथ है। यों तो दूसरी लड़की है। उसे जिसे दे दो मैं चूँ तक नहीं करूँगी।''

अब्बकब्बे ने हताश भाव से कहा।

''तुम जानती हो दल्लप जी क्यों आए हैं ?'' ''मैं क्यों जानूँ ?''

''कहते हैं कि पूज्य पिताजी ने उनके घर कन्यादान करने का वचन दिया था। अब उसकी याद दिलाने आए हैं, एक के बारे में लड़की के दादा ने, दूसरी के बारे में लड़की की माँ ने निर्णय कर लिया है। अब लड़कियों का बाप कुछ करना भी चाहेगा तो क्या कर पाएगा, मानों उसकी हस्ती ही नहीं।''

मल्लप ने गंभीरता का स्वांग भरते-भरते कहा।

''देखो! मेरे ससुर ने कितना अच्छा घर चुना है। पहले से ही लड़कियों का कितना ख्याल रखते थे और यहाँ तक सोचा है कि लड़कियों के विवाह के सम्बन्ध में उनके पिता को लेश मात्र की चिंता न रहने पावे।''

''ससुरजी का गुण गाने लगी। तब क्या दोनों घर तुम्हें पसंद हैं ?''

''पहले तुम अपना अभिमत बताओ।''

''मेरा अभिमत ? लेकर क्या करोगी ? एक ओर दल्लप ने धरना दिया है दूसरी ओर रावजी की माँग है। इनमें से किसको इंकार करते बनता है, बताओ तो सही ? हमें भी तो दूर की सोचनी है।''

''क्या मारे भय से लड़की देना चाहते हो ?''

''यही समझो। अब अपने आप माँग आई है। वर की खोज में धूल फांकने की नौबत नहीं आई। फिर भी तुम अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे से एक बार पूछ लो। उनकी स्वीकृति मिलें तो ये शुभविवाह श्रवणबेलगोल में सम्पन्न हो जाये।''

''सच ? नहीं, बता रहे हो।''

''नहीं तो। श्रवणबेलगोल में ही होंगे।''

''तब तो हमारी लड़कियों का अहोभाग्य है। अच्छा घर मिला है और पवित्र तीर्थ में विवाह होने वाले हैं। धन्यभाग!''

कहती हुई अब्बकब्बे अंदर गई और लड़कियों को आवाज दी। दो-एक बार बुलाना पड़ा लड़कियाँ दुमंजिले पर थीं उतर आईं। ऐसा लग रहा था मानों देवलोक से देवकन्याएँ आ रही हों। उनकी आँखों में चपला-सी दृष्टि इधर-उधर पड़ रही थी। उनका हाव-भाव बड़ा मोहक था। इठलाती हुई आकर माताजी के समीप खड़ी हो गई।

''बेटा! क्या कर रही थीं, इतनी देर ?''

अब्बकब्बे के स्वर में वात्सल्य घुल रहा था। उसने लड़कियों के मुँह पर लटकी घुंघराली अलकों को पीछे संवारा, मानों चाँद से कलंक पोंछने का प्रयास किया और आगे बोली – ''अब तक रावजी तुम दोनों की राह देख रहे थे।''

लड़कियाँ घबरा गई। ''कौन ? चामुण्डरायजी ? क्यों माँ ?''

अत्तिमब्बे ने चकित होकर प्रश्न किया।

''नहीं हमारे रावजी।''

''क्या पिताजी ?''

गुंडुमब्बे ने स्पष्ट किया। पर उसके मुँह पर हँसी खिल उठी।

'हाँ बेटा।'

''पर बताओ माँ, पिताजी कब से रावजी बने ?''

अत्तिमब्बे ने परिहास करते हुए पूछा। अब्बकब्बे भी उसकी बातों में छिपी ध्वनि को समझकर हँस पड़ी।

''चामुण्डराय भी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।''

अब्बकब्बे हँसते-हँसते बोली।

''हमारी ? क्यों ? अभी विदा हो रहे हैं ?''

''आश्चर्य का अभिनय करते हुए अत्तिमब्बे ने पूछा।''

''आज ही तो आए। आज ही जाने लगे, क्यों ? पिताजी ने दो-एक दिन ठहरने का आग्रह नहीं किया ?''

''किया और करेंगे भी। पर क्या तुम जानती हो वे किसलिए आए हैं ?''

अब्बकब्बे हँसी नहीं रोक सकी। उस हँसी का आशय समझकर भी अनसमझी सी अत्तिमब्बे बोली –

''मैं क्यों जानूँ। हम लोगों का आना-जाना बंद है। किसी से बोलना तक मना कर रखा है। जिस दिन हमारे दादाजी गए उन्हीं के साथ हमारा स्वातंत्र्य भी चला गया। अगर वे कहते तो जाकर चामुण्डराय से ही सीधे बातें करके जान लेतीं।''

''हाँ, हाँ अवश्य ही ऐसा करती। चामुण्डराय का क्या उनके बाप का भी

भय हमें नहीं। हाय! हम हत भागिनियों का स्वातंत्र्य ही क्या रहा है ? दादाजी के पीछे ही चला गया।''

रुआंसी हो गुंडुमब्बे बोली।

''चामुण्डराय जी को क्या समझ रखा है बेटा! गंग साम्राज्य के कर्णधार हैं।''

''भले ही चक्रेश्वर ही हों। इससे हमारा क्या बिगड़ेगा ? क्या हमें उनसे लोहा लेना है ? यों ही कुशल-क्षेम की बातें करने में क्या है ?''

अत्तिमब्बे ने गंभीरता से कहा।

''लोहा बजाने के लिए भी तैयार दिखाई देती हो। तुम दोनों डाइन हो।''

अब्बकब्बे ने ओंठ काट लिया।

''पुरुष लोग स्वार्थी हैं। हमारे हाथ में वीणा देकर विवश बिठा रखा है। नहीं तो लड़ने में भी पुरुषों की बराबरी कर सकती थीं। या तो मरकर वीर स्वर्ग पातीं या जी कर अमर कीर्ति पातीं।''

गुंडुमब्बे वीर महिला-सी गरज उठी।

''यह सब तुम्हें सिर चढ़ाए रखा है न, उसका परिणाम है।''

अब्बकब्बे झूठा क्रोध दिखाते बोलीं।

''दादाजी रहते तो इससे भी अच्छा परिणाम निकलता।''

अत्तिमब्बे ने निस्संकोच कह दिया।

''जाने दो। अब हम मतलब की बात करें।''

अब्बकब्बे ने बात काटकर कहा।

''हाँ, हाँ अवश्य करें। किसने मनाकर रखा है ?'' गुंडुमब्बे बोली।

''देखो बेटा। दल्लप जी नागदेव की सगाई पक्की करने आए हैं और....''

अब्बकब्बे की बात काटकर अत्तिमब्बे बीच में ही बोल उठी।

''रावजी अपने बेटे की।''

फिर तीनों अपनी हँसी नहीं रोक सकीं।

''तुम दोनों डाइन हो डाइन। पहले ही ताड़ लिया है।''

अब्बकब्बे ने कहा।

''माँ, हम क्या तुम्हारी बेटियाँ नहीं हैं। यह भी नहीं समझ सकें।''

हँसते-हँसते गुंडुमब्बे ने कहा।

इनकी बातों से अब्बकब्बे को अतीव आनंद मिल रहा था। फूली न समाती हुई बोलीं - ''बेटा, हमारा विचार है कि नागदेव से अत्तिमब्बे की और जिनदेवण से गुंडुमब्बे की बात पक्की कर दें।'' लड़कियों के भाव पढ़ने लगी।

''मेरी कोई आपत्ति नहीं। दोनों में से चाहे किसी से बातें पक्की कर लो।''

अत्तिमब्बे ने स्वीकृति दी।

इससे माँ प्रसन्न हुई। गुंडुमब्बे की ओर देखा।

''क्या मेरी बात मानी जाएगी ?'' गुंडुमब्बे ने उल्टा प्रश्न किया।

''क्यों गुंडू! मुझ पर भी संदेह है ? हम लोग चाहते क्या हैं ? तुम्हारा सुख ही हमारा सुख है। तुम जिसे चाहे पसंद कर लो।''

''माँ, हम दोनों यमज-संतान हैं। साथ-साथ जन्म लिया, साथ ही साथ विवाह नहीं कर सकेंगी ?''

''गुंडू, तुम्हारी बात समझ में नहीं आई और कितने दिन तुम साथ रह सकोगी ? दोनों के विवाह साथ-साथ ही करेंगे। अपने-अपने भाग्य में जो बदा हो उसे भोगने के लिए तुम्हें ससुराल तो जाना ही है।''

अब्बकब्बे ने कन्याओं की जीवन धारा की गतिविधि स्पष्ट कर दी।

''ठीक है। जहाँ जीजी की सगाई पक्की हो वहीं मेरी भी हो जाए तो ?''

गुंडुमब्बे ने गंभीर ध्वनि में कहा।

''क्या कह रही हो गुंडू ? क्या ऐसे अवसर पर भी मजाक करती हो ?''

अब्बकब्बे ने जरा क्रोध से कहा।

''मजाक नहीं कर रही हूँ माँ! जीजी के बिना मैं पल भर भी जीवित नहीं रहना चाहती। जीजी के साथ एक ही दिन, एक ही मुहूर्त में एक ही दूल्हे को सौंप दो हम दोनों को।''

''क्या कहती हो गुंडू ? दिल्लगी की भी कोई हद होती है। सच-सच

बताओ।'' ''दिल की बात कर रही हूँ, दिल्लगी नहीं।''

''तब तो तुम नादान हो बेटा। इतने दिनों तक तुम्हारा पालन-पोषण किया। अब तुम्हें विदा करना ही पड़ेगा। विवशता है बेटा। संसार का नियम जैसा है, वैसे हमको चलना पड़ता है। लड़कियों को ससुराल भेजना ही है क्योंकि वही उनका घर है। दो-एक दिन तुम जीजी के बिछोह में अवश्य दुःखी रहोगी पर जैसे-जैसे पति से प्यार पाकर घर गृहस्थी में फँस जाओगी तब सब ठीक हो जाएगा।''

''माँ, तुम्हारा कहना सच है। मैं मानती हूँ। पर मैं नहीं चाहती। क्या हम दोनों तुम्हारी कोख में नौ महीने साथ न रहीं ? क्या एक ही पालने में रहकर शैशव और बचपन नहीं बिताया ? साथ ही साथ इतने दिनों तक आनंद से रहते आईं। अब भी माँ, जो जीजी का पति होगा वहीं मेरा भी पति होगा यह निश्चय मानों।''

गुंडुमब्बे ने दृढ़ता से कह दिया।

''यह तुम्हारी भावुकता है बेटी, क्षणिक भावावेश में क्या जीवन भर पछताते रहना चाहोगी ? तुम नादान हो। चाहे जो कहो पर हम जानबूझकर ऐसा क्यों करने देंगे ? एक म्यान में दो खड्ग रखने की मूर्खता कौन करे ?''

अब्बकब्बे ने समझाया।

माताजी, यह मेरी व्यक्तिगत बात है। औरों की बात लेकर मैं क्या करूँ ? मानती हूँ पूरी जिम्मेदारी मेरी ही होगी। पर यह तो निश्चित है कि जीजी का पति मेरा भी पति होगा।

''बेटा अब रहने दो। तुम्हारा यह आदर्श प्रेम सराहनीय है।''

''पर जब सौत बन जाओगी तो यह बात नहीं रहेगी, समझी ?''

अब्बकब्बे ने भविष्य का चित्र स्पष्ट किया।

''सौत बनकर भी हम यह प्रीति निभा सकेंगी।''

गुंडुमब्बे ने दृढ़ता से कहा।

''पगली कहीं की। चुप रहो। जिंदगी कोई पालना नहीं, जहाँ आराम से सो सको। तुम सचमुच पगली हो समझी।''

गुंडुमब्बे पर तरस खाते हुए फिर से समझाया।

''अब तक अत्तिमब्बे सब सुन रही थी। पर कुछ न बोली थी। बहिन के प्रति उसका प्रेम उमड़ पड़ा। बोली – माँ! गुंडू के कहने के अनुसार ही हो जाये। हम दोनों साथ जायेंगी। एक दूसरे का सहारा बनकर रहेंगी।''

''लो! दूसरी भी पागल निकल आई। मैं तो समझ रही थी कि वही एक पागल है। देखो, यह सब न चलेगा। अब दो लड़के हैं। उनमें से अपनी–अपनी रुचि का पसंद कर लो और आजन्म यही प्रीति दूर रहकर भी निभाती हुई सुखी रहो। दोनों को एक ही घर हम नहीं भेज सकते, समझी।''

अब्बकब्बे ने निर्णायक स्वर में दृढ़ता से कह दिया।

''तब तो हम किसी को पसंद नहीं करेंगे, हमें विवाह नहीं करना है।''

दोनों के मुँह से एक साथ निकल पड़ा।

''दस साल पड़ी रहो तो जानोगी।'' अब्बकब्बे ने दाँत पीसते हुए कहा।

''दस ही क्यों ? चाहे जितने साल पड़े रहना पड़े, पड़ी रहेंगी। विवाह करेंगी तो एक ही वर से, नहीं तो, ऐसे ही रहेंगी।''

दोनों ने अपनी अभिलाषा को दृढ़ता पूर्वक बता दिया। अब्बकब्बे स्तब्ध रह गई। कुछ देर बाद बोली – ''क्या यही तुम्हारा अंतिम निर्णय है।''

''जी हाँ! यही अंतिम है। यह कभी नहीं बदलेगा।''

दोनों ने उसी दृढ़ता से दुहराया।

अब्बकब्बे पर मानों आसमान ही टूट पड़ा। कुछ देर तक सिर झुकाए बैठी रही। मुख पर चिंता की रेखा खिंच गई थी।

''अब तुम जाओ।'' दोनों लड़कियों से कहा।

वे दोनों चली गईं। उनके चेहरे पर प्रसन्नता नहीं थी।

जब मल्लप ने यह सुना तो वज्राहत सा बैठ गया। कैसे इस जटिल समस्या को हल करें। यह टेढ़ी खीर है। ऐसे सोचते–सोचते रात भर करवटें बदलते रहे। नींद नहीं आई। अंतिम पहर में झपकी सी आई।

मल्ल! अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे एक सिक्के के दो पहलू हैं। उनकी इच्छा पूरी करो बुरा नहीं होगा, दोनों को एक ही वर से ब्याह दो।

नागमय्य मानों कह रहे थे। मल्लप की आँखें सहसा खुलीं। सूरज निकल

आया था। धूप चढ़ रही थी। उठकर हाथ मुँह धोया। सीधे पंप कवि के पास गया। अपनी लड़कियों की नादानी और अपना स्वप्न दोनों कह सुनाया। सुनकर पंपकवि का रस-संपुट खिल उठा। भाव तरंग उठने लगी।

''ऐसी बहिनें! धन्यभाग। इन्हें आँखों देखने का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। तुम धन्य हो मल्लप। यह परमात्मा की लीला है, लड़कियों की इच्छा के अनुसार ही करो।''

''खैर, लड़कियों की इच्छा ही रखो क्या यह बात इतनी सीधी है ? सोचिए तो सही। लड़कियों को माँगते हुए दो सज्जन आए हैं। किसको दें और किसको नहीं दें ? दल्लप चालुक्य साम्राज्य की नींव हैं। उधर रावजी गंग साम्राज्य लक्ष्मी के सर्वस्व हैं। इन दोनों में से किसी का भी मन दुखाना नहीं चाहता। यदि यह बात नहीं आती तो दो लड़कियाँ थीं। दोनों को देकर संतुष्ट रह जाता। वह सौभाग्य मेरे भाग्य में नहीं बदा।'' यों कहते-कहते सिर पर हाथ धरे बैठ गया।

''मल्लप, यह संसार है। सारी बातें हमारे इच्छानुसार थोड़े ही बनेंगी, हमें विधि की इच्छानुसार नाचना पड़ता है।''

अब क्या करें ?

''वह मैं सोचूँगा, मुझ पर छोड़ दो। आज भोजन के पश्चात् कुछ रास्ता निकाला जाए। अब और किसी के कानों में इसकी भनक तक न पड़े, समझे ?''

''अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे पर ही यह भार डाल दें तो''

''यह ठीक नहीं! हम जानबूझकर क्यों अपने को संकट में डालें। सीधे रास्ते से यह काम नहीं बनेगा। ऐसी युक्ति करें, जिससे बुरा परिणाम न निकले और दल्लप तथा रावजी भी बुरा न मानें। तुम निश्चिंत रहो।''

इन शब्दों में पंपकवि ने मल्लप को सांत्वना दी।

भोजन से सब निवृत्त हुए। पिछले दिन का सा ही वैभव और संभ्रमपूर्ण वातावरण था। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे यमज संतानें थीं। उनमें इतना साम्य था कि कभी-कभी माता-पिता भी गुंडुमब्बे और अत्तिमब्बे में गड़बड़ कर बैठते तब और लोग कैसे पहचानते ? चामुण्डराय के मन में इन बहिनों को देखकर यह भाव उठ रहा था कि कैसे इनको अलग करें ? यह भी सोच रहे थे कि कहीं इन दोनों का विवाह एक ही व्यक्ति से हो जाए तो ? यही सोचते भोजन कर रहे थे।

मल्लप के यहाँ दोपहर को यथावत बैठक हुई। सब एकत्रित हुए। मल्लप और चामुण्डराय आए। दोनों कुछ व्यस्त से थे।

''मल्लप और कितने दिनों तक यों ही खा पीकर रह जायें ?''

मुस्कुराते हुए दल्लप ने जिज्ञासा की।

''चाहे जितने दिन। पर आपको कोई कष्ट तो नहीं हो रहा है ?''

पंप ने उत्तर दिया।

''ऐसा भोजन मिलता रहे तो कौन अभागा जाना चाहेगा ?''

चामुण्डराय ने हँसते-हँसते कहा।

''तब जल्दी क्यों ? कुछ दिन और ठहर जाइए।''

''हाँ, मैं आराम करना चाहता था। इधर कई वर्षों से इतना आराम नहीं मिला था। युद्ध और कोलाहल के मारे नाकों दम थी। यहाँ क्या आया, बस, सब चिंताओं से मुक्त होकर निश्चिंत हूँ।'' ध्वनि में हार्दिक प्रसन्नता झलक रही थी।

''मल्लपजी अब हम मतलब की बात करें। कहिए कब विवाह निश्चित करेंगे और कहाँ करेंगे ?''

दल्लप ने जिज्ञासा की।

''जी हाँ! मुझे भी लौट जाना है। बताइए लौटकर मैं माता जी से क्या कहूँ ?''

चामुण्डराय बोले।

मल्लप पंप की ओर कातर नेत्रों से देखने लगा।

''रावजी, एक बड़ी समस्या उठ खड़ी हुई है।''

''मल्लप जी! यह क्या ? निस्संकोच बताइए न! घर गृहस्थी की सैंकड़ों झंझटें होती हैं। क्या घर में कुछ प्रतिकूल परिस्थिति हैं ?''

सहानुभूति पूर्ण आश्वासन देते हुए चामुण्डराय जी ने कहा।

''ऐसी कोई खास नहीं। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे यमज संतानें हैं। साथ-साथ पाली पोसी गई हैं। अब ये बिछुड़ना नहीं चाहतीं।'' पंप ने सूचित किया।

''उनकी ओर देखते समय मुझे भी यही लगा। तरस आई। आम के जोड़े सी लगती हैं। इनको अलग-अलग रहने के लिए कहना बड़ा कठिन काम है। पर क्या करें ? लड़कियों के दिन साथ रह सकेंगी। बिछोह उनके भाग्य में बदा है।

एक बात हो सकती है। प्रारम्भ में कुछ दिन के लिए वे चाहे यहाँ या वहाँ साथ-साथ रहें। धीरे-धीरे ससुराल का मोह बढ़ेगा तब बिछोह नहीं अखरेगा यह प्रकृति का नियम है।''

चामुण्डराय जी ने सहज ढंग से कहा।

पर उनकी बात समाप्त होते ही पंप जी बोले - ''यह बात नहीं है और जो है वह इतनी सीधी भी नहीं है। लड़कियों का विचार कुछ और है। वे सोच रहीं हैं कि साथ-साथ मायके में रह सकीं है तो ससुराल में भी साथ-साथ रह सकेंगी ?''

यह सुनकर चामुण्डराय जी स्तब्ध बैठ गए। इस मौन से दल्लप भयभीत हुआ। किसी ने मौन तोड़ने का साहस नहीं किया।

''सच कहता हूँ न जाने आज भोजन करते समय मेरे मन में भी क्यों ऐसी ही बातें उठ रही थीं। सोच रहा था कि इन कन्याओं को एक ही घर पर रहने का सु-अवसर प्राप्त हो तो क्या ही अच्छा होगा। इस जुगल तारिकाओं को एक साथ एक ही मुहूर्त में एक सुपात्र को दिया जाये तो कैसा रहेगा। एक ही टहनी के दो-फूलों सी रहने वाली इन दोनों को अपने घर की शोभा बढ़ाते देखकर कौन अपना अहोभाग्य नहीं मानेगा ? आश्चर्य तो यह है कि लड़कियों का विचार भी ऐसा ही है।''

चामुण्डराय ने भावावेश से कहा। उनकी मुद्रा से ऐसा लग रहा था कि वे इन दोनों को अपनी पतोहू बनाने पर तुले हुए हैं।

यह ताड़कर दल्लप बोले - मल्लप, रावजी से पहले मैं यहाँ आया था।

दल्लप ने सत् सम्प्रदाय की शरण लेकर कहा - ''देखिए, यहाँ आगे पीछे की क्या बात है ? जिसे कन्याएँ पसंद करेंगी उसे वर लें।''

चामुण्डराय बोले। उनका विश्वास था कि लड़कियाँ अवश्य उन्हीं के घर आना पसंद करेंगी।

''कन्याओं ने हम पर ही यह भार सौंप दिया। यों तो उनके सामने दो वर हैं। दोनों में हम जिसे चाहें पसंद कर लें, वे वरने को तैयार हैं। पर दोनों किसी एक ही से ब्याह करना चाहती हैं। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे की बात स्पष्ट है और सीधी सी लगती है। पर हमारी समस्या टेढ़ी है, क्योंकि दल्लपजी भी हमारे आत्मीय हैं और आप भी। हमारी लड़कियाँ दोनों की वात्सल्य-भाजन बनी हैं और आप महानुभाव हमारे समाज के जंगम हिमालय हैं। हमें तो कुछ नहीं सूझ रहा है।

समस्या आपके सम्मुख रख चुके। अब आप जो भी मार्ग निकाल दें, उस पर चलने को तैयार हैं।''

पंप जी ने मल्लप की ओर से निवेदन किया।

''दल्लप और रावजी दोनों एक दूसरे की ओर देखते हुए अवाक् बैठ गए। दोनों की इच्छा थी कि इन कन्या रत्नों से अपने-अपने घर की शोभा बढ़ा लें। पर बात बड़ी जटिल थी। इन दोनों के जीवन में ऐसी समस्या अब तक कभी नहीं आई थी, क्योंकि यह शक्ति और सामर्थ्य की बात नहीं थी। युक्ति भी काम नहीं दे सकती थी। संधि विग्रह में दोनों नामी थे पर इनकी बुद्धि यहाँ काम नहीं दे रही थी।''

''दल्लप जी और चामुण्डराय जी! आप दोनों की दुहाई है। अंतःकरण की बात कहता हूँ। आप दोनों में मेरे मन में किंचित् भी भेदभाव नहीं है। चाहता था कि आप दोनों के घर कन्यादान कर मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। पर मेरी आशा की जड़ कट गई। मैं आप दोनों में किसी को भी ना नहीं कह सकता। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे मेरी कन्याएँ नहीं हैं; समझ लीजिए कि आपकी हैं। आप दोनों विचार कीजिए और जो भी निर्णय दीजिए यह हमारे सिर-आँखों पर होगा। केवल हम यही चाहते हैं कि आप दोनों की कृपा बनी रहे।''

मल्लप का गला रुँध गया।

''मल्लप! छिः! क्यों इतना व्यग्र होते हो ? समस्या उठी है तो हल करना ही होगा। व्यग्र होने से थोड़े ही काम बनेगा। हम पंपजी पर यह भार छोड़ देना चाहते हैं। वे ही मार्गदर्शन करें। वे वयोवृद्ध हैं और ज्ञानवृद्ध भी। उनकी बात मान लें। कम से कम मैं सहर्ष उनका निर्णय स्वीकार करूँगा।''

चामुण्डराय जी ने अपना निश्चय सुनाया।

दल्लप को भी यह बात पसंद आई।

पंप ने नहीं सोचा था कि निर्णय देने का भार उन पर आ पड़ेगा। अतएव क्षण भर मन ही मन विचार करते रहे फिर बोले -''यह मेरा अहोभाग्य है कि आप महानुभावों ने मेरा विश्वास किया है। इसके लिए मैं सदा आपका कृतज्ञ रहूँगा। अब मेरी सलाह है कि'' पंप की बात रुक गई।

''कहिए-कहिए''- एक ही स्वर में चामुण्डराय और दल्लप बोले।

पंप ने अपनी सलाह सुनाई। दोनों ने स्वीकृति दी।

तब पंप जी ने चामुण्डराय और दल्लप नाम अलग-अलग पुर्जों पर लिखा। एक-सा मोड़ा और एक कटोरी में शान्ति जिनेन्द्र के सम्मुख रखकर पूजा कराई। उस कटोरी को ढककर खूब हिलाया। दल्लप और चामुण्डराय ने श्रद्धा भक्ति के साथ उस पर फूल चढ़ाये। तीन साल का एक बालक बुलाया गया। उसने कटोरी से एक पुर्जा उठाकर पुरोहित जी के हाथ में धर दिया। पुरोहित जी ने उसे खोलकर सबको दिखाया। उस पर दल्लप का नाम लिखा था। दैव ने दल्लप का साथ दिया।

''पंपदेव, मैं भाग्य-परीक्षा में अनुत्तीर्ण हुआ।''

चामुण्डराय ने खिन्न होकर स्वीकार किया।

''रावजी अब देव ने इन दोनों कन्याओं को मुझे दे दिया है। अब इन पर मेरा अधिकार है। आप खिन्न न हों। अब भी क्या बिगड़ा है ? आपकी प्रसन्नता के लिए मैं इन दोनों को आपको सौंप सकता हूँ। आप खिन्न न हों। आप सहर्ष मेरा प्रस्ताव स्वीकार कीजिए।''

दल्लप ने निवेदन किया।

दल्लप जी, हमें दैवेच्छा के सामने सिर झुकाना ही पड़ेगा। व्यक्तिगत लाभ-अलाभ की बात अलग है। पंप देव के सामने, इस उम्र में कैसे झूठा निकलूँ ? असंभव है और एक बात है। नागमय्य की पोती मेरी भी पोती है पतोहू न बन सकी तो क्या हुआ ? मैं चाहता हूँ, ये दोनों सुखी रहें। अधिक क्या कहूँ ? आप भाग्यवान हैं।

चामुण्डराय की बातों में सच्चाई की झलक थी।

दल्लप ने दोनों हाथ जोड़कर उनको प्रणाम किया। यह निश्चय हुआ कि अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे का विवाह दल्लप के एक मात्र पुत्र नागदेव से हो। चारों ओर चामुण्डराय का गुणगान होने लगा।

❑❑❑

4.

इस विवाह में मल्लप अपनी सारी सम्पत्ति पानी के समान बहा देने को तत्पर था। पोन्नमय्य की अपनी संतान नहीं थी और वह स्वभाव से भी बड़ा उदार था। अब्बकब्बे की मायके की सम्पत्ति भी कुछ कम नहीं थी। इसके अतिरिक्त नागमय्य ने अपनी पोतियों के नाम पर काफी सम्पत्ति रख छोड़ी थी।

विवाह की तैयारी इस पैमाने पर हो रही थी कि राजा-महाराजाओं के यहाँ भी संभव नहीं हो। सारा पुंगनूर विवाह मण्डप बन गया था। हाट बाट सब बंदनवार से सुशोभित हुए। कस्तूरी, केसर, चंदन आदि सुगंध द्रव्य से सारा वायुमण्डल महक उठा। प्रायः जंगल में एक वृक्ष पर एक भी फूल नहीं बचा होगा क्योंकि पुंगनूर की सजावट में सब खप गए थे। खंभे के स्थान में सुपारी के पेड़ लगाए गए थे। इन पर पान की लताएँ भी लगाई गईं थीं। देखने में ऐसा लग रहा था मानों कितने ही बरसों से इस विवाह के ही उपलक्ष्य में यह मण्डप तैयार कर रखे हों। जगह-जगह आपके पेड़ मौर लिए ऐसी शोभा दे रहे थे मानो कामदेव दल-बल के साथ आ पधारे हों। इन पर लगी हुई मंदार लताओं से दाम्पत्य जीवन का आदर्श व्यक्त हो रहा था। आम से दृढ़ अवलम्ब पाकर लताएँ इठला रहीं थीं। अमृतलता की शोभा वर्णनातीत थी।

रंग-बिरंगे फूलों को इस ढंग से सजाकर रखा था कि वहाँ सदा इन्द्रधनुष का भ्रम बना रहता था। फूलों की सजावट में कई विचित्र-विचित्र आकर्षण थे। अधिक क्या कहें कला वहाँ सजीव हो रही थी। इन फूलों के मकरंद से आकृष्ट मधु-मक्खियाँ जगह-जगह मंडरा रही थीं और इनके द्वारा एकत्रित मकरंद की महक से वायुदेव का गंधवह नाम सार्थक सा लग रहा था। इनकी गुंजन से सारा वातावरण मधुर और सरस संगीतमय बना हुआ था। विवाह मण्डप की बात कौन कहे ? कर्नाटक के प्रसिद्ध कलाकार उसके निर्माण में लगे हुए थे। सप्त-वर्ण की शिला से मण्डप बनाया गया था। कर्नाटक की सारी कला और कमनीयता का वह अनुपम नमूना था। प्रायः इन्द्र का सभा-भवन भी इसके सम्मुख कम ही आकर्षण रहा होगा।

विवाह शुभ मुहूर्त में सम्पन्न हुआ। कैलासगिरि, चम्पापुरी, सम्मेदशिखर एवं ऊर्जयन्त जैसे पवित्र तीर्थों से जिनगंधोदक मंगवाया गया। वधू-वर की शोभा देखने वालों को विवश होकर विधाता को कोसना पड़ा था क्योंकि उसने दो ही आँखें दी थीं। नागदेव के दाहिने में अत्तिमब्बे और बाँयें में गुंडुमब्बे विराज रही थीं। नागकन्याओं के समान इन कन्या रत्नों को सजाया था। जब सौन्दर्य का समतोलन हो तो रसराज का प्रवाह क्यों न उमड़े ? नखशिख शृंगार से ये दीप-शिखा सी लग रही थीं। नागदेव की आँखें एक ओर गुंडुमब्बे को दूसरी ओर अत्तिमब्बे को देखकर खिल उठीं। ज्योतिर्लता-सी शोभायमान इन कन्याओं की कांति ने दीपशिखा को मलिन कर दिया था।

पंप कवि ने चामुण्डराय से कहा - ''देखिए ऋषभदेव जी के भी दो रानियाँ थीं। ये दोनों यशस्वती और सुनन्दा सी लगती हैं। बीच में बैठे हुए यह नागदेव साक्षात् ऋषभदेव लगते हैं।''

''कवि चक्रवर्ती जी! क्या यही अच्छा होता यदि आप इनको देखने के बाद आदिपुराण की रचना करते। उनको भी यमज संतान बना सकते थे।''

चामुण्डराय ने हँसते हुए कहा।

उधर दल्लप की पत्नी पद्मब्बे अब्बकब्बे से बोली - ''तुम धन्य हो बहिन! न जाने कितने जन्मों के सुकृत का फल इस रूप में प्राप्त है। तुम बड़ी भाग्यवती हो।''

''पर बहिन, आज से हमारा भाग्य समाप्त समझो।''

इन चाँदनी की पुतलियों को केवल तुम्हारे घर की शोभा बढ़ाने के लिए ही इतने दिनों तक मैंने धरोहर के रूप में रख लिया था। अब तक जो कुछ हमारा था वह सब तुम्हारा बना।

अब्बकब्बे की आँखें बरसने लगीं।

''यह क्या ? रो रही हो बहिन! मंगल अवसर पर आँसू नहीं बहाना चाहिए। जब चाहो तब इन्हें भेज दिया करेंगे। आपकी चाँदनी की पुतलियों पर ठंडी हवा का झोंका तक लगने नहीं देंगे। हमारे आँगन की शोभा बढ़ाने के लिए तुम्हारे यहाँ से यह दीपशिखा की जोड़ी लिए जा रहे हैं। इनकी लौ कभी मंद नहीं पड़ेगी। पद्मब्बे ने संतृप्ति की सांस ली।''

''फिर भी हम अभागों की ये ही संतानें थीं। अब तक हमें संतान-हीनता

नहीं अखर रही थी, अब सचमुच हम अभागे बने।''

पुन्नमय्य की स्त्री कौसल्यब्बे ने खिन्न होकर कहा – ''आप निस्संकोच हमारे यहाँ आया कीजिए। वहाँ भी आपकी सेवा करने का भाग्य इन लड़कियों को मिला करें।'' पद्मब्बे ने सांत्वना देते हुए उत्तर दिया।

गरीबों के यहाँ विवाह आदि शुभ कार्य हो तो हजारों का ऋण सिर चढ़ेगा। इससे न तब सुख से रह सकेंगे, न बाद को ही। वहीं धनिकों के यहाँ बात दूसरी है। एक ओर समुद्र का जल बादल बनता रहता है तो दूसरी ओर बरसात का सारा जल हजारों झरनों के रूप में बहकर फिर समुद्र में ही समाता रहता है। मल्लप ने पानी के समान सम्पत्ति बहाई। वधू-वरों को उससे कई गुना अधिक धनराशि राजा-महाराजाओं की ओर से भेंट के रूप में मिली।

विवाह के शुभ अवसर पर शान्तिपुराण की कई प्रतियाँ कराकर जिनालयों में स्थापित कराई गयीं। शान्तिनाथ सोलहवें तीर्थंकर थे और पाँचवे चक्रवर्ती थे। कहा जाता है कि वे अपने युग के नव-मन्मथ थे। पंचकल्याणक मूर्ति से रहने वाले इस तीर्थेश के चरित को कन्नड़ के प्रथम कवि चक्रेश पोन्न महाकवि ने लिखा था। जिनचन्द्र जी की पवित्र स्मृति में इस ग्रन्थ की रचना हुई थी। दल्लप और पोन्नमय्य की प्रार्थना इस रूप में सफल हुई थी।

विवाह की वेदी पर अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे मयूरी से बैठी थी, इनके बीच में साक्षात् मन्मथ से नागदेव विराजमान थे। अगल-बगल के ईख के पत्ते काम चाप से लग रहे थे। आमूल सुकुलों से लदी हुई माधवी लताएँ हिल-हिलकर वेदिका की शोभा बढ़ा रही थीं। इस मोहक दृश्य को देखने हजारों लोग एकत्रित थे। इस मधुमहोत्सव के अवसर पर पोन्नकवि ने शान्तिपुराण का पाठ किया। मन्मथ गीत का पाठ सुरीली तान में हुआ। वधू-वर आनंद सागर में तैरने लगे।

शान्तिनाथ राजकुमार थे। इक्ष्वाकु वंशज महाराजा विश्वसेन की रानी ऐरादेवी ने जब सोलह स्वप्न देखे तब शान्तिदेव का गर्भावास प्रारम्भ हुआ। तब देवगणों ने अव्यक्त रहकर ऐरादेवी की सेवा की थी। महल में प्रतिदिन सुवर्णवृष्टि होने लगी थी। नव मासों के पूर्ण होते ही ऐरावती के गर्भ-सुधांबुधि से शान्तिनाथ भुवि पर अवतीर्ण हुए। ईश के दर्शन के लिए देवगण इस पृथ्वी पर उतर आए। उन्होंने जन्माभिषेक महोत्सव मनाया। धीरे-धीरे शान्ति देव का शैशव और बाल्य समाप्त हुआ।

यौवन में पदार्पण करते ही शान्तिनाथ नव मन्मथ से मोहक दिखाई देने लगे। हजारों कन्या रत्न इनके पदतल पर आ लुटे। शान्तिनाथ ने दिग्विजय करके छहों खण्डों में अपना प्रभाव जमाया। इस उपलक्ष्य में वृषभाचल पर विजय स्तम्भ पर विजयगाथा लिखवाने का संकल्प करके जैसे ही वहाँ गए तो वहाँ तल से लेकर चोटी तक पूर्ववर्ती चक्रेशों की विजय गाथाएँ पाईं। एक ओर आश्चर्य हुआ, दूसरी ओर मन में यह विचार उठा कि आखिर मैंने कौन-सा बड़ा कार्य किया है। मेरे पूर्ववर्ती राजा-महाराजाओं ने यह कर ही दिया था। ऐसा विचार कर बिना अपनी विजयगाथा खुदवाए लौट चले।

इस घटना का बड़े सुंदर ढंग से पोन्नकवि ने वर्णन किया।

शान्तिनाथ चक्रवर्ती के रनिवास में कोई छियान्नवे हजाए ललनाएँ थीं। शान्तिनाथ चतुर्दश रत्नों के अधिनायक थे और षट्खण्ड के शासक। इन महानुभाव को पूर्व पुण्य के दश विध भोग प्राप्त था। महाकवि ने इसका ऐसा रोचक वर्णन किया कि श्रोतागण फूले नहीं समा रहे थे। शीतल महासागर के बीच में जिस प्रकार उष्णोदक का प्रवाह बनता रहता है, उसी प्रकार शान्तिनाथ के जीवन के रासरंग की तरंगों में ही विरागभाव भी छिपा हुआ था। सूक्ष्म दृष्टि वाले पोन्न महाकवि ने इसका बड़ा मार्मिक वर्णन सुना दिया।

एक बार जब शान्तिनाथ दर्पण में मुख देख रहे थे तब उनके मन में अपने जन्मान्तरों की स्मृति जाग उठी। समुद्र की तरंगों के समान वह उमड़ रही थी। उन्होंने समझा जीवन अस्थिर है, सुख दुःख क्षण-स्थायी हैं। इनके पीछे अपना जन्म नष्ट करना नहीं चाहिए। ऐसा सोचते ही वैराग्य भाव जाग उठा। तत्क्षण उन्होंने संसार का त्याग किया।

इस घटना का वर्णन उस जटाधारी श्रमण पोन्न ने ऐसा किया कि श्रोतागण स्वयं वैराग्य-भाव से ओतप्रोत से दिखाई देने लगे। कथा आगे बढ़ी।

शान्तिनाथ ने अपने रनिवास का त्याग किया। छहों खण्डों के शासक शान्तिनाथ ने राज्य की उपेक्षा की। चतुर्दश रत्नों के अधिपति शान्तिनाथ ने उनको अपने प्रयत्नों के मार्ग का रोड़ा समझकर त्याग दिया। शान्तिनाथ ने दिव्य चक्र को भी अपने जीवन का वातचक्र मानकर लौटा दिया। इस प्रकार अपना सर्वस्व त्याग दिया। सबसे दूर चले गए और पूर्ण विरक्ति भाव से शान्तिनाथ दिगम्बर बने। घोर तपस्या की। अंत में केवलज्ञान प्राप्त करके जिनेन्द्र बने।

इस घटना प्रवाह का ऐसा वर्णन कवि ने सुनाया कि श्रोताओं के हृदय में रसगंगा की कल्लोलें उठने लगीं। फिर वह धीरे-धीरे भक्तिगंगा बन प्रवाहित हुई।

शान्तिनाथ की दिव्यध्वनि रूपी प्रसाद उस विवाह मण्डप में पोन्न कवि से बाँटा गया। श्रोताओं का मन खिल उठा। सब अर्ध निमीलित लोचन बने बैठे थे मानों ब्रह्मानंद का रसास्वादन कर संतृप्त हुए हों। पोन्न कवि के वर्णन का यह प्रभाव था कि लोगों के विवाह-मण्डप में रहकर भी उस ओर ध्यान नहीं दिया। उनको यह बात सत्य से बढ़कर सत्य सी प्रतीत हो रही थी कि सब समवसरण में बैठे हैं और इन्हें जिनेन्द्र का दिव्य सान्निध्य लाभ हुआ है।

शान्तिनाथ सिद्ध बने, परिपूर्ण बने, सिद्धशिला पर आसीन हुए। परमज्योति स्वरूप बने। निराकार और निरुपाधिक बनकर विराजमान हुए। इसका वर्णन सुनते-सुनते श्रावक इतने खिल उठे मानों स्वयं भी सिद्धशिला के दर्शन कर चुके हों और अलौकिक आनंद का आस्वादन करते हुए रोमांचित हो उठे।

विवाह समारोह में सम्मिलित सुमंगली-वृन्द को भेंट के रूप में अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे ने शान्तिनाथ पुराण की प्रतियाँ दे दीं। कोई सौ-एक प्रतिलिपियाँ बनी थीं, अतएव सबको प्रतियाँ नहीं मिल सकीं। जिन्हें प्रतियाँ नहीं मिली वे अत्यन्त उदास दिखाई दे रहीं थीं। उनके उतरे हुए चेहरे को देखकर अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी खिन्न हो उठीं। मल्लप से यह सहा नहीं गया। उन्होंने सबके सम्मुख हाथ जोड़कर निवेदन किया कि कृपया कोई निराश न हों। शीघ्र ही हजारों प्रतिलिपियाँ कराई जायेंगी और प्रत्येक के घर भेजी जायेंगी।

यह देखकर और सुनकर पंप कवि की आत्मा फड़क उठी वे कहने लगे -

''अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे कर्नाटक-जननी की दो आँखें हैं।''

अपनी कृति की, अपनी आँखों के सामने ही हजारों प्रतिलिपियाँ बनते देखकर पोन्नकवि फूले नहीं समा रहे थे।

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे दोनों ने सब सुहागिनों के आँचल को मणि मुक्ताओं से भर दिया। इनके भाग्य में अक्षय धनराशि प्राप्त थी। अंतःकरण उदार था। इस अक्षय पात्र को रिक्त करने में उदारमन असमर्थ बन गया कि फिर भी ये दानचिंतामणि कहलायीं। इनका अंतरंग समवसरण से अंकित था अतएव वे सम्यक्त्व चूड़ामणि कहलाने लगीं।

❑❑❑

5.

फलों से सजी हुई थाली लिए जब अपनी प्रियतमा को कमरे के अंदर चले आते देखा तो नागदेव ने संभ्रम से स्वागत किया.....

''आओ अत्तिमब्बे, आओ।'' यह सुनकर वह हँस पड़ी और बोली –

''ओह! क्या मुझे पहचान नहीं सके ?''

ऐसा कहती हुई नाट्य भंगिमा में खड़ी हो गई।

नागदेव आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। आपाद-मस्तक बार-बार देखकर भी तृप्ति नहीं हो रही थी। उस सौन्दर्य राशि को हृदय से लगा लेने के लिए नागदेव व्यग्र हो उठे।

''क्यों आप ऐसे देख रहे हैं ? कहीं नजर लग गयी तो।''

''देखते-देखते, देखते ही रहने की चाह बढ़ती है नजर लगती ही नहीं।''

''नजर देखने वालों को नहीं लगती, मुझे लगती है समझे!।''

ऐसा कहती हुई वह सोने की थाली रखकर उल्टे पाँव चली गई। थोड़ी देर बाद सुवर्ण-पात्र में दूध लिए अपने निकट आई हुई कन्यामणि को अपनी ओर खींचते हुए नागदेव ने कहा –

''गुंडू क्यों भाग गई ? खैर, आ तो गई! यही खुशी की बात है।''

कहकर कोमल गाल की चुटकी ली।

वह मुस्कुराते हुए बोली।

क्या मुझे गुंडु समझ गये ? खूब! खूब!! पत्नि तक को पहचान न सके ? हँसी का फव्वारा फूट निकला।

''क्यों बनाती हो। अभी-अभी तो आई थी, अत्तिमब्बे कहा तो ना कहकर चली गई थी, अब गुंडुमब्बे कहने पर वही उत्तर देती हो। तुम दोनों को एक साथ बिठाकर पहचानने के लिए कुछ तो कर देना चाहिए।''

क्या करेंगे ? सुनाइए!

आश्चर्यचकित होकर बोली।

''तुम दोनों एक-सी हो। एक-सा रंग, एक-सा रूप। एक ही बानगी। हँसती हो तो गालों पर एक-सी गड्डी पड़ती है। न जाने तुम्हारी मायके में लोग कैसे पहचानते थे।''

''वह जाने दीजिए। आप तो बताइए कि अब क्या करेंगे पहचानने के लिए। हमारे वर्णन में कवियों को क्यों लजाते हैं ?''

''ठीक कहती हो। तुम्हारी सौन्दर्य-राशि में मेरी बुद्धि खो जाती है। नागदेव ने कहा।''

''सच! चकित-सी बोल उठी।''

सोच रहा हूँ कि तुम दोनों के शरीर पर ऐसे कुछ चिह्न खुदवा दूँ, ताकि, पहचानने में कोई दिक्कत न हो।

गंभीर भाव से बोले मानों बड़ा आविष्कार का परिणाम सुना रहे हों।

''बधाई है बधाई आपने खूब सोचा है।''

''क्यों ? क्या यह ठीक नहीं होगा ? यदि तुम्हारे माथे पर तुम्हारा और उसके माथे पर उसका नाम ही खुदवा दूँ तो तुम लोगों को देखते ही नाम लेकर स्वागत कर सकता हूँ। गले लगाकर इठला सकता हूँ। उसमें कैसा आनंद मिलता है समझीं ?''

नागदेव ऐसे बोल रहे थे मानों जागते-जागते कोई स्वप्न देख रहे हों।

''पर असली बात किनारे रह गई। आप बहुत दूर बह गए।''

''बहा तो नहीं गया। मेरा आशय समझीं।''

कहकर अपने पास बिठा लिया। अपनी समझ में समस्या अच्छी तरह सुलझाई थी।

वह भी बैठ गई। हँसते-हँसते विनोद शील जिज्ञासा करने लगी।

''क्या आप एक ही के माथे पर नाम खुदवाएँगे। या दोनों के ? दोने के। मैं क्या अंतर मानूँ ? जब खुदवाना ही है तो दोनों माथे पर खुदवा दूँगा ?''

नागदेव ने अपनी बात स्पष्ट की।

''हमें हिसाब पढ़ाने के लिए एक ओझाजी आया करते थे। अपने विषय के नामी पण्डित थे। हमारा अहोभाग्य है ऐसे विद्वान् के चरणों में बैठकर गणित शास्त्र पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त था। हमारे घर पर एक बहुत ही सुंदर बिल्ली थी। उस बिल्ली और उसके बच्चों को हमने प्यार से पाला था। जब कभी हम गणित शास्त्र पढ़ने बैठतीं, तब वे आकर म्याऊँ-म्याऊँ करके ऊधम मचा देते थे। एक दिन ओझा जी को इतना क्रोध आया कि तुरन्त बढ़ई को बुलाया और दरवाजे में दो छेद बनवा दिए-एक बड़ा और एक छोटा। दूसरे दिन अपने ओझाजी को प्रसन्न देखकर पूछा कि क्या एक ही छेद से काम नहीं चल सकता था ? उस पर वे बोले - देखो, अभी लड़की हो। क्या इतना भी समझ में नहीं आता कि बड़ा छेद बड़ी बिल्ली के लिए है और छोटा इन छोटी के लिए है। उनकी गंभीरवाणी सुनकर हम अपनी हँसी नहीं रोक सकी थीं, फिर भी किसी तरह हँसी दबाकर बोली।''

''क्या पण्डितजी! बड़े छेद से छोटी बिल्ली नहीं निकल सकती ?''

इससे पण्डितजी का चेहरा तमतमा उठा। बोले - क्या मुझे मूसरचंद मानती हो ? देखो, चालुक्य चक्रवर्ती ने मुझे गणित शास्त्र पारंगत माना है और सम्मान किया है। ऐसा कहते हुए अपने जेब से सुवर्णपदक निकाल कर दिखाया। चेहरे से उनका आत्माभिमान टपक रहा था। वे बोल ही रहे थे कि एक बात हो गई। बड़ी बिल्ली बड़े छेद से कमरे के बाहर चली गई और उसके बच्चे उसी छेद से माँ के पीछे चल पड़े। फिर उसी प्रकार आकर मेरी गोद में खेलने लगे। हम अपनी हँसी नहीं रोक सकीं, पर ओझाजी आपे से बाहर हो गए। बोले- ''ये भी मूर्ख हैं और तुम भी हो। मेरा मतलब ही इनकी समझ में नहीं आया तो क्या करूँ।'' कहते कहते घर चले गए। कहानी सुनाकर मुस्कुराते बैठ गई।

''तुम्हारे ओझाजी का व्यवहार ज्ञान थोथा था।''

नागदेव ने ओझाजी की मूर्खता पर तरस खाते हुए कहा।

''खैर, वे दृष्टि से कुछ भी हों, पर आप तो व्यवहार कुशल हैं ?''

फिर मुस्कुरा उठीं।

''इस क्षेत्र में कौन मेरे टक्कर का है ?''

''बिल्कुल सही बात है। इसीलिए तो आपने दोनों के माथे पर नाम खुदवाने की योजना बनाई है ?''

''कुछ तो करना ही था। अगर यह बन जाये तो दोनों को पहचानने में बिल्कुल दिक्कत नहीं रहेगी।''

नागदेव ने दृढ़ता से दुहराया।

''जी, क्या एक के माथे की खुदवाई से दोनों की पहचान नहीं बनती ?''

''कैसे ? बताओ तो सही ?''

''खूब! खूब!! आप हमारे गणित शास्त्र विशारद के बड़े भाई ही हैं।''

यह बात सुनते ही नागदेव को अपनी बेवकूफी समझ में आई। खुद हँस पड़े। तब तक दूसरी भी आकर उसकी बगल में बैठ गई। नागदेव के आनंद का पारावार उमड़ने लगा। सौन्दर्य राशि के बीच में अपने को पा, फूले नहीं समा रहे थे। एक को देखने के लिए दो नेत्र कम थे, तब दोनों के सौन्दर्य को देखें कैसे ? दोनों ललनाओं ने महीन साड़ी पहनी थी। ऐसा लग रहा था मानों नन्हीं सी लताएँ चाँदनी के परिधान में इठला रही हों। दोनों चाँदनी को सांचे में ढालकर बनाई गई पुतलियों-सी लग रही थीं।

नागदेव के दोनों हाथों में सौन्दर्य की दो पुतलियाँ थीं। कस्तूरी पर सान चढ़ाए कुसुम-शर के समान ये दोनों कुसुम कोमल लता भित्तियाँ ही थीं। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे के साथ नागदेव ने ऐसे ही विहार किया जैसे मंदमारुत लताओं से किया करता है। एड़ी तक लटकने वाली इनकी नागवेणी के साथ नागदेव खेल रहा था। उन दोनों ने नागदेव को खूब रमाया। दोनों जब नागदेव के कंधों पर सिर रखकर बैठ गई तो नागदेव दोनों के सिर पर अपनी अँगुली फेरते-फेरते रोमांचित हो उठे और वे भी आपाद-मस्तक सिहर उठीं।

❑❑❑

6.

विवाह के पश्चात् एक महीना बीता। मल्लप ने अपने दामाद को आग्रह-पूर्वक घर पर ठहरने के लिए राजी कर लिया था। इधर अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे नित्य नये-नये ढंग से उनकी रंगरेलियों में रस बढ़ा रहीं थीं। इस दिशा में दोनों में होड़ लगी हुई थी। पति के साथ हर बात में प्रतिस्पर्धा करती हुई दोनों रमणियों ने उन्हें अपने हृदयेश्वर बना लिया। कभी पति के साथ वन विहार करतीं और कभी जल क्रीड़ा करतीं, जिससे कि उनका प्रणय सूखने न पावे। इन प्रणय रसिकाओं ने एक बार धनुष से ऐसी टंकार निकाल दी जिससे नागदेव का साहस भी भड़क उठा। उसी प्रकार दोनों कृपाण-हस्त होकर अपनी विद्या दिखाने लगीं, नागदेव को ऐसा लगा कि देवियाँ तलवारों की छाँव में खड़ी होकर उन्हें बुला रही हैं।

जब कभी दोनों वीणा के तारों से विविध स्वर छेड़तीं तो नागदेव फूले नहीं समाते थे। उनके कंठ से निकलने वाली स्वर लहरियाँ मल्लिका प्रकुंज से खिसक कर आने वाली ठंडी हवा सी सुखद लगतीं थीं। वे इस प्रकार मूर्छनाएँ छेड़तीं मानों पारिजात की जड़ हिलाकर चारों ओर प्रसून बिखेर रही हों।

कभी-कभी नर्तन की भंगिमा में दोनों मयूरी-सी लगती थीं। बहती नदी के समान उनके पास आकर उनके हृदय में भी राग-रस तरंगिणी बहा देतीं। मलय मारुत के स्पर्श-सा उनका स्पर्श लग रहा था। सुमनों के चारों ओर मँडराने वाली भ्रमरी-सी दोनों लगतीं। सौन्दर्य में लक्ष्मी, विद्या में सरस्वती और वीरता में साक्षात् दुर्गा-सी ये दिखाई देने लगीं। तात्पर्य यह कि नागदेव को घड़ी भर भी फुर्सत नहीं मिलती और अकेले रह नहीं पाते। उन दोनों के सम्मोहनास्त्र में नागदेव बंधित थे।

गुज्जर बड़ा नीच था। अपने बड़े भाई को गद्दी से हटाकर, सगे सम्बन्धियों के रक्त में रंगे हुए हाथ में शासन करने लगा था। दिन पर दिन राज्य में ऊधम मचाते रहता था। अरिकेसरी ने एक बार इस नीच को परास्त कर निर्वासित कर दिया था। राष्ट्रकूटों की गद्दी पर गुज्जर के चाचा बछंगा को बिठा दिया था। ऐसे दुष्ट को कुचल कर अरिकेसरी ने कर्नाटक में सुख-शान्ति की स्थापना की थी।

अरिकेसरी के स्वर्गवास होते ही गुज्जर ने सेना सजाई। छोटे-मोटे सरदारों को लूटने लगा। चालुक्यों के तैलप के राज्य में भी कभी-कभी लूट खसोट प्रारम्भ कर दी थी। तैलप की सहनशक्ति ने जब जबाव दे दिया तो उन्होंने पोन्नमय्य के नेतृत्त्व में बहुत बड़ी सेना उसे कुचल डालने के लिए भेजी। कावेरी के मैदान में पोन्नमय और गुज्जर के बीच घमासान युद्ध हुआ। हजारों वीरों ने खून की होली खेली। कावेरी का जल रक्तमय बना। अंत में तैलप की सेना विजयी हुई। पर पोन्नमय वहीं ढेर हो गया। गुज्जर के बाण ने उसको हाथी से गिरा दिया था। अंतिम क्षण तक उसके मुँह से तैलप की जय का नारा निकल रहा था। उस वीराग्रणी का शव पूर्ण सैनिक गौरव के साथ पुंगनूर लाया गया।

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे का विवाह मण्डप ज्यों का त्यों था। दामाद गौना करा के लौटा तक नहीं था। नव दम्पतियों का रसरंग अभी दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा था। ऐसे समय में पुन्नमय्य की लाश आई। विवाह मण्डप में ही अरथी उतारी गई। मल्लप ने पिता को खो दिया था, अब भाई से भी वंचित हो गया। अपने को अनाथ समझने लगा। मल्लप के लड़कों के लिए पुन्नमय्य पिता से भी बढ़कर प्यारे थे। अब वे रो रहे थे। पुन्नमय्य अब्बकब्बे का देवर था। पर उनमें भाई बहिन का-सा प्रेम था। उसके शोक का पारावार प्रक्षुब्ध हो उठा। कौसल्यब्बे शिशु-सी रो रही थी। छाती पीट-पीट कर रो रही थी।

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे फूलों की शय्या से उठकर बाहर आयीं। आते ही इन्हें यह दारुण दृश्य देखना पड़ा। उन पर मानों वज्र ही टूट पड़ा। गौरवपूर्ण पद प्रतिष्ठाओं का दारुण परिणाम आँखों देखा गया। वे सोच रही थीं कि गरीब भी मरते हैं पर उनकी मृत्यु सहज होती है। पर पद प्रतिष्ठा प्राप्त व्यक्ति भी मरते हैं, कहाँ ? कैसे ? और कब ? यह कहना कठिन है। उनको अकाल में ही मौत आ धरती है। यह कैसी विडम्बना है। वे रो रहीं थीं। उन कन्याओं का रोना सुनकर पत्थर भी पिघल जाता। स्वभावतः दुःख संक्रामक होता है। एक का दुःख दूसरे का दुःख बढ़ा देता है।

नागदेव अपनी प्रेयसियों के दुःख से दुखी थे। वे भी आँसू बहा रहे थे।

पुन्नमय्य की चिता सजाई गई। कौशल्यब्बे सहगमन की तैयारी करने लगी। ''क्या बहिन हमें छोड़कर चली जाओगी ?'' कौशल्यब्बे को छाती से लगाकर अब्बकब्बे शोक कातर हुई। ''दीदी! मुझसे कोई अपराध हुआ हो तो

क्षमा कर देना।'' कौशल्यब्बे निर्विकार चित्त से विनती कर रही थी।

''बहिन! तुम सचमुच मेरी सगी बहिन ही थी। मुझसे कुछ अपराध हुआ हो तो क्षमा करो। भूल जाओ।''

अब्बकब्बे का गला रुंध गया। दुःख अपार था। ''अत्ति! विदा दो।''

इतना कहते-कहते कौशल्यब्बे का गला बैठ गया, आगे बोल नहीं सकी। ''माँ! क्या हमें अनाथ छोड़ दोगी ? हमें ससुराल भेज देने तक कम से कम रह जाओ।'' अत्तिमब्बे ने रोते-रोते प्रार्थना की।

''गुंडू तुम्हें तो छोड़ते नहीं बनता। पर क्या करूँ।'' कहते-कहते कौशल्यब्बे चटपटाने लगी।

''चाची! दादा के बाद तुम ही हमारे लिए सर्वस्व थीं। अब हमें अनाथकर जाना चाहती हो।'' कह गुंडुमब्बे रो पड़ी।

मल्लप की अन्य संतानों ने भी ऐसे ही दुःख शोक से चाची को विदा किया। चिता पर पुन्नमय्य की पार्थिव देह धरी गई।

मल्लप ने अग्नि स्पर्श करा दिया। सूखी लकड़ी धाँय-धाँय कर जल उठी। कौशल्यब्बे ने चिता की परिक्रमा की और हँसते-हँसते उस पर चढ़कर पति की बगल में गलबाहीं देकर सो गई। चिता की लपटों ने थोड़े ही समय में सति-पति के दोनों शरीर को स्वाहा कर दिया।

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे ने समझा कि नारी-जीवन का अर्थ आँसू है। अभी विवाह की हल्दी सूखी तक नहीं थी दोनों ललनाओं को स्त्री जीवन के भयंकर परिणाम से अवगत होने का मौका आ पड़ा। दादा के मरण से ही दोनों खिन्न थीं। उसे किसी तरह भुलाने का प्रयत्न कर रही थीं कि चाचा की मौत हो गई। इससे भी भयंकर था चाची का सहगमन।

दादा ने दाना-पानी छोड़कर मृत्यु का स्वागत किया था। अब तो चाची को हँसते-हँसते जलती चिता पर चढ़ते देखा। इनसे यह सहा नहीं गया और जब चाची को रोकने के उद्देश्य से ये आगे बढ़ीं तब और लोगों ने इन दोनों को रोक लिया। ये कुछ नहीं कर सकीं। एक को धर्म के नाम पर मरते देखा था तो दूसरे को परम्परा या रुढ़ि के नाम पर। क्या मौत जिंदगी से भी प्यारी है ?

❑❑❑

7.

''चूड़ियाँ चाहिए चूड़ियाँ। लाल, पीली, काली, नीली चूड़ियाँ। सुहागिनियों की सुहाग बढ़े.....चूड़ियाँ।''

यह ध्वनि सुनकर पद्मब्बे ने नौकरानी को भेजकर चूड़ी वाले को बुला लिया।

''कहाँ के रहने वाले हो।''

यह प्रश्न सुनते ही चूड़ी वाले सेट्टी ने कंधे से अपना बोझ उतारा। लम्बी सांस छोड़ी और वहीं बैठ गया। देखने में बहुत थका मांदा लग रहा था।

''क्या बहुत दूर से आए हो ?''

पद्मब्बे ने फिर प्रश्न किया।

''जी हाँ, पेट के वास्ते आना पड़ता है।''

उस सेट्टी ने उदास होकर कहा।

''मेरी बहुओं को चूड़ियाँ चाहिए। पहले आराम लो''

कहती हुई पद्मब्बे ने छाछ मँगवा कर पीने को दिया।

सेट्टी को बड़ा आनंद हुआ। उसे पीकर आशीष दिया.....

''माँ! तुम्हारा घर फूले फले। सदा खुश रहे।''

तब तक पद्मब्बे ने 'अत्ति' यह आवाज दी। नौकरानी के बिछाए गए मखमली आसन पर अत्तिमब्बे आ बैठी। उसके हाथ में किसी तेल की दो चार बूँदें डालकर अच्छी तरह मल लेने की सलाह दी गई। उस सुरसुंदरी का हाथ अपने हाथ में लेकर खूब मल-मल कर मुलायम किया। हाथ पर ठीक बैठने वाली चूड़ियाँ छाँटकर धर दिया। उसके पसंद की चूड़ियाँ लेकर चढ़ाने लगा। एक साथ चार-चार चूड़ियाँ चढ़ाता था और मन बहलाने के लिए इधर-उधर की बातें भी खूब कर रहा था। यों ही सहज कोमल हाथ पर औषधि मिश्रित तेल डाल देने से और भी कोमल बने थे। चूड़ियाँ चढ़ा देने में कोई कष्ट नहीं हुआ। हाथ भर

चूड़ियाँ पहनाई।

''देख! इन दिनों में कैसी चूड़ियाँ बनती हैं। घड़ी दो घड़ी भी हाथ पर नहीं टिकतीं।'' पद्मब्बे ने कहा।

''लेकिन माँ जी, मेरी चूड़ियाँ ऐसे नहीं होतीं। देख लीजिए।''

सेट्टी ने उत्तर दिया।

''हाँ, ऐसे ही तो हर कोई कहता है और पैसे ले जाता है।''

पद्मब्बे ने अनुभव की बात बताई।

''इस बार परीक्षा कर देखिए। पहली बार मैं यहाँ आया हूँ।''

''कहाँ से आ रहे हो ?''

''बहुत दूर से। क्या जमखंडी का नाम सुना है ?.....उसके पास मृदुवोललु गाँव है- वहीं मेरा जन्म स्थान है।''

''ओहो, दूर से आए हो। क्या चूड़ियाँ ढोकर इतनी दूर पैदल आए हो ?''

''ढोकर तो नहीं आए। हमारे पास एक बैल है उस पर चूड़ियाँ लादी जाती हैं और हम तीन आदमी उसके पीछे-पीछे आते हैं।''

''कौन-कौन ?''

''मैं, मेरा बड़ा लड़का और तीसरा मेरा छोटा लड़का।''

''तुम्हारा नाम क्या है ?''

''जी, जिनवल्लभ कहते हैं।''

'क्या जैन हो ?' 'जी हाँ।' 'चूड़ियाँ अच्छी हैं ?'

''संदेह क्यों कर रही हैं ? मैं गरीब तो हूँ सही पर झूठ नहीं बोलूँगा। चोखा माल लाता हूँ और महंगा बेचता हूँ। आपके सम्मुख झूठ बोलकर आपको मुँह दिखाने योग्य रहेंगे ?'' यों सेट्टी सफाई देता रहा।

इधर अत्तिमब्बे चूड़ियाँ पहन चुकी थी। भीतर चली गई और वहाँ गुंडुमब्बे आ बैठी। इसे देखते ही चूड़ी वाला स्तंभित हो गया।

''क्यों बेटी, मेरी चूड़ियाँ भी इतनी जल्दी झर गईं ?''

आश्चर्य से पूछा। ध्वनि में खिन्नता थी।

''देखो न ?'' गुंडुमब्बे ने मुस्कुराते हुए कहा।

''देखा! अभी-अभी तुमने ही तो धराया था। अभी-अभी तो अंदर गयी थी। देखो कितनी जल्दी झर गईं।'' पद्मब्बे ने मुस्कुराते हुए कहा।

पर उस आदमी के चेहरे का रंग उड़ गया। सखेद-आश्चर्य से बोला - ''हाथ के कंगन को आरसी क्या माई! आपकी बात मानता हूँ। इस बार मैं मुफ्त में चूड़ियाँ चढ़ा देता हूँ। अबकी बार झरें तो अपने पास जितनी चूड़ियाँ हैं सबको ढेर कर दूँगा। यह तो मेरा दुर्भाग्य है। आज तक ऐसा कभी नहीं हुआ था और एक बार जाँच कर देखिए।'' कहते-कहते अत्युत्तम चूड़ियाँ चुनकर चढ़ाने लगा।

''सुनो, आज शाम का भोजन हमारे यहाँ करो। अपने दोनों लड़कों को भी साथ बुला लाओ।'' पद्मब्बे ने न्यौता दिया।

''आप कितने अच्छे लोग हैं। आप ही के यहाँ मेरे दुर्भाग्य ने मुझे झूठा ठहराया। खैर भाग्य का फेर है।''

जिनवल्लभ की ध्वनि में आत्मग्लानि थी।

गुंडुमब्बे चूड़ियाँ धर चुकी थी।

''शाम को आओगे न ? कहते हुए पद्मब्बे ने दाम दिया।''

''भला आपकी आज्ञा टाली जा सकती है ?''

कहते-कहते जिनवल्लभ जाने लगा और रुककर बोला -''आपने दुगुना दाम दिया। जो टूट गईं; उनका दाम मैं कैसे लूँ। धर्म-कर्म की बात तो सोचना चाहिए।'' आधा दाम लौटा दिया। तब पद्मब्बे बोली -''रख लो। यह चूड़ी टूटी नहीं यह दोनों यमज संतान हैं।''

''क्या सच है ? मैं तो बिल्कुल नहीं पहचान सका। क्या आपकी भानजी हैं ?'' बात काटकर जिनवल्लभ ने पूछा। ''मेरे पुत्र नागदेव की बहुएँ हैं।''

''क्या दोनों सौत हैं ?''

''जी हाँ, हम अपने पुत्र के लिए कन्या माँगने गईं। हम इनमें से एक को भी पाकर संतुष्ट रहते। पर भाग्य ने दोनों दिया। बात यह हुई कि दोनों बहिनों का आग्रह था कि दोनों एक से ही विवाह करें। हमारा मन इनका परस्पर प्रेम देखकर पिघला और हमने स्वीकृति दे दी। हमारा बेटा कभी हमारी बात का उल्लंघन नहीं करता। ये सचमुच सोने की पुतलियाँ हैं और हमारी आँखों के तारे। मेरी बहू नहीं, बेटी हैं, बेटी।''

इस प्रकार पद्मब्बे ने स्त्री-स्वभावानुसार छोटा-सा भाषण ही दे डाला।

माँ जी, आपका अहोभाग्य है, यशस्वती और सुनंदा-सी बहुएँ मिली हैं।

कहकर वह चूड़ी वाला चल पड़ा। उसका मन आश्चर्यचकित था।

सूर्यास्त से घड़ी भर पूर्व ही जिनवल्लभ अपने दोनों बेटों के साथ दल्लप के यहाँ आया। दल्लप इनकी प्रतीक्षा कर रहा था। यद्यपि दल्लप महामात्य था। अधिकार का मद इनके सिर नहीं चढ़ा था। मानवोचित सुगुणों से हाथ नहीं धो बैठा था। अपनी सगे सम्बन्धियों की बात रहने दीजिए। कोई भी अतिथि भोजन के समय आता तो उसके साथ ही भोजन किया करता था। यदि अतिथि धर्म-भाई भी होता तो उसके साथ पंगत में खाए बिना नहीं छोड़ता था। पद्मब्बे पति के योग्य पत्नी थी। पति की मानवीयता का पोषण बड़े यत्न पूर्व करते आई थी और अपने घर को सुसंस्कृति का केन्द्र बनाने में कोई कसर आने नहीं देती हैं। बहुएँ जो आईं वे तो रत्नवृष्टि कराने वाले नागमय्य की पोतियाँ थीं। उदारता की पुतलियाँ थीं।

आओ जिनवल्लभ। दल्लप ने चिरपरिचित जैसे उनका स्वागत किया।

तीनों ने हाथ मुँह धोया। जैसे ही हाथ मुँह धोकर स्नानागार से बाहर आए तो देखा कि दल्लप स्वयं तौलिया लिए सेवा में उपस्थित हैं। महामात्य की इस सज्जनता ने जिनवल्लभ पर गंभीर प्रभाव डाला।

क्या यह दोनों तुम्हारे पुत्र हैं ? दल्लप ने प्रश्न किया।

जी हाँ, यह जो बड़ा लड़का है, राचय्य है और यह छोटा रन्न। ये ही दो संतानें हैं या और भी हैं ?

जी! इन दोनों के बीच का एक घर पर ही रह गया है।

जिनवल्लभ ने कहा।

राचय्य आजानुबाहु और गठीला बदन का था। रन्न केवल तेरह वर्ष का तरुण था। चेहरा बड़ा आकर्षक था। उस पर ध्रुवतारा से दो नेत्र चमक रहे थे। ये तीनों गरीब अवश्य थे पर दीनता उन्हें छू तक नहीं गई थी। इस कारण से स्वाभिमान उनमें कूट-कूटकर भरा था।

दल्लप तीनों को घर के अन्दर ले गया। एक साथ भोजन करने बैठे। सोने की थालियों में खाना परोसा गया था। ज्वार के सफेद फुलके और कई प्रकार की साग-सब्जियाँ परोसी गईं। अत्तिमब्बे ने जब ताजा घी परोसा तब भोजन प्रारम्भ

करने की प्रार्थना की गई। सब भोजन करने लगे। ऐसा राजभोज पाकर रत्न अत्यन्त प्रसन्न हुआ था। उसके आनंद को कौन कहे ? फुलकों के बाद बढ़िया भात और रस परोसे गए और उस पर दो चम्मच घी दिया गया। सब चुपचाप खा रहे थे।

रत्न को यह रस तीता लगा। एक बार रत्न के मुँह में सहसा ची-ची शब्द निकला। तुरन्त अत्तिमब्बे आई और वात्सल्य भरे स्वर में पूछा -

कहो भैय्या क्या चाहिए ?

जीजी! रस कुछ तेज लगता है। मुझे और कुछ घी दे दो।

निस्संकोच भाव से रत्न ने घी माँगा।

जिनवल्लभ को यह बुरा लगा। अपमानित सा आहत होकर रत्न की ओर कुछ क्रोध पूर्ण भाव से घूरने लगा। दल्लप ने उसे ताड़ा। अत्तिमब्बे तब तक घी लिए आई।

दल्लप ने उसे कहा -

देखो बेटी! बड़ों के साथ बच्चों को नहीं परोसना चाहिए।

बच्चे निरातंक भोज नहीं कर पाते। इस बच्चे को साथ ले जाओ और अंदर ही खिलाओ।

अत्तिमब्बे अत्यन्त प्रसन्नता से रत्न का हाथ पकड़कर अंदर ले गई।

कामधेनु के पीछे चलने वाले वत्स के समान यह रत्न चला। रसोईघर में उसे बिठाया। वहीं उसका चौका लगा। वह देखता क्या है, चारों ओर तरह-तरह की मिठाइयाँ सजा कर रखी गई हैं। एक बार चारों ओर देखा। इतना संतुष्ट हुआ मानों कल्पवृक्ष की छाया में बैठा हो। अत्तिमब्बे के हृदय में सहज ही भ्रातृ वात्सल्य उमड़ रहा था। वह पास ही बैठकर अपने हाथ से मुँह पर पड़े बाल संवारती हुई खिलाने लगी। बीच में एक बार जिज्ञासा की -

''बेटा तुम्हारा नाम क्या है ?'' ''मेरा नाम रत्न है। पर प्यार से माँ रन्न कहा करती है।''

बड़े ठाठ से जवाब दिया।

''अच्छा! रन्न, रन्न ही बहुत सुन्दर नाम है।''

अत्तिमब्बे ने बलैय्या ली और प्यार से बोली -''भैय्या लजाओ नहीं। जो चाहो माँगो। लाडू, पूरी, चिरोटी, पकोड़ा आदि यहाँ जो कुछ है, उसे में जो चाहो

निस्संकोच ले लो। भैय्या, अब क्या दूँ ?''

''रत्न को कुछ नहीं सूझ रहा था। अपने घर में अब तक ज्वार की रोटी के सिवाय और कुछ भी बनते नहीं देखा था। व्यञ्जनों में केवल कुरासानी की पचड़ी बनती थी; सो भी कभी-कभी। दूध-दही आदि का नाम सुना अवश्य था, पर खाया नहीं था। वही आज अपने सामने अनगिनत भाँति के पकवानों का ढेर देखा। क्या खाया जाये ? पका या तरल ? बेचारा क्या ले, क्या नहीं ले। समझ लीजिए उस समय रत्न की दशा ऐसे ही थी जैसे नव रत्नों की राशि के बीच गरीब पहुँच गया हो और उसे जो चाहे ले जाने की अनुमति मिली हो।''

''क्यों चुप हो ? माँग लो जो चाहे।''

अत्तिमब्बे ने प्यार से सिर फुसलाया।

''तुम जो अच्छा समझो खिलाओ बहिन।''

रत्न ने सहज ही उत्तर दिया।

अत्तिमब्बे उसकी मनोभावना से अवगत हुई।

गुंडुमब्बे से बोली - ''देखो बहिन, सब पकवानों को थोड़ा चखा दो; बाद में जो भी पसंद करें, खिला देना।''

दूसरे कमरे से एक थाली भर मिठाइयाँ आईं। इनकी ओर देखते ही बनता था। बहुत बढ़िया सजावट थी। रत्न के मुग्ध चेहरे पर निष्कलंक आभा चमक रही थी, जिसे देखकर गुंडुमब्बे प्रभावित हो उठी।

''जीजी! यह कितना सुंदर है देखा।''

कहती हुई बैठ गई और प्यार से एक-एक का नाम और स्वाद बता बताकर खिलाने लगी। इन दोनों स्त्रियों का अपनी औरस संतान को खिलाने का सा आनंद मिल रहा था। इधर रत्न भी खूब खाकर अघाया। अपनी जिंदगी में इतना घी कभी नहीं खाया था। इतना दूध भी नहीं पिया था।

''रत्न तुम क्या पढ़ रहे हो ?''

अत्तिमब्बे ने सहज ही प्रश्न किया। यह बात कानों पर पड़ी नहीं कि रत्न की आँखों से आँसू उमड़ पड़े। दो-एक बूँद गालों पर भी पड़ीं जिन्हें अत्तिमब्बे ने देखा। वह चौंकी। जो कल्पवृक्ष पर चढ़े हुए से आनंद मग्न था, वह एकाएक वहाँ से फिसलकर गिरे हुए सा रोने लगा! आखिर क्यों ? क्या बात है ? क्यों रो रहा है ?

अत्तिमब्बे घबरा उठी। गुंडू कहकर अपनी बहिन को आवाज दी और उसके आते ही बोली – ''देखो, क्यों यह मुन्नू रो रहा है?''

गुंडुमब्बे ने प्यार से रन्न के आँसू आँचल से पोंछ डाले और ममता से पूछा – ''मुन्नू क्यों रो रहा था ? क्या चाहिए ? बताओ तो सही। पिताजी के पास जाना चाहोगे ? या कुछ चाहिए ?''

''सो नहीं बहिन। मैंने इससे पूछा कि तुम क्या पढ़ते हो ? बस यह रोने लगा।''

अत्तिमब्बे ने अपराध स्वीकार करते हुए विवरण दिया। उसका चेहरा उतरा हुआ था।

''रन्न! रोओ मत। क्या पढ़ना नहीं चाहते ? मत पढ़ो। क्या पढ़ने के लिए घर में दबाव डालते हैं ? मैं उनको समझा दूँगी। क्या तुम्हारे ओझाजी मारते हैं ? तो उनसे कहूँगी कि मत मारा करें। उसी भाँति अत्तिमब्बे ने प्रश्नों की झड़ी लगा दी और अपनी ओर से उनका संतोषप्रद उत्तर भी दे दिया।''

अत्तिमब्बे ने अभी कुछ देर पहले रन्न के सामने पकवानों का ढेर लगाया। गुंडुमब्बे अत्यन्त ममता दिखाती हुई उसके अंतरंग की बात जानने में सहायता करने लगी। रन्न इसके निश्छल वात्सल्य के सामने दुराव छिपाव नहीं कर सका। गला बैठ गया था। बातें नहीं निकल रहीं थीं। टूटी फूटी बातों में ही अपना हाल सुना दिया। अपनी कल्पना के सहारे परिस्थिति की गंभीरता और रन्न की विवशता से दोनों अवगत हुई।

रन्न बोल रहा था – ''मैं पढ़ूँगा, पर पिताजी मना करते हैं।''

इतना भी मुश्किल से कह सका।

''क्यों मुन्नू! तुम पढ़ना चाहते हो तो पिताजी क्यों मना करते हैं ?''

अत्तिमब्बे ने आश्चर्य से प्रश्न किया।

''हम गरीब हैं। ओझाजी को कहाँ से धन दे सकेंगे ? यहाँ दो जून रूखा सूखा भी नहीं जुट रहा है। इस प्रकार कह देते हैं।''

बड़े संकट से रन्न इतना कह सका।

बात सुनकर अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी खिन्न हुई। उनकी कल्पना थी और लड़कों की भाँति यह भी पढ़ने से जी चुराता होगा ? पर यहाँ बात कुछ और

थी। इस समस्या का कोई समाधान उन्हें तुरंत नहीं सूझा।

पर इन अन्नपूर्णाओं से अपनी समस्या संतोष जनक ढंग से हल होने की संभावना ताड़कर रन्न बोला –''जीजी! एक बात कहूँ। मुझे यहीं ठहरा लो। जीजी कभी भी तुम्हारी बात नहीं टालूँगा।''

रन्न की ध्वनि से दीनता टपक रही थी।

यह आर्तवाणी सुनकर अत्तिमब्बे का हृदय मचल उठा। बोली...''ऐसा ही हो बेटा। अपने पिताजी से पूछ लो। उसकी अनुमति पाकर रह जाना।''

इस उत्तर से रन्न हताश हुआ।

''हाँ जरूर। अपने पिताजी से पूछ लेना।''

गुंडुमब्बे ने दुहराया।

''मेरे अनुमति माँगने पर पिताजी शायद नहीं मानें।''

रन्न ने अस्पष्ट स्वर में अपनी शंका सुनाई।

अब अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी परिस्थिति की गंभीरता से अवगत हुई। दोनों घर की बहू हैं। अब कैसे अपरिचित के बेटे को घर पर रखने का प्रस्ताव रखें। रखें भी तो कैसे और किसके सामने ? इस प्रकार भय और संकोच के तुमल भाव से वे चित्ताक्रांत हुई। अत्तिमब्बे ने गुंडुमब्बे पर भरोसा रखकर उसकी ओर देखा। जैसे ही अपनी जीजी के मुखभाव ताड़ा वैसे ही गुंडुमब्बे के मुँह से निकला – ''जीजी! तुम इसे रखना चाहती हो तो रख लो। मैं तुम्हारा साथ दूँगी। चाहे कोई कुछ कहे।''

''गुंडू, सो बात नहीं। हम कैसे इसके पिता से कह सकती हैं कि इस लड़के को यहीं छोड़ दें।''

अपने मन का हाल कह दिया।

''तब तो हम सास जी से कह दें। अभी पढ़ने की उम्र वाले छोटे-छोटे लड़कों को काम में लगा दें तो बड़ा अन्याय होगा।''

गुंडुमब्बे ने कहा।

रन्न की खिन्नता दूर करने के लिए अत्तिमब्बे ने आश्वासन दिया और कहा – ''रन्न, चिंता न करो। तुम हमारे यहाँ ठहर जाओ। हम पढ़ाई का प्रबन्ध करेंगे। खर्च के बारे में मत सोचो।''

रन्न की आँखों में आनंद का फव्वारा ही फूट निकला।

रन्न भोजन समाप्त कर चुका था। जैसे माँ बच्चों का हाथ खुद धुलाती है उसी प्रकार अत्तिमब्बे ने खुद उसका हाथ धुलाया। गुंडुमब्बे ने अपने आँचल से पोंछा। इन माताओं के आगे रन्न शिशु बन गया। उनके किसी कार्य का विरोध नहीं किया। वह सब कुछ स्वीकार करते जा रहा था।

इधर जिनवल्लभ को क्षण स्वर्ग में रहने का-सा अनुभव हो रहा था। एक तो दल्लप की पंक्ति में भोजन हुआ। बाद में एक साथ बैठकर ताम्बूलचर्वण करने लगे। बैठने के लिए बढ़िया मुलायम बेंत का गद्दीदार आसन था।

''क्या राचय्य की शादी हुई है ?''

दल्लप ने संभाषण आरम्भ किया।

''जी हुई है, अब छह संतानों के पिता भी हैं।''

खिन्नता उसकी ध्वनि में थी।

''बहुत अच्छा! हर्ष की बात है कि कुल-श्री बढ़ रही है और बढ़ते जाये! दूसरे लड़के का ?''

''जी हाँ। पिछले ग्रीष्म में उसका विवाह किया।''

''छोटा अभी पढ़ रहा होगा ?''

''जी नहीं! कहाँ हम और कहाँ पढ़ाई। गरीब हैं। सोचा कि अभी से अपने धंधे का परिचय करा दूँ और इसलिए साथ लिए फिरता हूँ।''

''ओहो! यह तो ठीक नहीं। अभी बच्चा है। सर्दी-गर्मी में यों घुमाना ठीक नहीं है। दल्लप ने करुणा से कहा। कुछ देर बाद फिर बोले - जिनवल्लभ जी! आप हमारे अतिथि हैं। हमारे घर की परम्परा है कि पहले अतिथि को भोजनादि से संतृप्त करेंगे बाद में कुशलक्षेम पूछकर परिचय बढ़ा लेंगे। मेरे दादा और परदादाओं के जमाने से यह बात चली आ रही है। अतिथि हमारे लिए देवतुल्य होते हैं। आप तो श्रावक हैं। योग्य सेवा करने का सुअवसर दीजिए। निस्संकोच कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?''

दल्लप ने कहा।

''जी! अब कुछ नहीं चाहिए। आपके सत्कार और सौलभ्य से मैं संतुष्ट हूँ। अब लोभ न बढ़ाइए। यह अनुचित होगा।''

जिनवल्लभ ने उत्तर दिया।

''आप अतिथि हैं। यों ही भूले भटके हमारे यहाँ पधारे हैं। लोभ बढ़ाने की बात नहीं, दैव योग से कुछ ले देने की स्थिति में हूँ। जान लूँ तो जो कुछ करते बने करूँ।''

दल्लप ने आग्रह पूर्वक प्रार्थना की।

''आप जैसे उदारियों को हमने देखा ही नहीं। होंगे भी तो कहीं लाख या दस लाख में एकाध। आप महामात्य हैं। आपने हमारे जैसे सामान्य व्यक्ति को पंगत में बिठाकर भोजन किया और कुशल प्रश्न किया – इससे बढ़कर और क्या चाहिए। सोने की थाली में, महामात्य के साथ भोजन करना ही सबसे बड़ा सौभाग्य है।''

जिनवल्लभ हर्षोल्लास से बोल रहा था।

''वह तो हो चुका। अब आगे की कहिए। हममें और आपमें क्या अंतर है ? जो कुछ है वह केवल भाग्य का फेर है। वास्तव में देखा जाए तो क्या हम एक ही जाति के नहीं ? जीव मात्र पर दया दिखाने का आदेश महावीर प्रभु ने दिया है। आज मैं श्री सम्पन्न अवश्य हूँ। पर कल की बात कौन जाने ? अब भी महावीर प्रभु के आदेश को ध्यान में रखकर दो-एक व्यक्तियों की सहायता नहीं की तो क्या बड़ा उपचार नहीं होगा ? और एक बात मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। जो उपचार की बात कह रहा था वह किसी उपकृत को कृतकृत्य करने के लिए नहीं; इसमें मेरा ही स्वार्थ छिपा है। अपने श्रेय के लिए करना चाहता हूँ। आप सचमुच अपनी इच्छानुसार कुछ माँगकर मुझसे ले लें तो मैं अपना अहोभाग्य समझूँगा।''

महामात्य की बातें हृदय की सच्चाई को ध्वनित कर रही थीं। जिनवल्लभ इस करुणा-कल्पलता के सामने नत-मस्तक हो गया। क्या माँगें ? कितना माँगें ? कुछ नहीं सूझ रहा था। सोचा कि रत्न के भविष्य का कुछ ठिकाना लग जाए तो पर्याप्त है। ऐसा विचार कर बोले – ''प्रभो! मेरे दोनों बड़े लड़के कमाऊ हैं। अपना पेट-भर किसी प्रकार कमाते हैं। सबसे छोटा जो है वह बड़ा विलक्षण है। उसे आपकी गोद में रख दूँगा। आप जो चाहे कीजिए। उसका मार्गदर्शन आप पर है। मैं भी यही चाहता हूँ आप उससे कुछ काम लें और हम गरीबों की आवश्यकता पूरा करने के लिए जो कुछ देते बने दीजिए।''

इस प्रकार जिनवल्लभ ने एक पत्थर से दो फल गिराने का यत्न किया।

''किसको छोड़ने की बात कहते हैं ? उस छोटे लड़के को जो हमारे साथ खाने बैठा था ?''

''जी हाँ।''

''छि:! वह क्या काम कर सकेगा ? यदि ऐसे बालकों को नौकर रख लें तो परमात्मा की आँखों में हम अपराधी नहीं होंगे ? आप चाहें तो इस बड़े लड़के को ही यहाँ छोड़ जाइए। सेना में इसके योग्य पद दिला देंगे।''

''प्रभो! आपका कहना भी ठीक है। पर हम बड़े गरीब हैं। यह नौकरी करेगा तो क्या पायेगा ? अधिक से अधिक अपना पेट भर लेगा अथवा बड़े-बड़े नगरों में रहने के कारण संभव है कि अपने घर गृहस्थी को किसी भाँति चला पाएगा। पर हम वृद्धों का क्या कर सकेगा ?''

''ठीक है। आपका कहना यथार्थ है। पर इस मुन्नू को कैसे काम पर रख लें ?''

दल्लप ने अपनी चिंता स्पष्ट की।

''आप किसी भी काम में लगाइए। चिंता क्यों करते हैं ? जब वह कुछ सीख लेगा और जब आप समझेंगे कि यह कुछ योग्य बना है तब आप जो पसंद हो देना प्रारम्भ कीजिए। तब तक हम कुछ नहीं माँगते।''

''अच्छी बात है। आप कम से कम इतना तो कह दें कि आप उसे क्या बनाना चाहते हैं ?''

''हम क्या चाहेंगे। हम गरीबों को चाह करने के लिए कुछ फुर्सत मिले तब न। हमारी चाहें रोटी कपड़े तक सीमित रहती हैं। इन दोनों पदार्थों के अतिरिक्त हमें और कुछ सूझता ही नहीं।''

इन शब्दों में गरीबी की राम कहानी सुना दी।

''तब! सोचिए क्या हम उसे रसोई घर में स्त्रियों के काम में हाथ बँटाने में लगा दें। आपको कोई आपत्ति तो नहीं ?''

जिनवल्लभ के चेहरे का भाव पढ़ने की इच्छा से उस पर पैनी नजर दौड़ाई।

''जी! आप अपने घर पर रख लीजिए और चाहे जो काम दीजिए। करुणारहित महाराजा के दरबार में दीवान बनने की अपेक्षा दयालु के घर का दरबान बनना श्रेयस्कर है। कम से कम मैं तो यही समझता हूँ।''

जिनवल्लभ ने अपना विचार सुनाया।

''तब तो ठीक है। आज से रन्न हमारा बना। घर में पूछताछ करके उसका वेतन ठहराएँगे। आप इस ओर फिर कब आएँगे ?''

दल्लप ने प्रश्न किया।

''हफ्ते भर इधर-उधर फेरी लगाकर अपने घर जाने का विचार है। घर जाने के पहले यहाँ आकर आपके दर्शन लेंगे।''

जिनवल्लभ ने अपना कार्यक्रम सुनाया।

''तो कल आप हमारे यहाँ भोजन करके जा सकते हैं।''

इतना कहकर दल्लप उठे।

जिनवल्लभ ने रन्न से अपना विचार कहा। रन्न का चेहरा खिल उठा। सोचा कि अपनी सारी समस्याएँ एक दम मिट गई। इस कारण से वह फूले नहीं समाया। पर इधर दल्लप ने जैसे ही इस बात का जिक्र किया तो पद्मब्बे ने अपना विरोध व्यक्त करते हुए कहा -''क्या उस नन्हें से हम रसोई का काम लें ? वे तो बेचारे गरीब हैं पर हमें कुछ सोच समझ कर तो काम देना पड़ेगा न ? कौन जाने किसके भाग्य में क्या बदा रहता है ? संभव है कि यही आगे चलकर हमें चक्कर में डालने योग्य महापुरुष बन सकता है। जरा सोचकर देखिए कितने लाल गूदड़ में पड़े नहीं मिलेंगे ?''

''ठीक कहती हो। मुझे भी यह बात सूझी। यह न समझना कि मैंने इतना भी नहीं सोचा। पर एक बात है। इसके पिता बड़े कष्ट में हैं। यदि हम नहीं रख लें तो इसे और किसी के यहाँ नौकरी पर लगा देगा। उसको पैसा चाहिए। इस कारण से मैंने सोचा कि इस लड़के से आखिर क्या काम करते बनेगा ? फिर भी रसोई घर के काम का बहाना बनाकर रख लिया तो उसके पिता के अभिमान को ठेस नहीं लगेगी। चाहे तो तुम अपनी बहुओं से कहकर इसको पढ़वाओ लिखवाओ तब पता लगेगा यह सच्चा रत्न है या कोरा काँच का टुकड़ा है। योग्य हो तो जो चाहे बने। हम उसके योग्य पद मिला देंगे। कौन कहता है कि यह अंत तक रसोइया ही बनकर पड़ा रहे ?''

दल्लप की बात सुनकर पद्मब्बे ने अपनी स्वीकृति दी। रन्न को रख लेने की बात तय हो गई।

इधर नागदेव ने सबेरे का नाश्ता किया। अंतःपुर में उसे पान लगाकर खिलाती हुई अत्तिमब्बे ने कहा - ''आपसे एक निवेदन करूँ ? आपसे मैं ना नहीं

सुनना चाहती। आशा है कि आप अवश्य मेरी बात मानेंगे।''

इन बातों को अत्तिमब्बे ने इस ढंग से कहा कि सुनने वाले का मन सहसा स्वीकृति दे बैठे और एक बात थी। आज तक कभी इन दोनों बहिनों ने कुछ नहीं माँगा था। क्या माँगें ? गहना कपड़ा तो ढेर का ढेर पड़ा था। छोटी-मोटी बातें पद्मब्बे से कहने पर पूर्ण हो जाती थीं। नागदेव को कभी यह सौभाग्य या सुअवसर प्राप्त नहीं था कि प्रेयसियों की माँग पूरी कर संतुष्ट हो। अब जैसे ही यह प्रार्थना सुनी वह खिल उठा उसे आश्चर्य भी हुआ और अपार हर्ष भी।

''अत्ति! यह क्या, मेरे सामने यों क्यों गिड़गिड़ाती हो ? तुम्हारी इच्छा जानकर अब तक मुझे ही उसे पूरा कर देना चाहिए था। पर क्या करूँ, मैं योद्धा हूँ, रसिक नहीं हूँ, कहो तो रमणी तुम्हें क्या चाहिए ?''

प्यार से नागदेव ने उसका हाथ अपने हाथों में लेकर दबाया।

स्वामी! आप इतना क्यों मन में ऊन मानते हैं ? जबसे मैं और गुंडू इस घर में आई हैं तबसे हमें आराम ही आराम है। हम समझती हैं कि हम ससुराल में नहीं सुरतरु की छाया में हैं। आपकी माँ हमारी भी माँ हैं, माँ से बढ़कर प्यार करती हैं। आपके पिताजी तो हमारे स्वर्गीय दादा को भुलाने में समर्थ हुए हैं, इतना लाड़ प्यार करते हैं। रही आपकी रसिकता। आप रसिक नहीं होते तो क्या दो-दो स्त्रियों को सदा प्रसन्न रखकर सँभाल सकते थे ?

''प्रिये! तुम और गुंडू दोनों साध्वी की संतान हो और तुम्हारी दैव-भक्ति तुम्हारा संबल है, क्योंकि देव भक्त जहाँ भी होंगे अपने को कल्पवृक्ष की छाया में ही मानते हैं। अतएव यदि तुम यहाँ आराम से हो तो इसका श्रेय तुम लोगों के सात्त्विक स्वभाव को मिलना चाहिए न कि मुझे। यदि मुझसे कभी भूल-चूक हो जाए तो तुम दोनों से कह देता हूँ कि यों ही मत सह लेना। मुझे बताकर सही रास्ते पर ले चलना। यह भार तुम दोनों पर है। दुनिया जानती है कि मैं रणवीर हूँ और क्रूर हूँ फिर भी पूर्व जन्म से सुकृत का फल तुम्हारे रूप में मिला है। यही मेरी धारणा है। तुम मेरे भाग्य की कल्पलता हो।''

ऐसा कहते हुए अत्तिमब्बे के गाल पर मीठी चुटकी ली।

''बात भुला देने में आप बड़े कुशल हैं। इससे सिद्ध होता है कि आप केवल रणपटु ही नहीं वाक्पटु भी हैं।''

कहकर अत्तिमब्बे हँस पड़ी।

''तब तो असली बात पर आओ प्रिये।''

कह नागदेव भी हँस पड़े।

''हमारे यहाँ एक नया लड़का आया है।''

''हाँ हाँ आया है। वही जो आज स्नानागार में तौलिया देने आया था।

नागदेव ने बात काट कर कहा।'' ''जी हाँ वही।''

''अच्छा अब कहो क्या बात है ?''

''जानते होंगे कि इसके पिता ने उसको हमारे यहाँ नौकरी पर छोड़ रखा है। क्या वह रसोई का काम सीखे ?''

''यह बात है तो सीखने दो। तुम भी सिखा दो। ऐसी बातों में मैं कभी दखल नहीं देता। घर के अंदर की बातों को मैं क्या जानूँ ? तुम लोग देख लो।''

''अपनी बात कहने देंगे कि नहीं ?''

''कहो कौन मना करता है। तुम चुप हो गई तब मैं बोला। क्या बात कुछ टेढ़ी है ? खैर, जो भी कहो तुम्हारी बात अवश्य मानी जायेगी।''

नागदेव ने आश्वासन दिया।

''बात यह है कि लड़का पढ़ना चाहता है। वे गरीब हैं, पढ़ा नहीं सके। इसीलिए उसे हमारे यहाँ काम पर लगा दिया। लड़का तेज है। प्रायः पढ़ाई में भी तेज निकलेगा। आप चाहें तो।''

''क्या मैं उसे पढ़ाते जाऊँ ? बस तुम्हारी बात मैं मानूँ तो उसकी भलाई नहीं होगी। याद रहे यदि मैं कुछ पढ़ाऊँ और वह याद नहीं करे तो मैं अवश्य आपे से बाहर हो जाऊँगा और एक जमा दूँ तो चारों खाने चित्त हो जायेगा। अत्ति, तुम अपने पति को जितना कोमल चित्त या मृदुल गात्र समझती हो वैसा वह औरों से नहीं माना जाता। मेरे सैनिक मुझे देखकर थर-थर काँपते हैं। महाराज तक मुझसे बोलते समय सजग रहते हैं। मेरे साथ मनचाही लीला करने वाले जीव इस संसार में केवल दो हैं। एक तुम हो दूसरी गुंडू।''

कहकर नागदेव ने अभिमान से मूँछों पर ताव दिया।

''आप ऐसे पराक्रमी हैं – यह जानकर ही हमने आपसे विवाह किया है।''

ऐसा कहते हुए, उसकी मूँछ के दूसरे छोर को ताव देकर उसको एक

प्रकार से समतोलन ला दिया।

''अत्ति! मैं उसे नहीं पढ़ा सकूँगा। समझ गई न ?''

नागदेव बोला।

''आपको कौन पढ़ाने के लिए कहता है ?'' अत्तिमब्बे बोली।

''तो और क्या करूँ ? बताओ तो।'' नागदेव ने पूछा।

''उसे किसी गुरुकुल पहुँचाइये। वह पढ़ लिखकर आपका नाम अमर कर देगा।''

''खूब! खूब!! घर पर नियुक्त नौकर चाकरों को गुरुकुल भेजा करो। आइंदा तुम्हीं को चौका बर्तन करना पड़ेगा। समझी।''

कहकर नागदेव व्यंग से हँस पड़ा।

''देखिए! यह रन्न अभी बच्चा है। उसकी बुद्धि सूक्ष्म है। रसोई घर के काम के लिए लोगों की कमी नहीं रहेगी। नहीं भी मिलें तो हम दो जन चाहे तो संभाल लेंगी। लकड़ी काटने के लिए कोई सोने की कुल्हाड़ी नहीं बनाता है। मैं समझती हूँ कि यह रन्न सचमुच एक महान् रत्न है।''

अत्तिमब्बे ने रन्न का पक्ष लिया और कहा– ''यह बड़ा होनहार है। बड़ा नामी निकलेगा।''

''प्रिये! क्या तुम जानती हो ? और रन्न को अपना लड़का कहकर हम किसी गुरुकुल में छोड़ दें तो अपनी हैसियत देखकर दान देना पड़ेगा। इस प्रकार उसे पढ़ाने में खूब धन लगेगा। रसोई का नाम तो पाकशास्त्र है। भीम का नाम क्या इस शास्त्र में पारंगत होने के कारण अमर नहीं बना है। आज नल का स्मरण करते हैं तो किसलिए करते हैं बताओ ? ऐसे ही आपका रत्न पाकशास्त्र का रत्न बन जाए और कर्नाटक भर में सुनाम कर ले।'' नागदेव ने नाटकीय ढंग से कहा।

अत्तिमब्बे के कानों पर और कोई बात नहीं पड़ी। वह दान करने की बात दुहराते हुए बोली – तो अच्छा ही हुआ। यदि इस लड़के के कारण गुरुकुलों को दान देने का मार्ग खुला तो हमारा अहोभाग्य है। धन की चिंता मत कीजिए। मैं देख लूँगी। ससुरजी से कहकर उसे गुरुकुल पहुँचा देने का भार आपका है।

अत्तिमब्बे ने निर्णायक स्वर में कह दिया।

''पगली कहीं की! क्या वह हमारा कोई सगा सम्बन्धी है ? उस दिन

पानी भरने वाले उस लड़के को खूब धन देकर पढ़ाने का प्रबन्ध किया। यद्यपि अपना ही धन दे रही हो। पर सोचो उस लड़के को एक बार कुछ दे दिलाकर विदा किया था। पर अबकी बात इतनी सस्ती नहीं है, समझी ? क्योंकि तुम तो पूरी जिम्मेदारी सर पर लेना चाहती हो। जिस पर पिताजी को राजी कराने की सलाह देती हो। पिताजी के सामने यह प्रस्ताव कैसे रखूँ। वे क्या समझेंगे ?''

नागदेव ने संदेहास्पद उत्तर दिया।

''रत्न जैसे छोटे-मोटे लड़कों को काम पर लगा दें और पढ़ने नहीं दें तो क्या उनका जीवन कष्ट नहीं होगा ? अपनी ही बात सोचकर देखिए। बचपन से लेकर आपकी सुशिक्षा का प्रबन्ध नहीं होता तो आप क्या आज सेनापति पद पर नियुक्त रहते ? और बड़ा कष्ट उठाकर सरस्वती की सेवा न की होती और दो अक्षर न सीखे होते तो सेनापति बन जाने पर भी तुम दो रमणियाँ थोड़े ही मुझे वरण कर लेतीं।''

नागदेव अपनी बातों पर आप हँस पड़ा।

''औरों के सम्बन्ध में भी ऐसा ही सोचिए। हम सुविधा कल्पित कर दें। तिस पर अपना-अपना भाग्य साथ देगा ही।'' अत्तिमब्बे बोली।

''अत्ति! जब उस लड़के को इतना चाहती हो तो दत्तक कर लो।''

''आपके मानने भर की देरी है। हम तैयार हैं।'' अत्तिमब्बे बोल उठी।

''हमारी कोई संतान नहीं होगी ?'' खिन्न होकर नागदेव ने जिज्ञासा की।

''मैंने इस सम्बन्ध में तो कुछ नहीं कहा।'' अत्तिमब्बे ने सफाई दी।

''क्यों दत्तक लेने की सलाह मान ली ?'' नागदेव ने फिर प्रश्न किया।

''देखिए, होनहार लड़कों को देखकर किसका मन नहीं ललचता ? वे समाज और राष्ट्र के अनर्घ्य निधि होते हैं। वे आगे चलकर क्या होंगे उसे अभी कौन कह सकता है ?''

अत्तिमब्बे ने दृढ़ता से कहा।

''अत्ति! मैं तुम्हारी बात टालना नहीं चाहता। मैं एक बार जाँचकर देखता हूँ। अगर यह खरा निकला तो तब तक उसका भार उठा लूँगा कि जब तक वह कवि चक्रवर्ती न बन जाए।''

नागदेव की बात से वह फूल उठी।

रन्न घर पर क ख ह रा सीख चुका था। अक्षर सुंदर थे। जहाँ कहीं से माँग कर ताड़पत्रों पर ग्रन्थों का नकल भी किया करता था। उसके अक्षर स्फुट और मोती से लगते थे। प्रतिलिपि बनाते समय उन प्रतियों को पढ़ने और समझने का भी प्रयत्न किया करता था। पंप और पोन्न की कृतियों की भी प्रतिलिपि बना चुका था और कभी-कभी उन्हें पढ़ते हुए स्वयं कल्पना जगत् में तन्मय हो जाता था। उसकी अभिरुचि लिखने की थी। पर परिस्थिति इसके विपरीत थी। उन दिनों में पढ़े लिखे लोग बहुत कम थे। जो थे वे राजा महाराजाओं के आश्रय में रहते थे। नगरों में निवास करते थे। रन्न की विद्या-दाह बुझा देने वाले विद्वान् मुधोल जैसे ग्राम में नहीं थे। रन्न का पिता अपनी दारिद्रय जनित झंझटों में इस ओर ध्यान ही नहीं दे सकता था।

नागदेव ने रन्न की परीक्षा ली। रन्न ने अपने हाथ से लिखे गए आदिपुराण, विक्रमार्जुन विजय, भुवनैक रामाभ्युदय और शान्तिपुराण को दिखाया तो देखकर नागदेव दंग रह गया। सुंदर लिखावट थी। मोती की लड़ी सी सुंदर पंक्तियाँ थीं। और उनको उससे पढ़वाकर देखा। सिंहगर्जन-सा स्फुट कंठध्वनि से एक दम प्रभावित हुआ। नागदेव यद्यपि रणपटु था पर उसमें सहृदयता की कमी नहीं थी। तलवार, भाले, तीर-कमान और गदाओं पर जैसा अधिकार रखता था, वैसे ही काव्य सौष्ठव समझने का भी अधिकार प्राप्त कर चुका था। कहीं वीर रस प्रधान काव्य मिलता तो पूरा पढ़वा लेने या खुद पढ़ डालने तक उसे कल नहीं पड़ती थी। पंप और पोन्न कवि की कृतियाँ इसके तकिए के नीचे सदा रहते थे। युद्ध के मैदान में भी अपने साथ कन्नड़ ग्रन्थों को रखा करता था। मौका पाते ही सैनिकों के साथ बैठकर उन वीरगाथाओं को पढ़कर सुना देता था और उनकी व्याख्या भी करता था। ऐसे नागदेव ने रन्न की परीक्षा ली। रन्न के शारीरिक एवं बौद्धिक विकास पर भी ध्यान दिया और किसी न किसी तरह पढ़कर सुनाम कर लेने के उसके कृत संकल्प से प्रभावित हुआ।

रन्न पढ़कर क्या करोगे ? मेरे साथ रहो तो सेना में नियुक्त करूँगा। एक न एक दिन सेनापति बनोगे।

नागदेव ने फुसलाया।

पहले मैं पढ़ना चाहता हूँ। आप बाद को जो चाहे कहिए करूँगा। मेरा नाम रन्न है तो उसे सार्थक तो कर लेना होगा।

बढ़ी ढिठाई से उत्तर दिया। पर पढ़ोगे कैसे ?

नागदेव ने प्रश्न किया।

आप लोगों की कृपा से आप जैसे पुण्य पुरुषों की शरण मिली है तो मैं क्यों सोचूँ ?

रन्न का उत्तर सुनकर नागदेव संतुष्ट हुआ। उसे अंदर भेज कर स्वयं दल्लप के पास गया। रन्न की बनाई गईं प्रतिलिपियाँ दिखाई। दल्लप बड़े सहृदय थे अतएव वे गद्‌गद् हुए।

बेटा! अवश्य उसे पढ़वाओ। न जाने कितने लाल केवल सुविधा के न मिलने के कारण बीहड़ वन की चाँदनी के समान व्यर्थ जा रहे हैं।

दल्लप ने उद्‌गार निकाली।

दल्लप ने यहाँ रन्न के आए एक सप्ताह बीता होगा। रन्न का भाग्य तारा चमक उठा। दैवयोग से पंप महाकवि वहाँ आए। भोजनादि से निवृत्त होने के बाद यथावत् सभा भवन में सब बैठे थे। दल्लप ने रन्न को बुलवाकर पंप से परिचय कराया। जिस प्रकार रामचन्द्र को देखकर परशुराम मुग्ध हुए थे, उसी प्रकार रन्न को देखकर पंप प्रभावित हुए। प्यार से अपने पास बिठाकर सारे शरीर पर हाथ फेरा। जैसे ही पंप का स्पर्श पाया वैसे ही रत्न का अंतरंग तक पुलकित हो उठा। मानों स्पर्शमणि का स्पर्श लोहे को मिला हो।

दल्लप जी – इस लड़के को बंकापुर भेज दीजिए। वहीं अजितसेनाचार्य के चरणों में रहकर पढ़ ले। लड़का होनहार है।

पंप ने सलाह दी।

पंपदेव! यह अत्तिमब्बे की आँखों का तारा है। वह प्राणों से भी अधिक इससे प्यार करती है। इसके पिता हमारे यहाँ इसको रसोई घर में चाकर छोड़ गया था। पर जैसे ही अत्तिमब्बे की कृपा दृष्टि उस पर पड़ी यह कवि रन्न बनने योग्य हुआ। यहाँ सब कुछ नाटकीय ढंग से उसके अनुकूल बन रहा है। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे उसकी पढ़ाई का खर्च अपनी ओर से देना चाहती हैं। इस पर नागदेव भी इस लड़के का पक्ष ले बैठा है। मेरी पत्नी भी इसका पक्ष लिए बोला करती है। आशा थी कि कम से कम आप हमारे पक्ष में होंगे। पर बात उल्टी निकली।

ऐसा कहते समय दल्लप के मुँह पर हँसी खिल उठी।

दल्लप आपके घर में सबके सब सुकृत हैं।

पंपदेव के नेत्र आनंदाश्रु से सजल हो गए।

जी हाँ, पर एक अपवाद भी है। सो मैं हूँ।

दल्लप ने हँसते-हँसते कहा।

आप! आप तो इस कल्पवृक्ष की जड़ हैं। वह सदा गुप्त रहती है। पर उसी के बल पर फल-फूल-पत्ता आदि खिलते रहेंगे। तभी तो लोग इस पेड़ की शोभा देखकर फूले नहीं समाते।

पंपदेव ने दल्लप की वास्तविक प्रशंसा की।

पंपदेव, क्या यह समझूँ कि यह रन्न आगे चलकर आपका उत्तराधिकारी होगा।

दल्लप मुस्कुराए।

जी, हो सकता है ऐसा ही हो। यदि कोई भी योग्य व्यक्ति इस सिंहासन पर विराजमान होना चाहे तो मैं सहर्ष उसे बिठाकर आँखभर देखना चाहता हूँ। अब वह खाली पड़ा है। होनहार कवि चक्रवर्ती के लिए मैं इसकी धूल झाड़ फूँककर सजाए रखता हूँ। पंप के बाद पोन्न, पोन्न के बाद रन्न, इस प्रकार सिलसिला बना रहे। सरस्वती का सिंहासन कभी खाली न रहे। यही मेरी प्रार्थना है।

पंपदेव के श्रीमुख से भविष्य वाणी निकल पड़ी। मंत्र मुग्ध-सा बालक रन्न सुन रहा था।

अपने बड़े लड़के के साथ जिनवल्लभ दल्लप के यहाँ लौट आया। भोजनादि से निवृत्त होकर तांबूल लिए दल्लप और पंपदेव तकिए के सहारे बैठे थे। जिनवल्लभ तथा राचय्य को कहलवा भेजा और उनके आते ही परिचय किया।

''पंपदेव! ये हैं जिनवल्लभ, उस रन्न के पिता और यह राचय्य हैं, उसके बड़े भाई।''

फिर दल्लप ने पंपदेव का परिचय कराते हुए कहा - ''जिनवल्लभ जी आप संसार के सारोदय पंपदेव हैं, महाकवि।''

इतना सुनते ही जिनवल्लभ का सिर उनके सामने झुक गया। इधर राचय्य ने सुमधुर कंठ से आदिपुराण एवं विक्रमार्जुन विजय काव्यों से एक-एक पद्य सुनाकर चरणवंदना की।

''जिनवल्लभ जी! यह राचय्य बड़ा सहृदय है।''

पंपदेव ने मुस्कुराते हुए कहा।

''हम सहृदय हैं और सब कुछ हैं पर हमारी सहृदयता दरिद्रता के आवरण में छिपी पड़ी है।''

जिनवल्लभ की बातों से खिन्नता टपक रही थी।

जिनवल्लभ जी, आपका रत्न हमारे यहाँ रहेगा। पर एक शर्त है। बताइए कि कितने दिन आप हमारे यहाँ उसे छोड़ने के लिए तैयार हैं। पहले यह बात तय हो जाए तो कहूँ..... दल्लप ने प्रश्न किया।

''आप चाहे जितने दिन अपने यहाँ रख लीजिए।''

जिनवल्लभ ने उत्तर दिया।

''खूब सोचिए, बीच में कभी आकर यह तो नहीं कहेंगे कि लड़के की माँ का आग्रह है कि बुलवा लें।.....इत्यादि।''

''प्रभो! मैं एक बार कहता हूँ तो सोच समझकर ही कहे देता हूँ। यह समझिए कि यह आपका लड़का है। मेरा नहीं। आप जो चाहे कीजिए।''

दृढ़ता पूर्वक जिनवल्लभ ने कहा।

''राचय्य जी, तुम्हारा अभिप्राय क्या है ?''

''जी! आपके यहाँ रत्न को रख छोड़ने में मेरी कोई आपत्ति नहीं। पर क्या वह कोरा रसोइया बन कर रहेगा ?''

राचय्य खिन्न होकर बोला।

''बेटा! दल्लप जी कल्पवृक्ष हैं समझे। आपके पास हमारा रत्न चाहे जैसे रहे सुख से रहेगा। आज भी और भविष्य में भी समझे न ?''

ऐसा कहते-कहते जिनवल्लभ ने अपने बेटे की ओर घूर कर देखा।

''तुम लोग व्यर्थ चिंता मत करो। रत्न रसोइया नहीं बनेगा। आज तक रसोइया नहीं था। आपकी पतोहू अत्तिमब्बे इसको अपने छोटे भाई के समान मानती हैं।''

कहते-कहते ''इधर आओ रत्न! ओ कवि रत्न!!'' कहकर पंपदेव ने आवाज दी। रत्न उसी प्रतीक्षा में आड़ में खड़ा था। चाहता था कि अपनी वेश-भूषा

पिताजी को दिखा दें। कोई न कोई बहाना निकाल कर उन लोगों के सामने आ जाना चाहता था। पंप की आवाज क्या सुनी हर्ष से छलांग भरते हुए आ पहुँचा। चिथड़ों में लिपटा रत्न अब मखमली पोषाक से चमक रहा था। नया कपड़ा था। कानों में कर्णाभरण था। उंगलियों में अंगूठी थी और सिर पर बेलबूटे वाली टोपी थी। अपने बेटे को देखकर जिनवल्लभ फूले नहीं समाए। गोद में उठाकर, छाती से लगाकर प्यार किया। अपनी गोद में बिठाकर राचय्य की ओर करुणा से देखा।

''बेटा लो अपने छोटे भाई को।''

कहते हुए उसकी गोद में रत्न को बिठाया। जिनवल्लभ की आँखों से आनंदवाष्प टपक पड़ा। राचय्य आनंद से पुलकित हो उठा था।

''अब कहो बेटा। रत्न को यहाँ रख छोड़ें अथवा साथ ही ले चलें ? प्रवर्धमान लड़कों को दूध, दही और घी आदि चाहिए। हमारे यहाँ प्रायः माँ का दूध छोड़ और दूध देखा तक न था।''

इस प्रकार अंट संट कहने लगा था जिनवल्लभ! क्योंकि आनंद के मारे वह खुद नहीं जानता था कि वह क्या बोल रहा है।

''राचय्य! तुम्हारे छोटे भाई को पढ़ाने के लिए हम बंकापुर भेजना चाहते हैं। जब तक हम वापस नहीं भेज देंगे तब तक कोई इसे बुलाने नहीं आवें। पढ़ाई अधूरी नहीं होनी चाहिए।''

दल्लप की स्वाभाविक अधिकार पूर्ण दृढ़ वाणी सुनकर राचय्य झेंपने लगा। उसे अपनी पहले बिना विचारे कही गई बात पर लज्जा हो रही थी।

''प्रभो! न जाने किस शुभ घड़ी में मैंने उस साध्वी सती सावित्री को चूड़ियाँ पहनाई। हमारा भाग्य बदल गया। सच मानिए अब से रत्न आपका बेटा ही है।''

कहकर जिनवल्लभ ने दल्लप की गोद में उसे रख दिया। दल्लप को अपार हर्ष हुआ। उसे अपने पास बिठा लिया। माँ-बाप का हृदय क्या कभी अपने-पराये का भेद जानता है ?

''जिनवल्लभ जी, इसे स्वीकार कीजिए।''

कहकर एक थैली उसके हाथ में थमाने का प्रयत्न दल्लप ने किया।

''प्रभो! मेरा दाम मुझे मिल चुका है। यह क्यों ? आप मेरे लड़के के

भरण-पोषण का भार उठा चुके हैं। आपने मेरे वंश का नाम ही उज्ज्वल कर दिया है। आपने तो गरीब की झोपड़ी पर सुवर्ण का कलश लगा दिया। मुझे अब इसकी आवश्यकता नहीं है।''

इस प्रकार अत्यन्त दीनता और हर्ष दिखाते हुए जिनवल्लभ ने थैली लेने से इन्कार किया।

''जिनवल्लभ जी! यह महामात्य का आशीर्वाद है और इस प्रसाद का तिरस्कार नहीं कीजिए।''

कह पंप ने जब आग्रह किया तो विवश होकर जिनवल्लभ ने राचय्य की ओर देखा। राचय्य ने भक्ति पूर्वक उस थैली को हाथ में लिया।

''अब आज्ञा हो तो लौटेंगे। हम आपके ऋणी हैं। हमारा वंश और हमारा रोवां रोवां आपका ऋणी रहेगा।''

कहकर कृतज्ञता के भार से सिर झुकाकर जिनवल्लभ खड़े हो गए। शुभ दिन में रन्न को बंकापुर भेजा जायेगा। मेरे पुत्र और पतोहू साथ जायेंगे। दल्लप ने बताया।

''रन्न जाओ। अपनी जीजी से कहो कि ये विदा होना चाहते हैं।''

दल्लप की आज्ञा सुनकर रन्न अंदर गया और आदेश सुना दिया। उधर पद्मब्बे ने कहा कि बहू, देखो कुछ कलेवा बाँध दो। वह पाकशाला गई। पीछे-पीछे रन्न भी गया। एक बड़ी टोकरी में तरह-तरह के माल रखकर उसके बीच में थैली भी रखी। इसे देखकर रन्न बोला।

''जीजी! एक थैली किसलिए ?''

रन्न का कुतूहल देखकर अत्तिमब्बे ने कहा - ''भाई इसमें कुछ पैसे हैं। किसी से मत कहो। यह तुम्हारी माँ के वास्ते रखा है। एक काम करो, मौका निकाल कर अपने भाई अथवा पिता से एकान्त में कह देना कि इस टोकरी को संभाल कर रखें।''

ऐसा कहती हुई उस टोकरी को अपने हाथ से ठीक-ठीक बाँध दिया और रन्न के हाथ में थमा दिया।

तब रन्न ने उसे अपने पिताजी को ला दिया और चुपचाप खड़ा रहा।

''बेटा हमारे साथ कुछ दूर आओ।''

कहकर रन्न को साथ लिए जिनवल्लभ सबको प्रणाम करके विदा हुए। तब पद्मब्बे ने महाद्वार तक आकर कहा – ''देखिए, आप इस लड़के के सम्बन्ध में चिंता न कीजिए। इसे पढ़ा लिखाकर आपके घर ही भेज देंगे।''

इस सांत्वना की बात से जिनवल्लभ गद्गद् हुए बोले – ''माताजी! आपसे मैं क्या कहूँ ? पढ़ लिखकर लड़के किसी के अधीन नहीं रहते। खैर आपकी बहुएँ साक्षात् दानचिंतामणि हैं और आप तो सम्यक्त्व चूड़ामणि हैं। आपके स्पर्श से सब कुछ सोना बनेगा।''

इन शब्दों में सबका गुणगान करते हुए विदा ली। लड़के के साथ कुछ दूर चले। रास्ते में रन्न बोला – ''पिताजी! इस टोकरी को संभाले रखें। भैय्या, कहीं पिताजी भूल जायें तो भी तुम मत भूलो।''

''किसने यह बाँध दिया बेटा ?'' जिनवल्लभ ने प्यार से पूछा।

''बड़ी जीजी ने। इसमें कुछ तर माल रखा है और एक थैली भी। मुझसे कहा कि इसे आपके हाथ में देकर सँभाले रखने को कह दूँ।''

''घर के सभी लोग उदार हृदय हैं। ससुर कल्पवृक्ष हैं। सास कामधेनु हैं। बहुएँ चिंतामणी हैं। हम अमृतवृष्टि में फँस गए। चाहता हूँ कि हमारे जैसे पापियों की छाया तक उन पर नहीं पड़े। हम इनके संसर्ग में आने योग्य नहीं हैं पर कहाँ संभव है ? हमारा अहोभाग्य है इन सबके दर्शन हुए फिर भी नागदेव को नहीं देख पाया।''

''पिताजी, वे तो बहुत कम घर पर रहते हैं। आते भी हैं तो अपने कमरे से बाहर आते ही नहीं। पर वे इन सबसे बढ़कर अच्छे हैं।''

रन्न ने अत्यन्त हर्ष से कहा।

''ठीक कहते हो बेटा। कामधेनु की संतान कामधेनु ही हो सकती है। कल्पवृक्ष के बीज से कल्पवृक्ष ही तो उगेगा। पर बेटा, एक बात याद रखना। बड़ों के बीच में रहते हो। जितना भी सजग रहो कम समझो, क्योंकि बड़ों के साथ रहना बड़ा कठिन है। इनकी प्रसन्नता वरदान है अवश्य, पर कहीं किसी कारण से इनका मन फिरा तो समझना होगा कि अभिशाप है वह वज्रपात–सा होगा समझे।''

फिर राचय्य से कहा –''बेटा इसे घर तक पहुँचा आओ। बहुत दूर चला आया है। तब तक मैं यहीं बैठा रहूँगा।''

दोनों लड़के चले गए। उस ओर देखते हुए जिनवल्लभ बैठा-बैठा सोच रहा था। विधि की लीला कौन टाल सकेगा ? अब कहाँ और कैसे भाग्योदय होगा ? सोचा था कि यह भी मुझ जैसा फेरीवाला बनेगा, पर यह विद्वानों के बीच में रहकर विद्यार्जन करके राज दरबार का कविरत्न बनने जा रहा है।

बंकापुर के गुरुकुलों में विशिष्ट प्रकार का उत्साह उमड़ पड़ा था। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे ने सभी विद्यार्थियों को मिष्ठान्न खिलाया था। उन्होंने अजितसेनाचार्य को भक्ति पूर्वक भिक्षा दी थी। जब यह मुनिवरजी सामायिक से निवृत्त हो गए तब शिष्य मण्डली के साथ बैठ गए। अत्तिमब्बे का परिवार मुनियों के दर्शन के लिए आया। एक-एक करके मुनिवृन्द के प्रत्येक व्यक्ति को साष्टांग करके सबका आशीर्वाद पाया। मुनि-मण्डल रूपी तारागण के बीच अजितसेनाचार्य जी चन्द्र-मण्डल के समान प्रकाशमान थे। बंकापुर का ऋष्याश्रम कर्नाटक का तिलक था। सैंकड़ों साधुसंत और आर्यिकाओं का निवास स्थान था। विद्वानों का केन्द्र था। इस आश्रम में सैंकड़ों विद्यार्थी सरस्वती का अनुग्रह प्राप्त करने अहर्निश तपस्या कर रहे थे। आश्रम के कुलपति अजितसेनाचार्य जी थे। चिरकाल से राष्ट्रकूट सार्वभौम यहाँ आकर इनके आशीर्वाद पाते और लाखों की सम्पत्ति प्रतिवर्ष दे जाते थे। गंगों के मारसिंह भी उसी प्रकार आश्रम के हित चिन्तकों में एक थे। चामुण्डराय का तो कहना क्या है ? वे अजितसेनाचार्य के शिष्यों में अग्रणी थे।

''बेटी, तुमने इस आश्रम को आज महल-सा बदल डाला है।''

अजितसेनाचार्य जी के प्रशंसा सूचक वचन सुनकर अत्यन्त नम्रता से अत्तिमब्बे बोली - ''महाराज! हमारी सारी सम्पत्ति क्या आपकी पाद-धूलि की बराबरी कर सकेगी ?''

भक्ति भाव से झुककर आचार्य के चरणों में नमस्कार किया और पद रज को सिर आँखों पर लगाया और अपने मांगल्य में भी लगा लिया। ऐसे ही गुंडुमब्बे के माथे पर इसका तिलक लगाया। अत्तिमब्बे के भक्तिभाव से वहाँ उपस्थित मुनिवृन्द गद्‌गद् हो उठा।

''अब्बे! तुम इस राष्ट्र की रक्षामणि हो। राष्ट्रकूट सम्राट् के समकक्ष रह कर तुमने आश्रम की ओर सुवर्ण-प्रवाह ही बहा दिया है। गंगराजा के दान के बराबर है तुम्हारा दान! अधिक क्या तुम सचमुच दानचिंतामणि हो।''

अजितसेनाचार्य ने मुक्त कंठ से उसका सम्मान किया।

''आचार्य जी! मैं केवल सामान्य स्त्री हूँ, अज्ञान की पुतली हूँ। सारी सम्पत्ति मेरे स्वामी की है। उदारता से आपने अनुमति दी, मैं और यह मेरी छोटी बहिन उसे यहाँ तक पहुँचा देने के लिए आई है।''

ऐसा कह अत्तिमब्बे ने कृतज्ञता-पूर्ण दृष्टि से पति की ओर देखा।

''गुसाईं जी! यह धन हमारे घर का नहीं है। मायके से अपने साथ लाई हैं। आप जानते ही हैं कि हम इतने श्री-सम्पन्न नहीं है।''

नागदेव ने स्पष्ट शब्दों में यथार्थ का परिचय दिया।

''आचार्य जी! आप ही बताइये जिस दिन मैं और गुंडुमब्बे इनकी दासी बन गईं और इनके घर आईं तब से हमारी स्थिर एवं चर सभी सम्पत्ति के मालिक ये बने हैं कि नहीं ?'' अत्तिमब्बे का तर्क अकाट्य था।

''पंपदेव यह आदर्श दम्पति हैं।''

अजितसेनाचार्य जी ने पंपदेव की ओर देखकर कहा।

''आचार्य जी! ये न केवल आदर्श दम्पति हैं बल्कि स्पर्शमणि हैं स्पर्शमणि।''

पंपदेव ने काव्यवाणी में उत्तर दिया।

''बताओ बेटी! यह रत्न तुम्हारा क्या लगता है ?''

अजितसेन जी ने अत्तिमब्बे से पूछा। ''यह! यह हमारा ही है।''

अत्तिमब्बे ने बे-धड़क उत्तर दिया। पर कोई रिश्ता नहीं बता सकीं।

''स्वामी जी! इसके मन में अभी से यह संशय जम गया है कि अपनी संतान नहीं होगी - इस कारण से इसे दत्तक कर लिया है।''

नागदेव ने मुस्कुराते हुए कहकर अत्तिमब्बे की ओर देखा।

''क्या यह बात है ?''

अजितसेन जी ने गंभीर भाव से प्रश्न किया और अपनी दिव्य दृष्टि से अत्तिमब्बे की भावावली जानने का सफल प्रयत्न किया।

''जी नहीं! ये मेरी खिल्ली उड़ाते हैं।''

कहते-कहते अत्तिमब्बे मारे लज्जा के मानों जमीन में गड़ गईं। गुंडुमब्बे से अजितसेन जी ने प्रश्न किया - ''क्यों बेटी, कहो क्या यह बात सच है ? रत्न

को गोद लिया है ?''

''ऐसा ही समझ लीजिए; कोई आपत्ति नहीं।'' गुंडुमब्बे ने उत्तर दिया।

''अत्तिमब्बे तुम्हारा यह पुत्र जगत् विख्यात बनेगा। सोचो मत। अब यह बताओ कि इस रत्न को क्या बनाना है ? क्योंकि अभी से उसे कतारकर उसके योग्य बनाना होगा।'' अजितसेनाचार्य जी बोले.....

''मैं क्या जानूँ ? आचार्य जी। आप ही समर्थ हैं। आप परीक्षाकर देख लीजिए। यह जिसके योग्य निकले वही बने।''

इतना कहकर एक बार नागदेव और दूसरी बार गुंडुमब्बे की ओर अत्तिमब्बे ने दृष्टिपात किया। गुंडुमब्बे बोली –''आचार्य जी, मेरी बहिन चाहती है कि यह अच्छा कवि बन जाए।''

क्या इसे पंप महाकवि का उत्तराधिकारी बनना है।

आश्चर्य सूचित करते हुए अजितसेन जी बोले।

हमारे मामा पंपदेव वृद्ध हो गए हैं। इनके बाद कन्नड़ सारस्वत रिक्त नहीं होना चाहिए। आप आशीर्वाद दें कि यह रत्न कवि चक्रवर्ती बन जाये।

अत्तिमब्बे के मुँह से हृदय की बात निकल पड़ी।

मुनिवर अजितसेन जी की दृष्टि रत्न पर जम गई। पल भर में अपना सिर हिलाते हुए मुस्कुराए। उसे गुरुकुल के व्यवस्थापकों के साथ अंदर भेज दिया। तब बोले –''बेटी, तुम्हारा यह लड़का कवि चक्रवर्ती बनेगा। चिंता मत करो।''

''अजितसेनाचार्य की भविष्यवाणी पर विश्वास करो। आप वाक्सिद्ध सम्पन्न हैं। आपके श्री मुख से आज जो बात निकली वह अवश्य सत्य होगी।''

''अत्तिमब्बे को आश्वासन देते हुए गंभीर भाव से पंपदेव ने कहा।''

''पंपदेव की बात सच है बेटी। मुझे सब सिद्धियाँ प्राप्त हैं। पर एक बात की कमी है। पंपकवि जैसे दो-एक महान् व्यक्ति मेरी शिष्यवृत्ति कर चुके हैं। अब यह महाकवि हैं। कन्नड़ माता के मांगल्य के मध्य सुशोभित अनूठे रत्न बन गए हैं। पर मैं जो था वहीं हूँ। सबका भविष्य कहा करता हूँ। अपना भविष्य सुधार नहीं सका। तब जैसा था आज भी वैसा ही रह गया।''

कहकर जोर से हँस पड़े।

''आचार्य जी! इतना आखिरकार आपने स्वीकार तो किया कि पंपदेव

आपके शिष्य हैं।''

हँसते हुए अत्तिमब्बे बोली।

''बेशक। ये मेरे शिष्य तो थे। अब नामी हैं। विश्वविख्यात हैं। ऐसे व्यक्ति को अपना शिष्य कह लेने में मेरा गौरव बढ़ेगा न ?''

अजितसेन जी मुस्कुराये।

''आचार्य जी! अब भी आपका शिष्य कहने में मेरा अपार गौरव है। आपका स्थान मुझ जैसों से ऊँचा नहीं होगा ? स्वयं ऊँचा है, क्योंकि आप कवि चक्रवर्तियों के सृष्टा हैं, निर्माता हैं।'' पंप महाकवि ने पुलकित होकर कहा।

अजितसेनाचार्य जी भव्यात्माओं की संख्या बढ़ते देखकर अत्यन्त उद्दीप्त थे और आत्मानंद का अनुभव कर रहे थे। अत्तिमब्बे का परिवार देखकर आपने दुगुने चाव से संतुष्ट कामधेनु के समान सुधा सदृश उपदेशामृत की धारा बहा दी।

''दल्लप! तुम्हारे समधी को यहाँ बुलउआ भेजें।'' तैलप ने सलाह दी।

''पोन्नमय्य की मृत्यु का घाव अभी हरा है। वे दोनों भाई वासुदेव और बलदेव जैसे थे।'' दल्लप की ध्वनि शोक से भरी थी।

''हमारे ही कारण पोन्नमय्य की मृत्यु हुई। चालुक्य साम्राज्य की स्थिरता के लिए न जाने कितने वीरों को, कितने जिनधर्मावलंबियों को प्राण न्यौछावर करना पड़ेगा।''

ऐसा कहते समय तैलप की आँखों में दो-चार बूँदें टपक पड़ी।

''राष्ट्रनिष्ठा से बढ़कर और क्या धर्म है ? राष्ट्र-रक्षा से बढ़कर और क्या कर्तव्य होगा, प्रभो! राष्ट्रहित के लिए प्राणार्पण करना भी एक दृष्टि से समाधि-मरण ही मानना चाहिए।''

''यदि पोन्नमय्य नहीं होता तो उस परिस्थिति में गोज्जिग के कूटयुद्ध से बचना असंभव बन जाता। पोन्नमय्य की सेवा चिरस्मरणीय रहेगी। गोज्जिग के बाणों का निशाना मैं ही था। बाण पर बाण बरसाए जा रहे थे। यदि पलभर भी पोन्नमय्य आगा-पीछा करते तो हम चारों खाने चित्त हो जाते। उस महात्मा ने हमारी मौत अपने गले लगाई। हम उनके चिर ऋणी हैं। सुनते हैं कि उनको कोई आठ संतानें हैं- कभी उन्होंने इस बात का जिक्र किया था।'' तैलप ने कहा।

''उनकी तो और कोई संतान नहीं थी। हाँ, हाँ! प्रायः अपने भाई की

संतानों के बारे में कहा होगा।'' दल्लप ने स्पष्ट कर दिया।

''क्या यह सच है ? उनकी निजी संतान नहीं है ? तब क्या अपने भाई की संतानों को इतना चाहते हैं। उनकी बातों से हमने समझा था कि वे निजी संतान की बात कर रहे हैं।''

''जी हाँ प्रभो! जब उनकी पत्नी ने सहगमन किया तब अपनी सम्पत्ति को मल्लप की तीन पुत्रियों में बाँट दिया था। हर एक को सोना, चाँदी, लाल, हीरे आदि इतनी सम्पत्ति मिली कि दस-दस गाड़ियों पर ले चलीं। मेरी बहुएँ नित्य अपनी चाची का स्मरण करके आज भी आँसू बहाती हैं। प्रभो, वह एक आदर्श परिवार था और उस घराने का प्रति व्यक्ति कामधेनु-सा कल्पवृक्ष से होड़ करने वाला है।''

दल्लप ने बड़े प्रसन्नभाव से कहा।

''दल्लप अब विलम्ब नहीं करना चाहिए। नहीं तो अपराध होगा। हम समझते हैं कि वे लोग चाहें या नहीं चाहें हमारा कर्तव्य है कि पहले मल्लप को यहाँ बुला लें। यह काम आपको करना होगा। हमारे अमात्य संपुट में आप प्रधान होंगे और मल्लप उप-प्रधान। पुंगनूर से अपना सारा परिवार लेकर वे यहाँ आवें। इस विजयपुर में ही घर बसावें। हम अपने ग्रीष्म-महल उनके लिए दे देंगे।''

तैलप ने अंतिम निर्धार-सा सुनाया।

''प्रभो! हम सोच समझकर काम करें। राज्य के प्रमुख पदों पर इस प्रकार जैनियों का रहना औरों को खटकने लगेगा।''

दल्लप ने व्यावहारिक नीति की बात कही।

''दल्लप, यहाँ जाति या धर्म का प्रश्न थोड़े ही है। जो निष्ठावान हो, गुणी हो, उसकी निष्ठा और गुण पर तो विचार कर रहे हैं। चालुक्य साम्राज्य के श्रेय के लिए पहले से लेकर अब तक जैनियों ने खून का पसीना बहाया है। सदियों से ये लोग हमारे साम्राज्य की हितसाधना में लगे हैं और आज भी तत्पर हैं। यदि समन्तभद्र नहीं होते तो पुलकेशी के समय में ही चालुक्य साम्राज्य का सूर्य अस्तगत हुआ रहता। राज्य-लोभ ने मंगलेश को अंधा बना दिया था। उसने राज्य के सच्चे उत्तराधिकारी पुलकेशी को पदच्युत करने के लिए क्या नहीं किया, बताइए। उधर पुलकेशी का छोटा भाई विष्णुवर्धन था। इसलिए तो मूर्ख ने औरों की बात मानकर अंत तक अपने भाई को चैन से रहने नहीं दिया। ऐसे अवसर पर

यदि समन्तभद्र की सहायता नहीं मिली होती तो पुलकेशी क्या कभी राज्य पर सकते थे ? पुलकेशी के दो नेत्रों में एक समन्तभद्र थे तो दूसरा रविकीर्ति। पुलकेशी की कीर्ति रविकीर्ति के कारण भरतखण्ड भर में फैल सकी। स्वयं पर्शिया तक जाकर रविकीर्ति ने पुलकेशी की कीर्ति फैलाई। नहीं तो वहाँ चालुक्य साम्राज्य का नाम कौन जान पाता ? ऐसे ही अचानक बदामी पर चोलों का सैनिक आक्रमण हुआ तो पुलकेशी की रक्षा के लिए समंतभद्र और रविकीर्ति दोनों ने प्राण पण से युद्ध किया और अंत में रणभूमि में ही ढेर हो गए। वे दोनों जैन-धर्म के अनुयायी थी। वह बात गौण है।''

''जैन ही थे प्रभो! कौन इन्कार करता है ? फिर भी एक ही जाति या धर्मावलंबियों के हाथ में राज्य की बागडोर दे देना उचित नहीं है। इससे अनावश्यक ही औरों का दिल खटकने लगेगा। संभव है कि इस असंतोष के परिणामस्वरूप साम्राज्य का अस्तित्व ही संशय-ग्रस्त बन जाए।''

राजनीति की दृष्टि से दल्लप ने सलाह दी।

''दल्लप! आप फिर जाति पाति की बात पर विचार करते हैं। पर यह भूल जाते हैं कि हम केवल निष्ठा और नेकी पर ध्यान देते हैं। आप लोगों की नियुक्ति इसी आधार पर हुई है। जैन-धर्म के नाते नहीं। यहाँ धर्म पर नहीं, कर्म पर दृष्टि है। पंप महाकवि अरिकेसरी के दाहिने हाथ थे। अरिकेसरी के रनवास तक पंपदेव की पहुँच थी। क्या कभी पंपदेव ने अपने पद या प्रतिष्ठा का दुरुपयोग किया था ? महारानी के भाई, अरिकेसरी का साला और चालुक्य साम्राज्य के हितचिंतक बनकर जीवन बिताया। जाति-पाति को लेकर क्या कीजिएगा ? सबसे प्रमुख स्थान योग्यता को मिलना चाहिए। योग्य व्यक्तियों की संख्या चाहे जितनी बढ़े, उससे राष्ट्र का हित ही सिद्ध होगा। अधिक सोच विचार की आवश्यकता नहीं है। शीघ्र ही, दल्लप! मल्लप को हमारी ओर से न्योता भेजिए।''

तैलप ने आग्रह पूर्वक कहा। ''मैं समन्तभद्र का वंशज हूँ।''

अभिमान पूर्वक दल्लप ने कहा। ''यह बात है। तब तो अच्छा ही हुआ।''

''हम पुलकेशी के पोते के पोते के पोते हैं। आप समन्तभद्र की पीढ़ी के हैं। पुलकेशी के दरबार में समन्तभद्र की जो पद-प्रतिष्ठा थी वही हमारे दरबार में दल्लप की होगी।''

तैलप ने हर्ष चित्त होकर घोषणा की।

मल्लप का पुंगनूंर छोड़कर अपने परिवार सहित चालुक्य साम्राज्य की राजधानी विजयपुर आना पड़ा। राजमर्यादाओं से इनका स्वागत सत्कार हुआ। उप–प्रधान का पद देकर तैलप ने उसका सम्मान किया। मल्लप के पाँचों पुत्रों को योग्यता के अनुरूप पद प्रतिष्ठा दी गई। चालुक्य साम्राज्य के प्रमुख केन्द्रों में और महत्त्वपूर्ण स्थानों में मल्लप तथा उनके समधियों की नियुक्ति हो गई।

❑❑❑

8.

एक सहस्र मुनियों को एक साथ आहार कराकर अत्तिमब्बे कृतकृत्यता का अनुभव करने लगी। वह तो फूले नहीं समा रही थी। वहाँ से कुछ दूर चली आई तो अकृत्रिम जिनालय मिला; जहाँ हजारों रत्नबिम्ब ऐसे भासित हो रहे थे कि मन पुलकित हो उठता। ऐसा लग रहा था मानों चाँदनी को ही साँचे में ढालकर शीतल पवन के चाक पर चढ़ाकर बनाए गए हों। अत्तिमब्बे ने उस समय अनगिनत शिशुमण्डली में रहने का-सा आनंद पाया। उन सहस्र जिनबिम्बों को एक साथ क्षीराभिषेक करने का प्रबन्ध था, जिसे देखकर वह आनंद से रोमांचित हुई। नवरत्न के उन बिम्बों से वर्ण-वर्ण की किरणें ऐसे बिखर गईं कि मानों हजारों इन्द्रधनुष के झूलों पर एक साथ अनगिनत भव्यात्माओं को झुला रहे हों।

जिनबिम्बों का अभिषेक देखकर अत्तिमब्बे विदेह क्षेत्र आई। अपराजितेश्वर के समवसरण के लिए मानों देव-ललनाओं ने उसका स्वागत किया। समवसरण में एक ओर दिव्य संगीत हो रहा था, देवांगनाएँ गा रहीं थीं। अत्तिमब्बे ने कभी ऐसा संगीत सुना ही नहीं था। वासंती की सुगंध मानों संगीत लहरी बन महक रही थी। आगे-आगे चली। वहाँ खेचर कन्याओं का नर्तन हो रहा था। कभी लास्य, कभी तांडव। लास्य नृत्य की भंगिमाओं में मलयानिल में इठलाने वाली माधवी लता-सी खेचर कन्याएँ लगतीं तो ताण्डव में बिजली-सी चमक कर वज्र-सा टूट पड़तीं और रस की बाढ़ उमड़ा देतीं।

वहाँ से आगे बढ़ने पर हजारों मुनिवृन्द मुक्त्यंगना की गोद में शिशु से भोलापन लिए प्रशांत चित्त विराज रहे थे। हजारों आर्यिकाएँ थीं, जो साक्षात् करुणा के कोमल पौधों के समान लग रही थीं। इन पवाड़ों को देखने के लिए लक्षोपलक्ष भव्यात्मा एकत्रित थे। जिन्हें देखते ही लग रहा था मानों शशि का सौन्दर्य देख मुग्ध बने चमकीले नेत्रों से दैदीप्यमान नक्षत्र हों। वहाँ सहस्र दल वाले सुवर्ण कमल पर धर्म-रूपी मकरंद विराज रहा था। कमल पर जैसे भ्रमर आ आकर न्यौछावर होते हैं, उसी प्रकार अपराजित के चरणों पर भव्यवृन्द आ आकर न्यौछावर हो रहे थे।

अत्तिमब्बे भी परमात्मा के सन्निकट आई थी। तीर्थेश के पादारविंद पर

नतमस्तक हो गई। ऐसा लगा, मानों अपना त्रयताप वहीं फेंक चुकी हो। चरणस्पर्श से उसके तन-मन में पुलकावली प्रस्फुटित हो गई। इतना हर्ष हुआ मानों दिव्य ध्वनि रूपी पयोधि में अवगाहन कर रही हो। वहाँ से उठकर मंद मारुत-सी इठलाती हुई सिद्धशिला के पास आई।

सिद्धलोक में जहाँ भी देखें परमज्योति की मूर्तियाँ ही मूर्तियाँ दिखाई देती थीं। ज्योति में ज्योति सी या दूध में बतासे के समान ये सिद्ध एक दूसरे से मिल रहे थे। समरस होकर भी अपनेपन को बनाए रखकर आनंद तुंदिल होने वाले करोड़ों सिद्धात्माओं का समूह दर्शनीय था। कुछ खड़े थे। कुछ बैठे थे। चाहे खड़े रहे, चाहे बैठे रहे, सबका सिर एक ही स्तर पर रहता था। निरुपाधिक, निश्चिंत उन सिद्धों में किसी-किसी के चरणों ही की वंदना अत्तिमब्बे कर सकी।

उस समय अत्तिमब्बे सिद्धरस में ओतप्रोत थी। उसने मुग्ध होकर चारों ओर सिद्धलोक पर दृष्टिपात किया। चारों और चाँदनी चंचल तरंगिणी-सी बह रही थी। इस चंद्रिका को मथकर निकाले नवनीत के ढेर के समान, इधर-उधर पुरुष रूप में विराजने वाले सिद्ध-परमेष्ठियों का दिव्य दृश्य चित्ताकर्षक था। वे चंद्रिका से भी अधिक कांतियुक्त और कौमुदी से भी बढ़कर कोमल लग रहे थे। आत्मा की पवित्रता की पराकाष्ठा ही तो सिद्धावस्था है। ज्ञान ही ज्योति बन, ज्योति ही मूर्ति बन प्रशांत पीठों पर महिमा रूपी अवगुंठन धारण किए सिद्धात्माओं का स्तोम विराजमान था। उस महिमालोक में अत्तिमब्बे स्वयं महिमामयी बनकर समरसता का अनुभव करने लगी। उसे अपनी सुध-बुध तक नहीं थी।

''जीजी! जीजी! उठो! देखो तो सही सूरज कितना ऊपर चढ़ आया है।''

ऐसा कहकर गुंडुमब्बे ने मणिमंच पर सोई हुई अत्तिमब्बे को हिलाया। अत्तिमब्बे के मुखारविंद पर दैविक कांति थी। भगवद् दर्शन से संतृप्त थी। वह निश्चित एवं निर्विकार भाव से सोई हुई थी। भला कौन सिद्धलोक से उतर आना चाहता है ? स्वच्छ चाँदनी-सा मंदहास अत्तिमब्बे के मुखमण्डल की शोभा बढ़ा रहा था। उसे देखकर गुंडुमब्बे का हृदय आनंद से पुलकित हो उठा। मुग्ध होकर उसको देखती रह गई गुंडुमब्बे अत्तिमब्बे के मुखमण्डल से घुंघराले केशों को सँवारने लगी। चन्द्रमा पर रखे शुक्र तारा के समान मुखमण्डल पर नथ चमक उठी। सम पर बजने वाली वीणा-सी अत्तिमब्बे की सांस वासंती उपवन से बहकर आई हुई गंधभार-भरी गंधवाह-सी चल रही थी।

''जीजी! यह कैसी नींद है। कितनी गहरी! सब उठे, नहाए, धोए! तुम भी उठो।''

गुंडुमब्बे ने फिर उसे हिलाया। किसी अज्ञात लोक से उतर आई-सी जागकर अत्तिमब्बे ने चारों ओर देखा। पानी के बाहर काढ़ी गई मछली-सी वह बेचैन हो गई। अत्तिमब्बे की ठुड्डी पकड़ कर प्यार से अपनी ओर मुँह घुमाकर गुंडुमब्बे ने प्रश्न किया - ''जीजी, क्या सपना देख रही थी ?''

''गुंडू! तुमने मेरी नींद तोड़कर अच्छा नहीं किया.....।''

अत्तिमब्बे ने इस ढंग से उत्तर दिया मानों अपार कष्ट पाकर खिन्न हुई हो।

''क्यों जीजी! सब नहा धुला चुके। पूजा पाठ से निवृत्त हुए। तुम अभी सोई हो। सास जी ने जगाने के लिए मुझे भेजा। जाओ हाथ मुँह धो आओ।''

कहकर छोटे लड़कों को फुसलाने वाले ढंग से, प्यार से जगाया।

''गुंडू! मैंने विदेहक्षेत्र को देखा। अपराजित का समवसरण भी देखा। जिनदर्शन पाया। सिद्धलोक के परमानंद में मग्न थी। कितना अच्छा था। कैसी प्रभा थी।''

यों अत्तिमब्बे कह ही रही थी कि पद्मब्बे वहीं आईं और डांटने की आवाज में बोली - ''गुंडू! यह क्या ? जगा लाने भेजा तो यहीं आकर बैठ गई।''

गुंडुमब्बे ने उनसे अपनी बहिन का स्वप्न कह सुनाया।

''बड़े आनंद की बात है बेटी! अब हमारी अत्तिमब्बे के छठवाँ मास है। प्रसव के दिन तब ऐसा ही स्वप्न देखा करें।''

सचमुच पद्मब्बे के वचन आनंद रस से सिक्त होकर चले आ रहे थे। आगे बोली -''अत्ति! निस्संकोच अपने दोहद कहा करो। तुम्हारी आशा पूर्ण कर दूँगी।''

अत्तिमब्बे से इस ढंग से बोल रही थी मानों अपनी बेटी से ही बोल रही हों।''क्या सचमुच पूर्ण करेंगी ?''

संशय व्यक्त करती हुई अत्तिमब्बे बोली।

''क्या मुझ पर संदेह है बेटी ? मेरे वंश की ज्योति तुम्हारे गर्भ में है। अब

जो भी तुम्हारी इच्छा होगी वह असल में उस मेरे लाड़ले की होगी, समझी। माँगो, तुम जो चाहे माँगो बेटी।''

पद्मब्बे ने अत्यन्त वात्सल्य दिखाया।

''चाँदनी को जिनबिम्ब के साँचे में ढालकर आँख भर देखने की इच्छा हो रही है।''

अत्तिमब्बे ने बिना हिचकिचाहट कह दिया।

''जीजी! क्या अभी तुम सिद्धलोक में रहती हो ? इस मर्त्यलोक में उतर आओ, चाहे नवरत्नों की मूर्तियाँ बनवा लें।'' गुंडुमब्बे ने सलाह दी।

''उहूँ! मुझे चाँदनी की ही मूर्तियाँ चाहिए।''

अत्तिमब्बे ने कहा और मुस्कुरायी।

''कैसी मूर्ति गढ़वायी होगी ? इसका ढाँचा तो कहो।''

पद्मब्बे ने गंभीर भाव से कहा।

''माताजी! मैं उसे क्या जानूँ ? यहाँ कहाँ से लाऊँ ? ऐसी हजारों मूर्तियाँ मैंने स्वप्न में अवश्य देखी हैं।''

कहकर अत्तिमब्बे फिर अंतर्मुखी हो गई।

अत्तिमब्बे! आज रात को फिर वही स्वप्न देखना। हो सके तो नमूने के लिए एक वैसा ही जिनबिम्ब बनाने का प्रयत्न भी करो। उसकी हजारों प्रतिकृतियाँ मैं बनवा दूँगी। अब उठो। यों भूखे रहना नहीं चाहिए।

ऐसा कहकर बहू को साथ लिए पद्मब्बे चली गई।

अत्तिमब्बे पर उस स्वप्न का बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा था। उसकी कल्पना अत्यन्त सजग हो उठी थी। वह कभी-कभी विदेहक्षेत्र एवं परमौदारिक-काय-जिनेन्द्र मूर्ति को अपनी आँखों के सामने चित्रित करने का प्रयत्न करने वाली। सिद्धलोक की मोहकता को मानस-पटल पर अंकित करके कल्पना में लीन होने लगी। पहले उसकी रूपरेखा खींच कर उसमें रंग भरने का प्रयत्न करने लगी। घर पर रहने वाले सोना-चाँदी से जिनमूर्तियाँ ढलवाने के लिए बैचेन हो उठी। सहस्र मूर्तियों को एक साथ बिठाकर अभिषेक कराने के रमणीय दृश्य की कल्पना उसे आनंद विभोर कर रही थी।

अकृत्रिम जिनालयों की भाँति स्वयं कई जिनालय बनवाने की बात अत्तिमब्बे सोचने लगी। गगनचुम्बी सहस्रकूट जिनालय बनवा दें तो वह चंद्रिका पर्व में नहाते हुए कैसे शोभायमान रहेगा ? अमावस्या के गहरे अंधकार में उस जिनालय को नीचे ऊपर तक अंदर-बाहर घी के दीपों से जगमगा दें तो उस ज्योति मालिका में क्या सुंदर लगेगा ? ज्योतिर्लोक ही मानों इस धरातल पर उतरा सा नहीं लगेगा ? ऐसी कल्पना उसे तन्मय बनाए रखने लगी थी। अत्तिमब्बे अपने गर्भांबुधि में स्थित प्रवर्धमान शिशु को लिए विहार कर रही थी।

ऐसे दिवास्वप्न से कभी जी उचटे तो काव्यजगत् की विहारिणी बन जाती थी। महाकवि पंप के आदिपुराण से स्वर्ग के मनमोहक वर्णन बढ़कर तन्मय हो उठती थी। स्वर्ग हो या मर्त्य जब तक पूरी आस्था नहीं हो और धर्म मार्ग पर चलते हुए दैव की कृपा पर विश्वास नहीं करें तो यह जीवन सार्थक नहीं होगा। इस सनातन सत्य पर उसका विश्वास दृढ़ होता गया। टहनी से टहनी पद उछलने वाले चंचल मर्कट से रहने वाले मन को यत्न पूर्वक सहस्रों जिनबिम्बों के सौन्दर्य दर्शन में लगाए रखने लगी और कभी-कभी काव्योद्यान में विहार करने का मौका भी उसे दे बैठती थी।

कभी-कभी वह कल्पना करने लगती कि समस्त काव्यों और शास्त्रों की हजार-हजार प्रतिलिपियाँ बनाकर एक साथ रख लें। जो भी माँगे उन्हें साहित्य या शास्त्र ग्रन्थ दान दें। इस प्रकार उनके प्रचार कार्य में हाथ बँटावें। वह संकल्प करती थी और चाहती थी कि स्त्रियों को साहित्य दान दें। वैसे ही सुहागिनियों की गोद सोने की जिनमूर्ति से भर दें।

''अत्तिमब्बे! क्यों सदा कुछ चिंतित-सी रहती हो ? क्यों पहले के जैसे हँस हँसकर बातें नहीं करती ? मन में तुम, मारे संकोच के कोई आशा रख लो और उसे पूरा होने नहीं दो तो मेरा लाड़ला जो तुम्हारी कोख में है खिन्न हो जायेगा। बोलो तो सही।'' ऐसा पद्मब्बे पूछा करती थी।

''क्या मैं अपने मन की आशा बता दूँ ? सुनकर आप हँस पड़ेगी, जाने दीजिए।'' अत्तिमब्बे ने झेंपते-झेंपते उत्तर दिया।

''इस लोक की बात हो तो कहो। यदि चन्द्र-किरणों की पुतलियों की बात नहीं हो तो अवश्य मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूँगी। चन्द्र-किरणों को कौन बटोर सकेगा और कौन साँचे में ढालकर मूर्तियाँ बना सकेगा ? अपने मन में भी ऐसी

मूर्ति को, प्रयत्न करके भी मुझसे ढालते नहीं बना। चाहे तो कहो सोना-चाँदी या रत्नों की मूर्तियाँ बनवा लें।'' पद्मब्बे ने कहा।

''ऐसा ही हो! क्या, जैसे मैं चाहती हूँ वैसे बनवा कर देंगी ?''

अत्तिमब्बे की वाणी में अभी संदेह था।

''क्या, सोने की बनवा दूँ ? अवश्य तुम्हारी इच्छा पूर्ण कर दूँगी। चाहे तो उसमें मेरी पूरी सम्पत्ति ही क्यों न खप जाये। मेरे पोते से बढ़कर तो यह सम्पत्ति नहीं।'' पद्मब्बे बोली।

''अच्छी बात है माताजी। एक हजार सुवर्ण जिन प्रतिमा बनवा दीजिए। एक साथ अभिषेक करवाना चाहती हूँ।''

अत्तिमब्बे की बात अभी पूर्ण नहीं हो पाई थी कि पद्मब्बे की हिम्मत ने जवाब दे दिया। बात काटकर बोली - ''बेटी, तुम्हें क्या हुआ है ? बोलेगी तो हजार की ही बात किया करती हो। अब हजार मूर्तियाँ बनवाने की बात कर रही हो शायद हजार मंदिर बनवाने की बात कहोगी। यह कैसे संभव होगा ? बेटी, कुछ विचारकर बोलो। मानवों की शक्ति सीमित होती है न ? अब कहो क्या करना चाहिए।''

पद्मब्बे ने प्रश्न किया। अपनी धुन में अत्तिमब्बे बोली -''और एक लाख श्लोक वाले श्री धवल, श्री जयधवल की हजार प्रतियाँ बनवानी हैं। पंप, पोन्न आदि कवियों की कृतियों की भी प्रतियाँ बनवानी होंगी। तभी तो हजारों मुखों से कन्नड़ काव्य श्री मुखरित हो सकेगी।'' अत्तिमब्बे भाव परवश हो बोलती जा रही थी। ''जीजी! तुम्हारी बात में रखूँगी। तुम खिन्न न हो।''

गुंडुमब्बे ने आश्वासन दिया।

''गुंडु! क्या तुम्हारा सिर भी चकरा गया है ? अत्ति हजारों से कम की बात सोचती ही नहीं। तुम बिना आगा पीछा सोचे करवाने की बात दे रही हो। मनमानी इसी को कहते हैं। तुम दोनों मिलकर बादल में थिगली लगाते जाती हो।''

पद्मब्बे ने डाँटते हुए कहा।

''माताजी! आपके आग्रह पर ही तो कह रही हूँ। आपने आश्वासन भी दिया था।'' अत्तिमब्बे ने स्मरण दिलाया।

''आश्वासन दिया था। पर तुम तो हजारों से कम की बात करती ही

नहीं। तुम इस लोक की नहीं, देवलोक की बात करती हो। सुनते हैं कि वहाँ कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणि आदि हैं, जो माँगने पर कामना पूर्ण कर देती हैं।''

पद्मब्बे ने कहा।

''मेरी जीजी की माँग पूरी करने के लिए कामधेनु की आवश्यकता है। देखिए, आप चिंता नहीं करें। सहस्र बिम्बों को एक साथ अभिषेक कराना कोई बहुत कठिन बात नहीं। मैं करा दूँगी।''

गुंडुमब्बे ने शपथपूर्वक आश्वासन दिया।

''तुम दोनों की बातें समझ में नहीं आती।''

कहती-कहती पद्मब्बे चली गई।

बहिन के कल्पना-विलास में रंग भरने वाली कलावती गुंडुमब्बे थी। वह अत्तिमब्बे के भावावेश को चमत्कृत ढंग से चरितार्थ कर देने वाली जादूगरिन थी। दोनों गंडभेरुंड़ के मुखद्वय के समान थीं। अत्तिमब्बे की इच्छाएँ औरों के लिए पागलपन-सी लगती थीं, पर गुंडुमब्बे के लिए वे आश्चर्य की बात नहीं केवल भक्ति परवशता और सहृदयता से प्रेरित दिखाई दे रही थीं। अत्तिमब्बे का सुख उसका सुख था, अत्तिमब्बे का दु:ख उसका दु:ख था। इस प्रकार अपनी बड़ी बहिन के जीवन में अपना जीवन नैवेद्यवत् अर्पित करके, अपनेपन का सर्वथा त्याग किए वह निश्चिंत रहने लगी थीं। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं होती थी, पर बहिन के लिए सब कुछ चाहती थी।

गुंडुमब्बे ने संकल्प किया कि अभिनव सिद्धलोक का निर्माण करा दें। इस कार्य के निमित्त अपने सभी भाईयों को बुलवा लिया। अपनी योजना को कार्यान्वित करने के लिए दस-एक दिन माथा पच्ची करती रही। अंत में अत्तिमब्बे की कल्पना को वास्तविक जगत् की वस्तु बनाने में सफल हुई।

एक बार दोपहर को अपनी बड़ी बहिन को साथ ले जाकर सिद्धलोक के दर्शन करा दिया। एक शीश महल बनवाया था। उसमें चारों ओर बड़े कलात्मक ढंग से आइनों को सजाकर रखा था और ऐसे ही रत्नों की जिनमूर्तियाँ भी सजाकर रखी गई थीं। इन मूर्तियों के शिरोभाग में एक प्रकार नलिकाएँ बँधी हुई थीं कि जब आवश्यकता हो तब अपने आप मूर्तियों का अभिषेक हो जाये।

अत्तिमब्बे को शीश-महल के मध्य में बिठाया। जहाँ वह दृष्टिक्षेप करतीं वहाँ करोड़ों जिनमूर्तियाँ देख पाती थीं। वह एक मायालोक सा था। उस

माया लोक की महिमा वर्णनातीत थी। रत्नबिम्बों से छिटकने वाली कांति दर्पणों द्वारा प्रतिफलित होकर दस गुना, सौ गुना, हजार गुना बढ़ जाती थी। इसी अनुपात में जिन मूर्तियाँ भी प्रतिबिम्बित हो रही थीं। अत्तिमब्बे की कल्पना इससे और निखर हो उठी। उसकी भावना पुलकित हो गई। उस दृश्य को देखने में मानों उसका रोवाँ-रोवाँ नेत्र बना था। सारा शरीर मानों अंतःकरण बनकर आनंदित हो उठा। देह मानों आनंद रस का कलश बना। उसकी भक्ति प्रवाह बनकर बह चली। वह उसमें तन्मय हो गई।

नलिका से जब उन रत्नबिम्बों पर शुद्ध जल का अभिषेक होने लगा तो ऐसा लग रहा था मानों निरुपाधिक सुख ही झड़ी-सी बरस कर नदी बन बह निकला हो। देखते देखते ऐसा भाषित होने लगा कि करोड़ों बिम्बों पर देव-गंगा की करोड़ों धाराएँ एक साथ बह चली हों। नलिका से जब दूध बह चला तो कहना ही क्या, स्वयं क्षीरसागर उमड़-उमड़ कर जन्माभिषेक करने के लिए अत्यन्त शांत भाव से शत-सहस्र धारा में बहते हुए धीरे-धीरे आ चुका हो। सुधांशु मण्डल से चंचल किरणों को समेटकर जिनाभिषेक देखने के लिए ज्योत्स्ना देवी धीरे-धीरे उतरती हुई-सी रमणीयता वहाँ छा गई। जब नाना वर्ण वाले उन जिनबिम्बों पर दूध बह चला तो रत्नों के विचित्र रंगों की छटा में दुग्धधारा विचित्र वर्णों वाली सुरगंगा-सी लगती। जब वह धीरे-धीरे बहने लगती तो ऐसा लगता कि देवगंगा इठलाती हुई धरातल पर आ रही है।

कभी-कभी ऐसा लग रहा था कि जिनबिम्ब ही पुलकित होकर लोक कल्याण निमित्त निकल पड़े हों। अहिंसा धर्म ही मानों क्षीर वारिधि-सा लहरा उठा हो अथवा रसावेश को मानों भक्ति का परिवेश भी मिला हो। गंधाभिषेक के अवसर पर तीनों लोक महक उठा हो। अत्तिमब्बे को ऐसा लग रहा था कि वह स्वयं सुगंध में ओतप्रोत हो गई। उसने माना कि यही नेत्रों का महोत्सव है और नाक को नाक कहना सार्थक है। अभिषेक समाप्त हुआ तब रत्नबिम्बों के निकट घी की बत्तियाँ जलाई गईं। तब देखना था उन रत्नों की मनोहारिता, उसकी कमनीयता से जड़ भी पुलकित होता दिखाई दे रहा था। तब अत्तिमब्बे के सम्बन्ध में क्या कहें ? उसने एक बार ऐसा ही दृश्य देखा था। पर प्रत्यक्ष नहीं, स्वप्न में देखा था। यह तो स्वप्न वाले दृश्य से हजार गुना अधिक आकर्षक था। वह स्वप्न था पर यह यथार्थ, वह कल्पना थी पर यह वास्तविक। मारे हर्ष के गुंडुमब्बे को बरबस गले लगाकर गले लगाकर अत्तिमब्बे कहने लगी - ''गुंडू! तुम्हारे बिना

यह संसार मेरे लिए शून्यप्राय होगा। तुम ही मेरी जीभ हो। तुम ही मेरी आँख हो। तुम मेरे कान हो। मेरे लिए अपना सर्वस्व त्याग किए रहने वाली त्यागमयी तुम ही मेरी कल्पना कार्यरूप में सार्थक बन सकी है। हे मनभावती! तुम्हें क्या कहूँ। तुम मेरे भाव की भाषा हो। भाषा का सौन्दर्य हो।''

ऐसा कहती हुई अपनी बहिन को बाँहों में बाँध लिया।

अत्तिमब्बे की बड़ी-बड़ी आशा-अभिलाषाओं की बात सुनकर अजितसेन आचार्य जी अत्यन्त हर्षित हुए। आचार्यजी ने अत्तिमब्बे को कलियुग की जिनेन्द्र-जननी कहकर मन ही मन यशोगान किया। आश्रम में जितनी ताड़पत्री पुस्तकें थीं सबकी एक-एक प्रति रन्न के साथ विजयपुर भेजा। सब ग्रन्थों को सजाकर विजयपुर के एक पुस्तक भण्डार खोला। अत्तिमब्बे के अमृत हस्त से उसका उद्घाटन समारोह सम्पन्न हुआ। हजारों ताड़पत्रों के ग्रन्थ देखकर अत्तिमब्बे अत्यन्त प्रसन्न हुई।

''रन्न! देश का सौभाग्य इन्हीं ग्रन्थों से है।''

अत्तिमब्बे ने सौभाग्य की कलापूर्ण व्याख्या सुना दी।

''माताजी! आप हमारे देश की शारदा माता हैं। आप जैसे महत्त्वाकांक्षिणी, युग-युग में एक ही क्यों न मिलें कर्नाटक कृतकृत्य हो जाएगा। कन्नड़ भाषा का सुहाग अत्तिमब्बे के अवतार पर निर्भर है।''

रन्न की बातों में भावुकता टपक रही थी।

''तात! केवल अत्तिमब्बे के जन्म लेने से ही क्या होगा ? तुम्हारे जैसे तरुण कन्नड़ भाषा प्रेम से पागल होकर कवि चक्रवर्ती बनने का स्वप्न देखने लगें तो कुछ संभावना अधिक है। हम केवल मार्ग को स्वच्छ एवं स्वस्थ रख सकेंगी। कवि के रस प्रवाह में कहीं से कुछ गंदगी न आने पावे इतना हम देख लेंगी। वातावरण को स्वच्छ रखना हमारा कर्तव्य है। हम चाहती हैं कि हजारों क्यों, लाखों कवि चक्रवर्तियों का जन्म यहाँ हो। गुंडुमब्बे ने जिनबिम्बों के सम्बन्ध में जो मेरी कल्पना थी, उसे पूर्ण कर दिया। तुम कविचक्रवर्ती बनकर काव्य रत्नों का निर्माण करो। उनमें से प्रत्येक की सहस्रों प्रतियाँ बनवाकर मैं बाँट देना चाहती हूँ।''

इस प्रकार अत्तिमब्बे ने अपनी कल्पना के दूसरे पहलू को भी स्पष्ट कर दिया।

''माताजी! आपको क्या कहने से फबेगा। आप बात-बात में हजारों की ही चर्चा किया करती हैं। आप अवश्य हजार मुख वाली शारदा हैं। आप सहस्र लोचनवती वीणा-वाणी हैं। आप सहस्र भुजाओं वाली सरस्वती हैं।''

''रन्न! तुम्हारी प्रतिभा मेरे यशोगान में ही समाप्त न हो। याद रहे पंपदेव के बाद पोन्न! और पोन्न के बाद रन्न को वह स्थान लेना है।''

कहकर रन्न को खूब चुनौती दी और प्रोत्साहित किया।

''अत्ति, कहो मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ कोई इच्छा हो तो बताओ बेटी।''

कहकर उस गर्भिणी को अब्बकब्बे ने आश्वासन दिया। अब्बकब्बे की बात सुनकर अत्तिमब्बे ने उत्तर दिया - ''माताजी! आशा अभिलाषाओं की क्या कमी है ? सैंकड़ों उठती रहतीं हैं। उन्हें सुनाऊँ तो शायद मुझे पागल मानने लगेंगी।''

सीमंतन-संस्कार में आई हुई अत्तिमब्बे का संकोच पूर्ण उत्तर माताजी ने सुना। उस समारोह में सम्मिलित होने के लिए चामुण्डराय की मातृश्री काललला देवी भी पधारी थीं।

''अत्ति! संकोच क्यों करती हो ? क्या हमारे रहते हुए भी तुम्हारी इच्छा पूर्ण न होने पावेगी ? बताओ बेटी।'' काललला देवी ने आश्वासन दिया।

''मामी! सब लोग मुझे पागल ही समझते हैं। मेरी गुंडू मेरे अंतःकरण की बात समझ सकी है।'' अत्तिमब्बे ने उत्तर दिया।

''ऐसी बात है। बेटी सुनूँ तो तुम क्या चाहती हो ? मैं राव की माँ हूँ - जो चाहे तुम्हारी इच्छा हो, चाहे जितनी बड़ी हो, मैं पूरा कर दूँगी।''

''मामी एक हजार अच्छी-अच्छी गाभिन गायों का मैं गरीब गर्भवतियों को दान करना चाहती हूँ।''

अत्तिमब्बे की बात काटकर अब्बकब्बे ने कहा - ''जी! आपने सुना ? कौन इसकी इच्छा पूर्ण कर पायेगा ? नर मनुष्य के बूते कि बात करती ही नहीं। ऐसे ही मानव शक्ति के परे की बातें इसको सूझा करती हैं।''

ऐसा कहकर अब्बकब्बे हँस पड़ी।

''अब्बकब्बे! साधारण बूते की बात यह नहीं है, मैं मानती हूँ। पर इस की इच्छा सुनकर संतुष्ट होना चाहिए। सोचना चाहिए कि यह भी सौभाग्य की ही

बात है। ऐसी-ऐसी महान् आशा अभिलाषाएँ ऐरे गैरों के मन में जाग नहीं सकतीं। समझी ?''

कहकर अत्तिमब्बे से कहा - ''बेटी! मैं तुम्हारी आशा पूर्ण करूँगी। कल एक हजार गाभिन गायों को यहाँ जमा किया जायेगा।''

अत्तिमब्बे ने सोचा कि काललला देवी की उदारता ही बोल उठी है। फिर अब्बकब्बे को सम्बोधन करके काललादेवी ने कहा - ''सुन अब्बे! एक हजार गर्भिणी सुहागिनों को तुम न्योता दो। इतना भी कर सकोगी या नहीं ? मेरी इस लाड़ली की आशा आकांक्षाओं को बिना समझे तुमने इसे संकोच में डाल रखा है। बेचारी मन मारे रह जाती हैं।''

इस प्रकार सबको एक ही लाठी से हाँक दिया।

विजयपुर की झोपड़ियों में रहने वाले गरीबों को काललादेवी ने प्रीति भोज दिया। उनमें से पता लगा लगाकर एक सहस्र अत्यन्त सुहागिनों को छाँट लिया। उनके लिए एक हजार गाभिन गायों को एकत्रित कर रखा था। दरिद्रता के दल-दल में फँसी उन महिलाओं को उबटन लगाकर नहलाया। नए-नए वस्त्रों आदि से शृंगार किया। चमेली का तेल लगाकर बालों को सँवारा, जूड़ा बाँधा और सबके जूड़ों में फूल पिरोए गए। ऐसा लग रहा था मानों दरिद्रता की कमर तोड़ डालने का ही प्रबन्ध हुआ हो। जो सुहागिनें दरिद्र गृहलक्ष्मी-सी लग रही थी अब भाग्यलक्ष्मी बनकर बैठी थीं। अत्तिमब्बे ने इन साध्वियों के पास स्वयं जाकर उनसे कुशल प्रश्न किया। सबके वैयक्तिक कष्ट-सुखादि जान लिया। एक-एक करके उनको अपने पास बुलाया और चाँदी की नकेल और सोने की सींगवाली एक-एक गाय को उसे दान दिया।

यह थी अत्तिमब्बे की इच्छा। इस रूप में पूर्ण किया काललादेवी ने।

यह एक अभूतपूर्व महोत्सव था। चार दिन के बाद अजितसेनाचार्य जी अपने सैंकड़ों मुनि-शिष्यों को साथ लिए विजयपुर आए। अत्तिमब्बे ने सबको भक्तिपूर्वक नमस्कार किया। इन जंगम जिनेन्द्रों को आँख भर देखा; संतृप्त हुई। आनंद भार से थकी हुई सी सिर झुकाए उनके सम्मुख बैठ गई।

''बेटी! तुम्हारी एक-एक लोकोत्तर अभिलाषाओं का विवरण रत्न से जाना है। ऐसी उदार आत्मा को देखने की प्रबल इच्छा हुई। स्वयं चला आया। मुझ वैरागी से तुम्हारी कोई इच्छा पूर्ण हो सकती हो तो बताओ बेटी, संकोच मत

करो।'' अजितसेनाचार्य की वाणी वात्सल्य से बनी हुई थी।

''एक इच्छा है। एक हजार जिन-मुनियों को आहार दान सेवा चाहती हूँ। सो भी एक साथ।''

अत्तिमब्बे की यह बात सुनकर अवाक् रह गए।

''अत्तिमब्बे! तुम सचमुच मूर्तिमयी मोक्ष-लक्ष्मी हो जो इस धरातल पर भूले भटके उतर आई है। तुम ही सहस्र नेत्रा, सहस्र वंदना, सहस्र हस्ता, सहस्र कर्णा और सहस्र रसना हो।''

इस प्रकार अत्तिमब्बे का यशोगान करके अजितसेनाचार्य जी ने अज्ञात रूप से स्थित जैन तपस्वियों को कहलवा भेजा। विजयपुर में अजितसेनाचार्य जी के दर्शन के लिए कोने से जैनमुनि चले आए। अत्तिमब्बे की आशालता मानो लहलहा उठी। हजार से भी अधिक मुनियों को एक ही छप्पर के नीचे शास्त्रोक्त विधि से अन्नदान दिया। वह कितना अद्‌भुत दृश्य था। लग रहा था सिद्धलोक इस धरातल पर उतर आया हो। अत्तिमब्बे की आशा पूर्ण हुई। इस अन्नदान महापर्व में सहस्र मुनियों के बीच में अत्तिमब्बे इस स्फूर्ति के साथ-साथ बँटा रही थी मानों हवा में पर लगे हों। इस प्रकार भरसक इस पुण्य कार्य में दैहिक श्रम उठाकर भी वह नहीं थकी। पुण्य भाजन बनकर विराजमान हुई। प्रशांतचित्त की प्रसन्नता मुख मण्डल की शोभा बढ़ा रही थी।

''अत्तिमब्बे! तुम्हारी मनःकामनाएँ सफल होंगी। वह काल दूर नहीं है जबकि तुम औरों की सहायता लिए बिना ही हजार जिनालय बनवाओगी। खुद ही सहस्र जिनबिम्बों का प्रतिष्ठापन कराओगी, सहस्रों ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ बनवाकर दान दोगी। अधिक क्या कहूँ तुम ही कर्नाटक की कल्पलता हो।''

कहकर अजितसेनाचार्यजी ने मुक्त कंठ से उसका यशोगान किया। आचार्यजी बंकापुर चले गए। जिस प्रकार काव्य में रसाभिव्यक्ति में पोषक बनकर अलंकारादि आते हैं और रस निष्पत्ति के साथ ही सहृदयों के ध्यान से ओझल हो जाते हैं, इसी प्रकार अजितसेनाचार्य के साथ जिन-मुनि-वृन्द आया और अत्तिमब्बे की महत्त्वाकांक्षा के पूर्ण होते ही अपने-अपने स्थान पर चला गया।

''ओहो! अहोभाग्य है! अचानक आज इन अप्सराओं का शुभागमन हो रहा है। प्रायः आज इस भक्त पर कृपा दृष्टि पड़ी।''

ये नागदेव के वचन थे। अपनी पत्नियों को अपनी ओर आते देखा तो प्रेम

विह्वल हो बोल उठा था। ''जी हाँ! आज देवराज के दर्शनार्थ आयी हैं।''

अत्तिमब्बे ने मनोहर उत्तर दिया।

''औदार्य मूर्ति का स्वागत करता हूँ। कल्पलता का स्वागत है। क्या तुम्हीं ने संसार की दरिद्रता की कमर तोड़ देने का संकल्प किया है ? बड़ा उत्तम विचार है। खेद की बात यह है कि इस लोकोपकार की धुन में इस अपाहिज को भूल गई। यह बेचारा इस कारण से सूखते जा रहा है।'' नागदेव ने परिहास्य किया।

''दिया तले अँधेरा होता ही है।'' गुंडुमब्बे ने उत्तर दिया।

''क्या देवराज के दर्शन के लिए आयी हो ?''

नागदेव ने अत्तिमब्बे से प्रश्न किया। ''जी हाँ।'' दोनों ने उत्तर दिया।

''कब से हम देवराज माने जाते हैं ?'' कुतूहलवश पूछा।

''जब हम अप्सरा बनीं तभी से।'' उन दोनों का उत्तर था।

''ऐसी बात है! समझा!! तुम देवांगना हो तो मैं देवराज बनूँगा। यदि तुम कामधेनु बनो तो हमारी क्या दशा होगी ?''

हँसते-हँसते जिज्ञासा की। ''आप ही जानते हैं।'' मुस्कुराकर अत्तिमब्बे बोली। ''क्या तुम कामधेनु और हम काम-वृषभ होंगे ?'' फिर मुस्कुराया।

''देखिए, यों उपमा से खींचा-तानी नहीं करनी चाहिए।''

अत्तिमब्बे बोली।

''खैर! आओ देवियों। तुम उपमातीत हो।'' नागदेव ने स्वागत किया।

''हम भले ही उपमातीत न हों आपकी मनोनीता तो अवश्य हैं।''

''रानी! इस जन के योग्य कुछ सेवा की आज्ञा हो।''

कातरता का अभिनय करते हुए बात बदलकर पूछा।

''अभी जो सेवा की है वह क्या कम है ?''

कौन-सी सेवा हुई है ? अनजाने से तर्क किया। ''क्यों हृदयेश्वर! कुछ नहीं है ?''

''हमारी समझ में तो कुछ भी नहीं किया है। गुंडुमब्बे ने तुम्हारे लिए सिद्धलोक का निर्माण संसार पर कर दिया, जिसे देखकर हम दंग रह गए। काललादेवी ने लाखों स्वर्ण-मुद्राओं को पानी की तरह खर्च किया। हमारा वह

लड़का रत्न, उसने तो सरस्वती का भण्डार ही खोलकर तुम्हारी मनोकामना परिपूर्ण की। तुम्हारी इच्छा के अनुरूप सहस्रों मुनिवृन्द का अन्नदान भी हुआ। हमारे लिए प्रायः कुछ भी नहीं बचा होगा।''

कह नागदेव मुस्कुराए।

''यह सारी बातें सही हैं। ये सब आपकी कृपा पर ही तो संभव हुआ। उसके पूरक के रूप में ये सब महाकार्य हुए हैं।'' अत्तिमब्बे ने स्पष्ट किया।

''अत्ति! तुम्हारी बातें पहेली सी लगती हैं। यह बड़ा गंवार है; इस जन से पहेली बुझौव्वल क्या संभव है ? जो कुछ कहना हो सीधे कहो तो कुछ समझें।''

ऐसा नागदेव कह ही रहा था कि गुंडुमब्बे इनके संभाषण में सम्मिलित हुई।

''गुंडू! सुना न ? तुम्हारी बहिन कहती है कि मैंने उस पर बड़ी कृपा की है, जिससे यह सब हो सका। मेरी समझ में नहीं आता कि वह कौन-सी कृपा है। यदि तुम जानो तो कहो।'' आश्चर्य व्यक्त किया। ''क्या बात है जीजी ?''

''आप मेरे लिए कुछ करना चाहते हैं। चाहते हैं कि कुछ कहूँ। पर मैंने कहा कि अब तक आप जो कर चुके हैं वही पर्याप्त है। इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए। मेरा उत्तर सही है न ?''

अत्तिमब्बे बोली और मुस्कुराई।

''ठीक तो है प्राणेश्वर! आपसे मेरी बहिन का बड़ा उपकार हुआ है। आपके अनुग्रह से ही उसका सम्मान बढ़ सकता है।''

ऐसा कहकर गुंडुमब्बे भी मुस्कुराई।

''ओहो, यह बात है। अनुग्रह से तुम्हारा मतलब समझ लिया। गुंडू, क्या तुम भी अनुग्रह चाहती हो ? तुम्हारा भी सम्मान बढ़े।'' नागदेव हँस पड़े।

''पहले मेरी बहिन को आपकी गोद में अपनी भेंट चढ़ाने का मौका दीजिए, तब विचार करें। बाद को हम अपनी बात सोचें।''

''बहिन, रहने दो ये बातें, अब बताओ और क्या इच्छा है ?''

''गुंडू! एक बार शस्त्रागार देखने की बड़ी इच्छा हो रही है। क्या आप दिखा देंगे ?'' नागदेव से प्रार्थना की।

''चलो, यह कौन बड़ी बात है।''

कहकर दोनों देवियों को साथ लिए सीधे शस्त्रागार आ खड़े हुए। वहाँ हजारों तेज तलवारें थीं। उनकी चमक चकाचौंध कर देती थी। अत्तिमब्बे ने एक हाथ में लेकर उंगली से धार की जाँच की। उसको कमान से झुकाकर परीक्षा ली। क्षणभर नागदेव और गुंडुमब्बे ने तलवार चलाकर वीर रस का दृश्य सजाया। तलवारें चंचला-सी चमक रही थीं। बिजली से टूटकर गिरती थीं। इनकी नाना भंगियाँ देखकर अत्तिमब्बे चमत्कृत रह गई।

मृत्यु देवता की जीभ-सी लगने वाली तलवारों को यथास्थान रखा। तब भालों पर अत्तिमब्बे की दृष्टि गई। उसके इशारे पर नागदेव गुंडुमब्बे के साथ भालों से कुछ देर खेलते रहे। अत्तिमब्बे परीक्षक के समान खड़े-खड़े निरीक्षण करने लगी। ऐसे ही गदा उठाकर नागदेव और गुंडुमब्बे ने भीम, दुर्योधन के गदायुद्ध का अभिनय किया। वहीं स्थित धनुष उठाकर उसकी डोरी बाँध दी और ठकारा। तब ऐसा लगा मानों वीणा का तार सहसा टूटा हो। ऐसे ही शस्त्रागार के नए-नए शस्त्रास्त्रों की परीक्षा करके अत्तिमब्बे हर्ष चित्त हुई।

''अत्ति! समझ गया था कि तुम केवल भावनालोक में विहार करने वाली कामिनी मात्र हो। आज मेरी धारणा गलत निकली। पता चला कि तुम्हारी साहसिकता लुप्त नहीं हुई है। सोच रहा था कि तुम छैल-छबीले को या तो किसी कवि को जन्म दे दोगी।''

नागदेव ने अपने मन की बात कहकर चुटकी ली।

''क्या कहा, मेरी गोद से कोई कवि जन्म लेगा ? धन्य भाग।''

अत्तिमब्बे आनंदित हुई। उसका हर्ष मुख पर अंकित था।

''देखो, तुम्हारी संतान मुझ जैसा पराक्रमी रथिक बनना चाहिए। समझी न ?'' नागदेव ने अपनी इच्छा प्रकट की।

''वह भी हो प्रियतम! मेरा मुन्नू कवि भी हो और कलि (वीर) भी हो।''

अत्तिमब्बे ने कहा।

''क्या कहा कवि और कलि ? अर्थात् वह न केवल कलम का धनी हो बल्कि तलवार का भी धनी बने। खूब, कल्पना बड़ी सुंदर है।''

नागदेव हँसा। प्रायः नागदेव ने सोचा कि ये दोनों गुण कभी एक में नहीं रह सकते।

''क्यों ऐसे शक्की बने ? पंप देव को देखिए। वे क्या महाकवि और महा–पराक्रमी दोनों नहीं हैं ? कवि होने से यह निर्बंध नहीं कि वह सदा कलम ही घिसता रहे।''

''और एक बात प्राचीन कवियों के काव्यों का रसास्वादन करने वाले सहृदय भी एक अर्थ में कवि कहे जा सकते हैं। उदाहरण के लिए आप ही को लें और मेरी जीजी है जो हजार–हजार प्रतियाँ एक–एक काव्य की बनवाकर बाँटना चाहती है। वह किसी कवि की कल्पना से कम है ? कवि को महा सौध कहें तो प्रकाशक उन सौधों की नींव है और सहृदय समूह उन सौधों के कलश हैं। आप दोनों कवियों के आश्रयदाता हैं। इस पर बड़े सहृदय हैं और काव्य रस रसिक हैं। कवि, प्रकाशक और सहृदय तीनों सारस्वत लोक के रत्नत्रय होते हैं। रस प्रवाह का त्रिवेणी संगम है।''

इस प्रकार गुंडुमब्बे ने भावावेश में आकर कवि शब्द की व्याख्या की।

''तब तो मैं अपने को आइंदा महाकवि कहने लगूँ तो क्या हर्ज है ?''

कहते हुए नागदेव ने अपनी पीठ ठोंक लिया। क्यों नहीं ?

गुंडुमब्बे ने हँसकर जबाव दिया।

उसकी हँसी में हँसी मिलाते हुए नागदेव बोले – ''पर एक बात। मैं रनवास का महाकवि हूँ। किसी राज दरबार का नहीं।''

''ठीक तो है प्राणनाथ! गुंडू मुझसे बड़ी चालाक है।'' अत्तिमब्बे ने कहा।

''जीजी! तुम चाँद हो तो मैं सागर हूँ – समझी।'' गुंडुमब्बे ने स्पष्ट किया। ''तब, तुम दोनों देवियों के बीच मेरा कोई स्थान नहीं ?''

नागदेव ने घबराए हुए से संशय व्यक्त किया।

आपका स्थान ? वह तो यहाँ है ?

गुंडुमब्बे अपने हृदय की ओर दिखाते हुए हँस पड़ी।

''मेरी बात सुनो। तुम सागर हो और अत्ति चन्द्र, पर मैं क्या कहूँ।''

''तुम ? सागर में तरंग और चन्द्र में चंद्रिका।''

गुंडुमब्बे ने मुस्कुराकर उत्तर दिया।

''गुंडू! तुम्हारी यह उपमा ठीक नहीं बैठती है।''

नागदेव ने आक्षेप उठाया।

''कोई अच्छी उपमा हो तो महाकवि ही बता दें।''

दोनों देवियों के मुँह से सहसा निकल पड़ा।

''तब धन्य भाग! तुम दोनों ने मुझे महाकवि मान लिया है। महाराजा ने भी मुझे बड़ा वीर माना है तो मैं वीर महाकवि हूँ।''

नागदेव ने गंभीर स्वर में कहते हुए सिर हिलाया।

''पर आपकी उपमा तो धरी रह गई।'' अत्तिमब्बे ने छेड़ा।

''अच्छा! अत्ति! भूल गया था। क्या कहा था गुंडू ने ? तुमको चाँद न ? तुम चन्द्र हो तो मैं कंद हूँ और गुंडू सागर हो तो मैं गागर हूँ।''

अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे दोनों हँस पड़ी।

विजयपुर में बड़ी धूम थी। दल्लप का महल मानों जच्चाखाना बना था। सभी स्त्रियाँ अपने नन्हें-नन्हें बच्चों को कंधों पर सुलाकर, खास उस महोत्सव के लिए बने हरे चप्पर में बैठ गई थीं। चप्पर के बीचोंबीच चाँदी की जंजीरों से लटके हुए सोने के डोले में अत्तिमब्बे का बच्चा सुलाया गया था। नामकरण संस्कार का महोत्सव था।

''वाह रे बच्चा! जन्म से ही तू इतना उदार और मिलनसार। तभी तो समवयस्क बच्चों को बुला लिया है।''

सभी निमंत्रितों को प्रीतिभोज दिया गया। सब बच्चों को एक बाँस की डोली, सोने की चमसी, चाँदी का प्याला दिया गया। प्रत्येक माँ अपनी-अपनी संतान गोद में लिए अत्तिमब्बे को देखने आईं और उसके बेटे को आशीष दिया। बच्चों को ऊनीं ओढ़नी और मखमली दरी देखकर अत्तिमब्बे ने कृतज्ञता प्रकट की। साथ ही साथ प्रत्येक साध्वी के आँचल को मुट्ठी भर सोने की मुहरों से भरकर विदाई दी।

''माँ, तुम सचमुच इन शिशुओं की माँ हो। तुम्हारी गोद सदा भरी रहे। तुम्हारी सौ संतान हों और सौ-सौ साल तक जियें। तुम्हारी संतान भी तुम जैसी कल्पलता बनें।''

वे संतुष्ट होकर ऐसे आशीर्वाद देतीं और बिदा लेतीं। अत्तिमब्बे सबसे मिलकर प्रीति से कहती - ''देखो बहिन, तुम अपना स्वास्थ संभालो। बच्चे को

कुछ कष्ट होने न दो। निस्संकोच तुम मुझसे जब चाहे आकर मदद ले लो। इन दो-तीन महिनों में घी आदि की कमी नहीं होनी चाहिए, समझी न ? कुछ कमी हो तो कहलवा भेजो। कम से कम कष्ट में इन बहिन को याद करना। ऐसा कहकर बिदा करती थीं।''

ऐसी ममतामयी बात सुनकर स्त्रियों का हृदय आनंद से भर उठा।

''तुम सचमुच देवी हो देवी। गरीबों से कौन सहानुभूति दिखाता है और उनका दुःख दर्द सुनता है ? माँ, जब से तुम्हारी गोद भरी तब से इस नगर में गरीबी की कमर टूट गई है। तुम्हारा बेटा राजा बने। हमारा कष्ट सदा के लिए मिट गया है।''

घर लौट जाते-जाते स्त्रियाँ आपस में बोलने लगीं - ''अत्तिमब्बे बड़ी तपस्विनी है। सुनते हैं कि इसे द्रौपदी का अक्षयपात्र मिला है। नहीं तो कहाँ से इतने लोगों को देने के लिए इतना धन आता ? दोनों हाथों से उलीचती जाती हैं। खैर हम गरीबों का आखिर दो जून खाना और तन ढाँकने को कपड़ा मिले तो बस। चाहे तो अक्षयपात्र वे अपने पास ही रख लें। सिंहासन उन्हीं का रहे। छत्र, चँवर आदि भी उन्हीं का हो। हमारे लिए तो सूखा खाना और कोरा कपड़ा भर मिले तो पर्याप्त है।''

एक ने कहा। किसी दूसरी ने कहा - ''सुनते हैं कि प्रतिदिन अत्तिमब्बे जी पूजा किया करती हैं और प्रार्थना करती हैं कि गरीबों का कष्ट दूर हो। तब उठकर पारिजात वृक्ष को हिलाती हैं तब वहाँ फूलों के बदले सोने की झड़ी लगती है! सच!''

भला किससे सुना यह किस्सा ? और एक ने कुतूहल से जिज्ञासा की।

''मेरी पड़ोसिन इनके यहाँ नौकरानी हैं। परसों उसी ने कहा था। सुनते हैं कि कभी-कभी वह सिद्धलोक जाती हैं। सच! एक बार उसे भी अपने साथ सिद्धलोक ले गई थी।''

अपनी बात का जोरदार शब्दों में समर्थन कर लिया।

''अत्तिमब्बे का बच्चा आगे चलकर हमारा राजा होगा। अभी से अपनी सेना जुटाने लगा है। आज जितने बच्चे यहाँ आए थे, वे आगे चलकर अपनी-अपनी योग्यता के मुताबिक कोई मंत्री, कोई अमात्य, कोई अधिकारी बनेंगे। मैंने तो अपने मुन्ने का सिर उसके चरणों में लगवा दिया। कौन जाने भविष्य के गर्भ में

क्या-क्या छिपा पड़ा रहता है ?''

एक ने अपने बच्चे के भविष्य का स्वप्न देखने का प्रयत्न किया।

''एक बात तो बहिन, तुमने ठीक कही। अवश्य यह राजा बनेगा। मेरी तो यही प्रार्थना है कि वह दिन जल्दी आवे। जन्म लेते-लेते जो गरीबों की सुध लेने वाला हो, वह क्या राजा बनने पर किसी को भूलेगा ? अभी देखो बरसों तक हम आराम से रह सकती हैं। उन्हीं की दी गई गाय हैं! कपड़ा है। काफी धनराशि भी मिली है। अब चैन की बंशी बजती रहेगी।''

''अरे पगली! यह चैन की बंशी कितने दिनों तक बज सकेगी ? कुछ सोचा है ?'' और एक ने छेड़ा। ''क्यों दूसरा बच्चा होने तक ही सही।''

दूसरी ने उत्तर दिया।

''पगली कहीं की, कितने दिनों तक ? यों क्यों पूछती हो ? नकद जो कुछ मिला है उससे साल दो साल तो कट ही जाएँगे और तब यह सोने की चमसी बेचा जाए तो और कुछ दिन काट सकेंगे। इस गाय को भी बेच डालें तो और कुछ दिन चलेगा। फिर वहीं जाने का मौका मिलेगा जहाँ से यह अब मिले। ऐसे सौ-सौ मौका मिला करें। हम गरीबों के भाग्य में खाली हाथ रहना क्यों न हो पर उनका घर फूले फले और सदा भरा रहे।''

सबने इसका अनुमोदन किया।

अत्तिमब्बे के पुत्र का नाम अण्णिगदेव रखा गया। सुहागिनियों ने बच्चे को गोद में उठाकर प्यार से एक-एक अंग का चुम्मा लिया और पुचकारा। वह मानों मर्त्यलोक की ममता देख किलकारियाँ भरने लगा।

''मुन्नू! तू अभी से किलकारियाँ करता है ? क्यों ?''

एक ने बलैय्या ली।

''मानों यह साक्षात् जिनबिम्ब है। अभी-अभी इस लोक में आया। आते ही उसने कितनी धूम मचाई है। बेटी, पुराणों में गर्भावतरण और जन्मावतरण का वर्णन सुना था। अब इसने सब कुछ करके दिखला दिया।''

यह सुनकर अत्तिमब्बे ने प्रसन्न होकर कहा -''यह सब आपकी कृपा है।''

''अरे बेटे! अभी से घर में ऐसी लूट मचायी है। न जाने आगे क्या कर बैठेगा।'' एक ने प्यार में उसका चुम्मा लिया।

बच्चे का हाथ उस समय उस महिला के कंठहार से लगा। उसे बच्चे ने पकड़ लिया। तब शिकायत के स्वर में अत्तिमब्बे से बोली – ''देखो बेटी! यह अभी से मेरे कंठहार छीन लेना चाहता है। ले.... कहती हुई उसे बच्चे के गले में पहना दिया।'' अत्तिमब्बे मना करती रह गई।

''देखो बेटी! तेरा यह नन्हा देना भी जानता है और लेना भी।''

और एक ने कहा और अत्तिमब्बे को हँसाया।

''हाँ, माँ को पड़ा है न यह। पर रंग बाप का ही है।''

''पर मैं समझती हूँ कि नाक दादी की–सी है।''

''यह पैर, हाँ हाँ, दादाजी का ही है।''

इस प्रकार बच्चे के वर्णन में कई सुहागिनें लग गई थीं।

''देखा दादी! तुम्हारा यह लाड़ला स्त्रियों के गले पर अभी से हाथ धरता है।''

एक बूढ़ी महिला ने पद्मब्बे से कहा। पद्मब्बे ने क्रोध का अभिनय करते हुए डाँटा – ''तुम किसे दादी कहती हो ? देखों मेरे दांत गिरे नहीं हैं ? मेरी कमर सीधी है ?''

''जाने दो दादी। जब बहू ने बेटे को जन्मा तभी से तुम दादी बन गई। तुम्हारे दांत और कमर की बात रहने दो। क्या अब नवेली बन सकोगी ?''

पहली स्त्री ने अपनी बातों का समर्थन किया।

''खैर, मैं अपने मुन्नू की दादी हूँ। दुनियाँ भर की दादी थोड़े ही हूँ।''

पद्मब्बे ने उसी धुन में कहा।

''रहने दो दादी। तुम्हारे मुन्नू से ही पूछ लें। ऐसा कहती हुई बच्चे को गोद में लेने गई तो उसने सहज ही पैर उछाल दिया।''

मानों गोद लेने वाली को लात जमा दी।

''हाय रे बाप! यह देख, मुझे लात मारता है।'' वह बोल उठी।

''देखो, तुम लोगों का मुझे दादी कहना यह पसंद नहीं करता। समझी ? मैं केवल मेरे इस मुन्नू की दादी हूँ। अकेले मुन्नू की।''

पद्मब्बे इसे गोद में लेकर इठलाने लगी।

''ठीक है, अब अकेले मुन्नू की दादी हो और'' एक ने छेड़ा।

''तुम बड़ी चुड़ैल हो।''

पद्मब्बे ने उसे डाँटते हुए बच्चे को डोली में सुलाकर डोरी पकड़ने का प्रयत्न किया। ''सबने बच्चे को बारी-बारी से झुलाया।''

अण्णिगदेव को भेंट के रूप में ढेर के ढेर सोने या चाँदी के कटोरे, तश्तरी, प्याले कंगन खिलौने आदि आये। जैसे यात्रार्थी अपने आराध्य के सम्मुख अपनी गाढ़ी कमाई न्यौछावर कर जाते हैं, उसी प्रकार अण्णिगदेव के सम्मुख सब की भेंटों की बौछार होने लगी। कपड़े लत्तों की बात कौन कहे ? नगर भर के लड़कों में बाँटने पर भी काफी मात्रा में वह बच जाता। सोने के न जाने कितने हिंडौले भेंट में आए। राजा-महाराजाओं की ओर से भी हैसियत के मुताबिक भेंट आई थीं।

अत्तिमब्बे को कहीं बेहद थकावट न हो यह सोचकर गुंडुमब्बे उसके स्थान में आकर बैठ गई और अत्तिमब्बे को आराम लेने बिदा किया। पर यह रहस्य किसी की समझ में नहीं आया। पूर्ववत् आनंदोत्सव चलता रहा।

सभी जिनालयों में विशेष पूजा-पाठ हुआ। बच्चे का जन्म दिन हुआ उस दिन से पंचकल्याणक आदि महोत्सव मनाए गए और जिनमूर्तियों की स्थापना कराई गई। अण्णिगदेव का तुला-भार सोने से कराया और दस-एक मंदिरों को उसके वजन भर सोना भेंट किया। इतना करने पर भी सम्पत्ति जरा भी कम नहीं हुई भला जहाँ यह देने पर दो-दो आवें तो घाटा कैसे हो ?

अण्णिग के जन्मोत्सव पर दल्लप ने लाखों खर्च किया। दोनों हाथों लुटा दिया। पर नामकरण के अवसर पर भेंट के रूप में दुगुना जमा हो गया। महासागर हमेशा उदार होता है। मेघों के द्वारा अपनी संचित जलराशि को घर-घर, गली-गली, नगर-डगर ले जाकर बरसा देता है। इस बहाने सारे संसार को सुख-शान्ति का संदेश भेज देता है। पर कुछ दिनों में सारा जल इधर-उधर बहते भटकते अंत में उसी सागर में आ समाता है।

अत्तिमब्बे साक्षात् उदारता की पुतली थी। उसका तो राजयोग था। जहाँ लोभ का नाम नहीं था; सम्पत्ति की कमी नहीं थी। जहाँ लोभ नहीं सम्पत्ति नाना भाँति की रहती है; यह बात चरितार्थ हुई थी।

❑❑❑

9.

दसवीं सदी के प्रारम्भ में चालुक्य राष्ट्रकूट के अधीन थे। राष्ट्रकूट और गंग परस्पर सहयोग रखते आए थे। अतएव दोनों की श्रीवृद्धि हो रही थी। गंगवंशज मारसिंह मानों शत्रुओं के लिए सिंह ही था। उसका अमात्य था चामुण्डराय। यही सेनाधिपति भी था। 'इसे समर-परशुराम'और 'अरिभयंकर' आदि कहा करते थे। राष्ट्रकूटों का कर्क स्वयं दुर्बल था। अतएव गंगों के कृपा-बल पर राज्य करता था।

यद्यपि राष्ट्रकूट और चालुक्यों में नाता-रिश्ता था, फिर भी कभी-कभी आपस में संघर्ष भी कर बैठते थे। अरिकेसरी द्वितीय के जमाने में राष्ट्रकूटों में परस्पर फूट पैदा हुई। गोज्जिग ने अपने बड़े भाई को सिंहासन से उतार दिया और स्वयं राजा बन बैठा। वह प्रजा पीड़क बनकर कुख्यात हुआ। तब अरिकेसरी द्वितीय ने विवश होकर गोज्जिग पर धावा किया और उसे हराया। राष्ट्रकूट साम्राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में गोज्जिग के चाचा बद्देग को अभिषिक्त किया। तभी से अरिकेसरी राष्ट्रकूट साम्राज्य सुभद्र था, पर जब कृष्ण का पुत्र सिंहासन पर बैठा तो साम्राज्य में विघटनकारी शक्तियाँ बल पकड़ती गईं। परिणामतः राष्ट्रकूट और चालुक्यों के बीच साम्राज्य की सीमा में कभी-कभी संघर्ष होने लगा।

तैलप के हितैषियों ने सलाह दी -''स्वामिन्! आप जितना सतर्क रहें उतना कम है। राष्ट्रकूट जैन हैं और आपके सचिव और सेनाधिप भी जैन हैं। अब लड़ाई में कहीं धोखा दे बैठें तो बड़ा अनर्थ होगा। सर्वनाश हो जायेगा।''

उसके उत्तर में तैलप ने कहा था -''किसके बारे में यह कह रहे हैं ? और किससे ? चालुक्य साम्राज्य की नींव किसने डाली ? हम यद्यपि इसके शासक हैं पर सोचिए इस साम्राज्य का हाल उनके हाथ में अब तक सुरक्षित रहा है। अब तक हमने कभी जैन धर्मावलंबियों में राष्ट्रदोह की गंध तक नहीं पायी है। अपने धर्म के प्रति आस्था रखते हैं तो योग्य ही है। केवल इस नाते उन पर संदेह नहीं करना चाहिए। आप अपनी बात मन में ही रखे रहिए। किसी के सामने कहने का साहस न कीजिएगा।''

इधर मंत्रालोचन करने के निमित्त दल्लप और मल्लप को कहलवा भेजा

और वे तुरंत आ उपस्थित हुए।

''अब राष्ट्रकूटों से युद्ध अनिवार्य बना है। आप में से एक पर राजधानी की रक्षा का भार होगा। दूसरे को रण क्षेत्र का भार संभालना पड़ेगा।''

तैलप ने अपना आदेश सुनाया।

''श्रीमान जी! यदि आप अन्यथा न मानें तो मैं अपने मन की बात कह देना चाहता हूँ।''

दल्लप ने बड़े संकोच से प्रार्थना की।

''दल्लप जी! आप यद्यपि सचिव हैं, पर हमने सदा आपकी वय और अनुभव देखकर अपने पितृ-तुल्य ही माना है। आप अपने विचार निस्संकोच कह सकते हैं।''

''प्रभो! परिस्थिति बड़ी गंभीर और जटिल है। युद्ध में हार हो या जीत, दोनों के लिए तैयार तो रहना पड़ेगा। जय हुई तो कोई बात नहीं, पर कहीं हार गए तो समझिए कि सारा लोक हमें अपराधी ठहराएगा।''

दल्लप की बात बीच में ही रुक गई।

''दल्लप जी, कहिए। आप अपने मन की बात कह डालिए तो।''

तैलप ने व्यग्रता दिखाई।

''अब राज्य के सब पदाधिकारी जैन हैं। सेना मेरे पुत्र के अधीन है। कहीं कुछ हुआ तो हम बदनाम होंगे। सारा जैन-समाज बदनाम होगा। लोग कहने लगेंगे कि जानबूझ कर हम राष्ट्रकूटों से मिले, इस हार में इनका हथकंडा है आदि कह कर निंदा करने लगेंगे। राष्ट्रकूट भी जैन हैं और उनके सहायक गंग भी जैन हैं। उनसे युद्ध करने मुझे मेरे पुत्र को ही जाना होगा। हम भी जैन हैं। अतएव आप कुछ दिनों के लिए सचिव एवं सेनापति पद से जैनों को निवृत्त कर दीजिए। इस प्रकार प्रभो हमको बदनाम होने से बचाइए।''

दल्लप ने साग्रह प्रार्थना की। ''मल्लप जी, आप अपना मत बताइए।''

तैलप ने उनकी तरफ मुड़कर उनका भाव ताड़ने के लिए पैनी दृष्टि से देखा।

''प्रभो! आप जानते हैं कि मेरे भाई ने आपके लिए प्राण-त्याग दिया है। मैं और मेरे पुत्र चालुक्य साम्राज्य के सेवक हैं। इतना होते हुए भी परिस्थिति को

देखते हुए कहना होगा कि यह बड़ी नाजुक है। अपने विचार में सब जैन पदाधिकारियों को नजर बंद कर रखना योग्य है। अबकी बार युद्ध की बागडोर अपने हाथ से संभालिए। मानव मन का क्या भरोसा ? कौन जाने कब किस प्रलोभन में आकर वह पलट खायेगा ?''

इस प्रकार मल्लप ने अपनी समझ में अमूल्य सलाह दे दी।

''आप दोनों समधी हैं न ? बड़े सचिवोत्तम हैं। बड़ी योग्य सलाह है! धन्य भाग्य!''

कहकर तैलप ठठाकर हँस पड़े। फिर बेचैनी से उठ खड़े हुए और बोले- ''दल्लप जी, हमने पहले ही कहा है कि आप हमारे लिए पितृ-तुल्य हैं, आप ही ने हमारा पालन-पोषण किया है। दल्लप जी समझिए कि आप हमारे चाचा हैं, आपके पुत्र नागदेव हमारे चचेरे भाई हैं। अब यदि आप युद्ध करना नहीं चाहते हैं। तो एक काम कीजिए हमीं को कारागृह में ढकेल दीजिए। चालुक्य साम्राज्य लक्ष्मी को राष्ट्रकूटों के साथ सौंप दीजिए। औरों की सहायता से लब्ध होने वाली जयश्री की अपेक्षा, अब तक हमारे आत्मीय रहकर, हमें महाराजा की गद्दी पर बिठाकर, हमारे यश के लिए कारण बने हुए आप लोगों के सम्मिलित होकर धोखा देने पर मिलने वाली हार हमारे लिए श्रेयस्कर है। इस हार को हम अपना अहोभाग्य मानेंगे। अब युद्ध सन्निहित है। हम किसी को भी पदच्युत करना या बदलना नहीं चाहते। बेड़ा आपके हाथ में है। आप धोखा ही देना चाहें तो कौन रोक सकता है ?''

इतना कहकर तैलप व्यग्रता से चले गए।

नागदेव महा साहसी था। एक बार युद्ध के हाथी पर गदा प्रहार करके उसका कुंभस्तल तोड़ डाला था। इस साहस कार्य से प्रसन्न होकर तैलप महाराज ने नागदेव को भरी सभा में 'भट-मल्ल' की उपाधि देकर सम्मानित किया था। कई लड़ाईयों में नागदेव के कारण ही तैलप विजयी बन सके थे।

एक बार की घमासान लड़ाई में एक बात हुई। तैलप की सेना परास्त होकर भागने लगी। तब नागदेव केवल दलपति था। तैलप ने उसे बुलाकर अपनी समस्त सेना का सेनानी बना दिया। नागदेव ने ऐसा साहस दिखाया कि युद्ध का पासा ही पलट गया। वह शत्रुओं को ज्वालामुखी के समान भयंकर लगता था। विपक्षियों की गजसेना जब लड़ाई करने आई तो घड़ी दो घड़ी के अंदर अपने

असीम पराक्रम से उन्हें केले की भाँति काट-काट कर मैदान को पाट दिया था।

उस समय दुश्मनों को लग रहा था कि अब खैरियत नहीं है। भाग जाना भी मुश्किल है। उन्होंने विवश होकर कई मत वाले हाथियों के साथ एक दम हमला किया। वे चिंघाड़ते हुए नागदेव पर झपटे। नागदेव को पकड़ने के लिए वे अपनी सूड़ ऐसे हिला रहे थे मानों कृष्णसर्प चारों ओर से आ घेर रहे हों। नागदेव अग्निपर्वत-सा जाज्वल्यमान था। दोनों हाथ में तलवार लिए उन सूंड़ों को काट-काट कर गिराना शुरु किया। जिस हाथी की सूँड़ कटती वह चिंघाड़ते-चिंघाड़ते अंधाधुंध भागने लगता। आपस में टकराकर गिर पड़ते। गज-सेना की हिम्मत छूट गई। शत्रुओं के छक्के छूट गए। कटी हुई सूँड़ चटपटा रही थीं। लहूलुहान हो गई थीं। नागदेव की तलवारें आग की लपटों के समान चमक रही थीं। कोमर युद्ध में जय-वधू ने तैलप के गले जयमाला पहना दी। तभी प्रसन्न होकर तैलप ने नागदेव को 'दिग्गज' की उपाधि दी और सम्मानित किया।

दिन ब दिन नागदेव की पद-प्रतिष्ठा बढ़ने लगी। पांचाल सेना-सागर के लिए बड़वानल बनकर नागदेव ने विजय प्राप्त की थी। करहट में मल्लप का मुकाबला करके सुभट-त्रिनेत्र बन विराजमान हुआ। नागदेव के चरण-चिह्न देखकर विजय-श्री उसके पीछे-पीछे जाने लगी। नागदेव ने न कभी हिम्मत हारी न कभी हार ही इनके पाले पड़ी।

ऐसे साहसी का समादर करके, स्नेह सम्पादन करके तैलप ने उसका उत्साह बढ़ा दिया था और उसमें राज-भक्ति की जड़ जमा दी थी।

दल्लप और मल्लप दोनों के लिए यह परीक्षा का समय था। राष्ट्रकूट और उसके सहायक गंग दोनों जैन थे; स्वयं जैन होते हुए उनसे लोहा बजाना था। अतएव दोनों ने अपने-अपने पुत्रों को कहलवा भेजा। उनके साथ दोनों ने अलग-अलग विचार किया। उनका अभिमत जानना चाहा।

''पिताजी! युद्ध क्षेत्र में कौन अपना होता है ? यदि इस अवसर पर हम शस्त्र-ग्रहण नहीं करें तो अब तक जो कुछ किया है, सब व्यर्थ हो जायेगा। सच पूछा जाये तो धर्म और राजनीति में गड़बड़ नहीं करनी चाहिए। अब तक हमें आश्रय देकर, पद और प्रतिष्ठा देकर सम्मान किया है तो चालुक्यों ने। भला राष्ट्रकूटों ने हमारे लिए क्या किया है ? अब राष्ट्र-ऋण चुकाने का मौका आया है क्या धर्म के बहाने हम पीछे हट जायें ? तब तो हम न इस घाट के होंगे न उस घाट

के। इस पर दोनों से भ्रष्ट हो जायेंगे। जैनधर्म ने कहाँ राष्ट्रद्रोह करने का आदेश दिया है ? अपने बैरी से डटकर लड़ने का आदेश गृहस्थों को महावीरस्वामी ने दिया है। मैं मर सकता हूँ पर बदनाम नहीं हो सकता। क्या नमक हराम बनकर नारकीय कीड़ा बनूँ ?''

नागदेव ने इस प्रकार अपना अभिमत सुना दिया।

मल्लप के पुत्र भी राष्ट्रनिष्ठा में अद्वितीय थे। राष्ट्र की पुकार पहले सुनी जाये, बाद को और कुछ-इस निश्चय के साथ राष्ट्रकूटों से मुकाबला करने का संकल्प किया गया।

अत्तिमब्बे का पुत्र एक साल का था। अण्णिगदेव घर भर पंखे के जैसे हाथों हाथ आता जाता रहा, कभी दादी की पीठ पर सवार होकर खेलता, कभी नागदेव को देखकर अप्पा-अप्पा कह उसके कंधों पर चढ़ बैठता और ताली बजा-बजाकर किलकारियाँ भरता था। गुंडुमब्बे और अत्तिमब्बे दोनों को माँ कह देता। यह सुनकर लोग हँसते। उसका चलना सबको अच्छा लगता था। दल्लप को देखते ही उसे घोड़ा बनाकर सवारी का खेल खेलता था। दल्लप को झुकना ही पड़ता था। वह पीठ पर सवार हो जाता, पद्मब्बे दौड़े-दौड़े आती और मुन्नू को संभालती ताकि वह लुढ़क नहीं जाये। गुंडुमब्बे और अत्तिमब्बे इस दृश्य को देखकर फूले नहीं समाती थीं, क्योंकि नटखट घोड़े के समान उस समय दल्लप का उछलना और कूदना क्या ही अच्छा लगता था। चालुक्य साम्राज्य के अमात्य और सेनाधिपति अण्णिगदेव का वाहन बनकर खेलते थे।

अण्णिगदेव के जन्म दिन से दल्लप का घर स्वर्ग सदृश बन गया था। सदा हर्षोल्लास की तरंग उठती रहती थी। घर का सर्वाधिकारी मुन्नू बन गया था। मुन्नू के सार्वभौम अधिकार में किसी को हस्तक्षेप करने का हक नहीं था। सच तो है कि बच्चों के साथ खेलते समय चाहे कोई राजा हो या मंत्री अपना व्यक्तिगत स्थान-मान, पद, प्रतिष्ठा आदि भूलकर तन्मयता से खेलने में ही तो आनंद है। इससे बढ़कर घर में सुख-संतोष और क्या होगा ?

एक बार नागदेव पत्नी और पुत्र के साथ उपवन गया, वहाँ बच्चे को पेड़ की छाया में बिठाकर स्वयं पत्नियों के साथ आँख-मिचौली खेलने लगा।

अत्ति! अच्छा होता कि हम बंदर होते तब तो मुन्नू को भी साथ लेकर उछल सकते थे।

नागदेव ने गंभीरता से कहा।

''प्रियतम! क्या इतना-सा सुख पाने के लिए बन्दर बनें ? क्या उसे भी अपने साथ लेकर खेलने की इच्छा है ? क्या भिखारिनों को अपने बच्चों को गोद में लिए फिरते नहीं देखा है ? चाहे तो मैं भी अण्णि को ऐसे ही बाँध के आ जाऊँगी।''

अत्तिमब्बे ने कहा। ''नहीं यों ही कहा।''

नागदेव ने उतना उत्साह नहीं दिखाया।

''प्राणप्यारे! आज आप अनमन क्यों है ? आखिर बात क्या है ?''

गुंडुमब्बे ने कुतूहलवश प्रश्न किया। ध्वनि में ममता और आत्मीयता कूट कूटकर भरी थी।

''ठीक ताड़ा गुंडू! आज एक जटिल समस्या सता रही है।''

नागदेव ने उत्तर दिया। ''समस्या ? जटिल ?''

अत्तिमब्बे ने आश्चर्य से दुहराया। राष्ट्रकूटों से लोहा बजाना है।

संक्षेप में नागदेव ने कह दिया।

''क्या तिमिंगिल भी पानी से डरेगा ?''

गुंडू ने आश्चर्य से प्रकट किया।

''चामुण्डराय का सामना करना है।''

नागदेव ने चिंतित मुद्रा बना ली।

''संधि कर लीजिए।''

अत्तिमब्बे ने सलाह दी।

''यह बात सोची गई। पर बात नहीं बनी। वे लोग मुझे राष्ट्रकूटों का पक्ष लेने के लिए फुसला रहे हैं। जो कुछ करते बन सकता है सब कर रहे हैं। एक प्रांत के राजा बना देने तक का प्रलोभन दिया है।''

नागदेव की बात बीच में ही रुक गई।

''आपने क्या उत्तर दिया ?''

गुंडुमब्बे ने कुतूहल से प्रश्न किया।

''तुम दोनों की राय जानना चाहता हूँ।''

नागदेव ने कहा।

''प्रियतम! हमारी राय किसलिए ? क्या यह ऐसी कोई जटिल समस्या है कि हमारी राय लेकर ही उत्तर दें ? जान लीजिए आपकी इन दो सुंदर स्त्रियों में कोई एक को माँग बैठे तो क्या हमारी राय लेकर उसे जवाब देने की बात सोचिएगा ?''

गुंडुमब्बे की बात कुछ कठोर ही थी।

''देव, क्या हमें स्वामिद्रोह करके शत्रुओं का पक्ष लेना होगा ? तब क्या हमारा वंश रह सकेगा ? हम क्या जीने योग्य रहेंगे ? न! न!! हमें उनका राज्य नहीं चाहिए ? क्या वह राज्य आचन्द्रार्क टिका रहेगा ? शत्रुओं के छक्के छुड़ाकर ही अपनी तलवार नीचे रखिए। नहीं तो देख लीजिए कि कौन आपका आदर करेगा और कहाँ आपका गौरव रहेगा ?''

अत्तिमब्बे का विचार स्पष्ट था।

''प्राणेश्वर! कल ही आप कूच कर दीजिए। अब किसी से सलाह लेने की जरुरत नहीं है। हम अपने राष्ट्र के लिए सर्वस्व त्याग करने में सिद्ध हैं। युद्ध में काम आए तो वीर स्वर्ग प्राप्त होगा, विजयी हुए तो वहाँ सम्मान पूर्वक जिएँगे। दोनों दशा में आपकी विशद कीर्ति अजर और अमर होगी। यदि अब आप कन्नी काटें या द्रोह कर बैठे तो न केवल आप बदनाम नहीं होंगे बल्कि आपकी संतान निरंतर इस अपमान का शिकार बन जाएगी।''

गुंडुमब्बे ने निर्णय दे दिया।

''प्रियतम! आप बिना आगा पीछा किए शस्त्र उठाइए। आप भटमल्ल हैं। क्या हम सुंदरियों के पति बनने मात्र से आप निर्वीर्य बन गए ? आप केवल छैला बनकर रह जायें कभी हम यह पसंद नहीं करते। आप जिस सौन्दर्य को इन आँखों से देख रहे हैं, यह ढल जाने वाला है। मैं नहीं समझती कि भटमल्ल क्यों युद्ध के अवसर पर मानिनियों की सलाह लेने के लिए आवें। आप दिग्गज हैं। आप समर-त्रिनेत्र हैं। युद्ध से आप क्यों कर पीछे हटेंगे ?''

अत्तिमब्बे ने उत्साह बढ़ाने का प्रयत्न किया।

फूल से फूल पर उड़ने वाले भ्रमर के समान हर्ष चित्त होकर तीनों अपने अण्णिग के साथ खूब टहलते रहे। कोकिल के समान कूक कर गुंडुमब्बे ने सब

को चकित किया। मयूरी के समान अभिनय करके अत्तिमब्बे ने पति को रिझाया। रसोल्लास से भींगकर तीनों जिनालय गए। वहाँ भक्ति भार से नमित होकर घर चले आए।

उस रात को बड़े आराम से बिताया। पहले नर्तन हुआ। अत्तिमब्बे ने ऐसा वीणावादन किया मानों स्वर-पुष्प बिखेर रही हो। परम संतुष्ट होकर नागदेव ने उसे दोनों हाथ से कसकर गले लगाया और 'तुम ही मेरी वीणा हो' कहते हुए उससे रम गया। जब गुंडुमब्बे ने वीणा के तार छेड़े तब नाद-तरंग ऐसी उमड़ उठी मानों ज्योत्सना सागर उमड़ पड़ा हो। तब दोनों बहिनों ने अभिनय किया। कबूतरी सी उड़ीं। बहती नदी सी इठलाईं। संध्या की धूप में फन फैलाकर झूमने वाली नागिनों सी झूम उठीं।

''अत्ति! तुम दोनों की कला का पूर्ण रसास्वादन करने के लिए एक जन्म पर्याप्त नहीं है।''

रसावेश में नागदेव ने कहा।

''इसीलिए तो हम नित्य प्रार्थना करती हैं कि जन्म-जन्मांतरों में आप ही हमारे पति हों।''

ऐसा कहकर गुंडुमब्बे मुस्कुराई।

''गुंडू! तुम्हारी बहिन की गोद तो भरी। अब तुम्हारी...''

नागदेव भी मुस्कुराए।

''हम दोनों बहिनों के आप पति हैं न ? बस उसी तरह अण्णिग हम दोनों की संतान है समझिए। अब भी वह पहचान नहीं सकता कि कौन गुंडू और कौन अत्ति! दोनों को माँ कहता है।''

गुंडुमब्बे ने निश्चिंत होकर कहा।

''प्रियतम! कल जय-यात्रा पर जाएँगे न ? अब आराम कीजिए।''

अत्तिमब्बे ने कहा।

''अत्ति! तुम मलय मारुत हो और गुंडू चाँदनी रात है। यह अण्णिग बसंत ऋतु है। ऐसे वातावरण में कहो किसे नींद लगेगी ? क्या बेचारी नींद तुम दोनों से भी अधिक प्यारी होगी ?''

नागदेव बोले।

''अब भले ही आपको थकावट महसूस नहीं हो। पर जब बिछुड़ कर जाएँगे तब की बात कहिए।''

गुंडुमब्बे ने तर्क किया।

''गुंडू! घर पर मैं बालक-सा रहता हूँ। वहीं युद्ध के मैदान पर पैर रखते ही आगा पीछा कुछ नहीं सूझता। वहाँ उगलते हुए अग्निपर्वत बन जाता हूँ। वीणा हाथ में लेकर जैसे तुम दोनों इस लोक को भूल जाती हो, इसी प्रकार तीरकमान हाथ में लेते ही तुम लोगों को भूल बैठता हूँ। तलवार हाथ में लेकर चलूँ तो घासफूस के समान शत्रुओं को काटने के अतिरिक्त और कुछ सूझता ही नहीं।''

इस प्रकार नागदेव ने वीरावेश में कहा।

''पौ फटी-सी दिखाई देती है। अहा! शीतल पवन का यह स्पर्श क्या ही सुखद है। उठिए घड़ी दो घड़ी आराम कीजिए।''

अत्तिमब्बे ने साग्रह निवेदन किया।

''अत्ति! रतजगा करना, निराहार रहना आदि मेरे लिए मामूली सी बात है। बिना नींद हफ्तों रह सकता हूँ। दाना पानी के बिना लड़ सकता हूँ। सुना है कि सौदागार को सौदा करते समय और किसी का ध्यान नहीं रहता है। वैसे ही जब मैं तुम दोनों के साथ रहता हूँ तो और कुछ ध्यान नहीं आता अत्ति, तुम मेरी नींद हो। गुंडु, तुम मेरी अन्न और यह मुन्नू मेरा जल है।''

नागदेव की बातों से रसिकता बह निकली।

''ओहो! आप सचमुच कवि बन गए हैं।''

गुंडुमब्बे हँसी।

''मैं कवि भी हूँ और कठोर कलि भी।''

नागदेव ने अभिमान से कहा। सारी रात ऐसे ही गपशप में बिताई।

''अगर जीवन में ऐसी रात एकाध ही मिले तो भी जीवन सार्थक है।''

ऐसा कहकर अपनी प्रियतमाओं को छाती से लगाकर प्यार किया। तब तक अरुणोदय हुआ था। यह देखकर नागदेव ने कहा -

''देखो, एक भी स्त्री साथ रहे तो नींद बेचारी भाग जाती है। तब दो-दो ऐसी सुरसुंदरियाँ यहाँ हैं तो कहना ही क्या ?''

ऐसा कहकर उठा और अपने काम पर चला गया।

चालुक्य सेना ने समरोत्साह से कूच किया। राणवाद्य बज उठे। दिग्गजोपम हाथी हजारों की संख्या में आगे बढ़े। सबके सब तेल में स्नात थे। उत्साह से चिग्घाड़ रहे थे। सवारों को देखने से समुद्र में उठने वाली उत्तुंग तरंग-मालाओं का स्मरण हो रहा था। पदातियों के पदाघात से उठी धूल से आकाश छा गया और स्वयं दिशाएँ दिशाभ्रष्ट हो गईं। शस्त्रों की चमक ने चकाचौंध कर दिया। यौवनोन्माद में धनुष टंकार कर उठे। तरकसों में समृद्धि आ गई। चतुरंगिनी सेना मान्यखेट पर झपटने चली।

सेनापति का वेष धारण किए नागदेव घर आए। सभी वृद्धों को नमस्कार करके आशीर्वचन पाया। जिनगंधोदक को रक्षामणि की भाँति सिर पर धारण किया। वीरगीत गाती हुई अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे ने नागदेव की आरती उतारी और सिर पर वीराक्षताएँ डालीं। दृष्टि दोष दूर करने के लिए एक नारियल तोड़ने ले आईं। नागदेव ने उसे हाथ में लेकर हथेलियों के बीच में ऐसा दबाया कि नारियल एकदम टुकड़ा-टुकड़ा हो गया, पानी चू पड़ा। पद्मब्बे इसे देखकर हर्षोन्माद में अपनी बहुओं को सम्बोधन करती हुई बोली -

देखो बहू, तुम्हारे पति की शक्ति कितनी है!

''आप बाहुबली के समान अभिमान-धन बनें। शत्रु पर विजय पाकर आप घर लौटें। किसी भी कारणवश से आपका मन विचलित न हो। आप विजय-वधू के साथ घर आइए।''

कहकर अत्तिमब्बे ने पति का उत्साह और बढ़ा दिया।

''आप लोकैकवीर अर्जुन-से लग रहे हैं। अर्जुन अजेय था, आप भी अजेय रहें। आप युद्ध में काल भैरव हैं। अवश्य अरिपुर भस्म करके मुख दर्शन दीजिएगा।'' गुंडुमब्बे ने कहा।

अण्णिगदेव को गोद में लेकर नागदेव कुछ क्षण तक खेलता। इस प्रकार सबसे विदा लेकर सेनानी नागदेव सेना से मिलने गए। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे की दृष्टि उस पथ पर लगी रही, जिस पथ से होकर नागदेव विजययात्रा करने निकले थे।

❑❑❑

10.

राष्ट्रकूटों में युद्ध की कोई विशेष तैयारी नहीं हुई थी। कृष्ण तृतीय के बाद शासन सूत्र भी ढीले पड़े थे। सेना में अनुशासन नहीं था। बहुत पुराना साम्राज्य था; अतएव वह किसी भाँति चला आ रहा था। राष्ट्रकूटों के सामंत गंगों की शक्ति अभी अक्षुण्ण थी। दोनों वंशों में कई पीढ़ियों से रक्त सम्बन्ध चला आ रहा था। गंगों का मारसिंह मानों कर्क का अंगरक्षक बना था। अंदर ही अंदर चालुक्य युद्ध की पूरी तैयारी करके, अपने ऊपर धावा बोलेंगे, यह बात न तो गंगों ने सोची थी न राष्ट्रकूटों ने ही। झंझा के समान चालुक्यों की सेना आ गई है..... यह सुनकर कर्क सतर्क हुआ, सोच विचारकर मान्यखेट से निकला और दो-एक दिन में ही चालुक्यों को बीच में रोकने का निश्चय किया।

चालुक्य सेना का सेनाधिपति महा पराक्रमी नागदेव था। उस सेना में ऐसे-ऐसे वीर थे, जो टूटने वाली बिजली को हाथों से पकड़ने में भी आगा पीछा नहीं करते। नागदेव व्यूह रचकर युद्ध करता था। इस कला में उसका अपार कौशल था। संख्या की दृष्टि से सेना अधिक नहीं थी, फिर भी व्यूह रचना के बल पर उसका बल दुगुना तिगुना सा लगता था। पहाड़ को बहा देने वाले प्रवाह को बुद्धि कुशल शिल्पी मिट्टी की बाँध डालकर नियंत्रित कर देता ही है।

राष्ट्रकूटों की सेना संख्या की दृष्टि से चालुक्यों की सेना से कई गुना अधिक थी। भरपूर युद्ध सामग्री भी थी। पर कोई ऐसा सेनापति नहीं था जो इनका उपयोग करे और सेना का संचालन बुद्धिमत्ता के साथ कर सके। कोई कायर के हाथ में चक्रायुध हो तो क्या होगा ? चक्रायुध चलाने की कला में परिणत हो और समय पर चलाने की हिम्मत हो तब न उसका प्रयोजन है ?

हफ्ते भर चालुक्यों और राष्ट्रकूटों में घमासान लड़ाई हुई। चालुक्यों ने राष्ट्रकूटों पर हमला करके इस प्रकार उनका नाश किया मानों मत वाले हाथियों का झुंड ईख के खेत में पहुँचकर सफाचट कर रहा हो। नागदेव जब कमान हाथ में उठाकर तीर चलाता गया तो कहना क्या ? एक-एक तीर वज्र के समान टूट पड़ता और अपने साथ शत्रु का सिर भी लेकर गिर पड़ता था। वह हाथ में तलवार

लेकर झपटता तो देखना चाहिए था, वह युद्धोन्माद में कैसे काल-भैरव बन सकता था। उसकी तलवारें क्या थीं मृत्यु की जीभें थीं। जहाँ निकलती वहाँ चाहे हाथी मिले चाहे घोड़ा चाट डालतीं।

नागदेव का युद्धोन्माद वर्णनातीत था। वह पैदल सिपाही पर बाज-सा झपटता और उसी को उठाकर शत्रु सेना पर दे मारता। वह तो फेंके जाने पर मर जाता ही पर साथ-साथ धक्का देकर अपने साथ 2-4 सिपाही को लेकर चल बसता।

कर्क नागदेव के आघात से ढेर हुआ। सहसा वर्षा होने पर जनता जैसे भाग निकलती है, उसी प्रकार सेनापति के गिर पड़ते ही राष्ट्रकूट-सेना बेतहाशा भागने लगी। चालुक्यों का सामना करने के लिए कोई नहीं रहा। राष्ट्रकूटों की राजधानी पर चालुक्यों का झण्डा फहराने लगा। शतमानों से संचित अपार सम्पत्ति तैलप के हाथ आयी। उन्होंने दिल खोलकर सैनिकों में उसे लुटा दिया। जो जितना ढोकर ले जा सकता था उसे उतना धन दिया गया।

राष्ट्रकूटों पर चालुक्यों का हमला हुआ है - यह खबर पाते ही मारसिंह अपनी सेना लिए सहायता करने निकला। उस समय चामुण्डराय अन्यत्र चले गए थे। अतएव मारसिंह को ही आना पड़ा। पर खेद की बात थी मारसिंह राष्ट्रकूटों की सहायता नहीं कर सका, क्योंकि तब तक राष्ट्रकूट पूर्णतया हार गए थे। राष्ट्रकूटों के हितैषियों ने राजकुमार को किसी तरह बचाकर गुप्त द्वार से पलायन किया था। रास्ते में ही अनाथ राजकुमार की भेंट मारसिंह से हुई। मारसिंह को बड़ा दुःख हुआ। सब लुट चुका था। मारसिंह के पश्चाताप या संताप से अब कुछ नहीं बन सकता था।

फिर भी बदला चुकाने के उद्देश्य से सिंह-गर्जना करके मारसिंह ने चालुक्यों पर हमला किया। मारसिंह के साथ लोहा बजाने में नागदेव को विशेष आनंद मिला। उसका उत्साह उमड़ पड़ा। उसने अपने साहस को सार्थक माना। समझा कि अपना व्रत पूर्ण हुआ। सोचा कि उत्तरा कुमारों से लड़कर जीतने की अपेक्षा अर्जुन से लोहा बजाकर हार जाना भी श्रेयस्कर है; इसमें हार जीत दोनों में कीर्ति है और ऐसा सोचकर नागदेव ने हथियार उठाया। मारसिंह के साथ नागदेव का युद्ध वैसा ही था जैसे भीष्म पितामह के साथ वीर अभिमन्यु का था। मारसिंह की दृष्टि में नागदेव वीरता की पुतली था। उसके गठीले बदन को देखकर देखते ही खड़ा रह गया।

मारसिंह ने द्वंद्व युद्ध करने का निश्चय किया। नागदेव ने भी स्वीकार

किया। दोनों मल्ल-युद्ध में उलझ गए। नागदेव का जांघ बजाना क्या था, मानों बिजली का कड़कना था। क्षण भर दोनों ने परस्पर सामर्थ्य का अंदाज लगाते हुए एक-दूसरे को घूर कर देखा। वह भरत और बाहुबली के दृष्टि-युद्ध का स्मरण दिला रहा था। दोनों ने विपक्षी को दाँव में पाने का प्रयत्न किया। बाद में ऐसे भिड़े कि मानों दो सांड़ अपनी सींगों को अड़ाए एक-दूसरे को रेलना चाहते हों। मतवाले हाथी के समान भिड़े; सूड़-सी भुजाएँ विपक्षी को पकड़ में लाने को कातर हो उठी, पर किसी का मनोरथ पूर्ण नहीं हुआ। तब गदा युद्ध प्रारम्भ हुआ। उनके गदा-प्रहार से चिनगारियाँ निकल रही थीं।

अंत में मारसिंह ने एकाएक नागदेव पर सिंह के समान झपट कर गदा की जगह, उसी को उठा लिया और आकाश में फेंक दिया। खेचर के समान हवा में गोता लगाते-लगाते संभलकर जैसे ही नागदेव नीचे आ रहा था। वैसे ही गेंद की भाँति उसे पकड़कर मारसिंह ने जमीन पर दे मारा। नागदेव के हृदय में मानों प्रतिशोध की आग भभक उठी थी। संभलकर उठा; शार्दूल के समान देखते-देखते मारसिंह पर सहसा आक्रमण किया और उसे उठाकर इस भाँति मंडराने लगा मानों एक पर्वत दूसरे पर्वत को लिए बवंडर में चक्कर काट रहा हो। इस युद्ध को देखते हुए दोनों ओर की सेना निश्चेष्ट खड़ी थीं।

ऐसा लग रहा था कि नागदेव को मारना मारसिंह नहीं चाहता और मारसिंह को मारना नागदेव नहीं चाहता। सेनाधिकारियों को यह एक बुझौबल पहेली बनकर सताने लगी। कई बार ऐसे मौके दोनों को मिले। यदि चाहते तो विपक्षी का संहार कर देते। पर ऐसे अवसरों पर उदासीन से रह जाते।

सहसा एक दुर्घटना हुई। राष्ट्रकूट का सेनापति वहीं एक पेड़ पर छिप कर बैठा था। नागदेव को दाँव पर पाकर सोचा कि अब खतम कर देना चाहिए। तुरन्त निशाना लगाकर नागदेव के छाती पर एक भाला दे मारा। वह नागदेव के वक्षस्थल में जा धँसा। नागदेव परकटे विंध्याचल के समान बैठ गया। मारसिंह ने तुरन्त उसे दोनों बाहुओं में उठाकर संभालने का प्रयत्न किया। उसे बड़ा पश्चाताप और खेद हुआ। पर किया क्या जाए ? जो नहीं चाहता था वह हो गया था। मारसिंह पर नागदेव की मृत्यु का गहरा प्रभाव पड़ा। उस दिन से उसे अन्नजल तक में अरुचि हो गई। विजय से वैराग्य। यही तो विधि-विडम्बना है। होनहार को कोई मिटा नहीं सकता। कारण कुछ भी हो जो कुछ होना है वह होकर ही रहेगा।

❑❑❑

11.

विजय–श्री ने चालुक्यों का वरण किया। राष्ट्रकूट के राज्य पर तैलप का अधिकार स्थिर हुआ। पर परिस्थिति ऐसी थीं कि जैसे बच्चे को जन्म देकर माँ का स्वर्गवास हुआ हो, क्योंकि नागदेव की मृत्यु ने तैलप को बड़े संकट में डाल दिया था। जब नागदेव का पार्थिव शरीर राजधानी में लाया गया, तब उसे गोद में रखकर तैलप इस भाँति रो पड़े मानों स्वयं विधवा बना हो। दल्लप का हाल क्या कहा जाये। इकलौते पुत्र को खोकर पागल बना हुआ था।

''दल्लप जी! हमारा अभिमन्यु अब नहीं रहा।''

तैलप प्रलाप करने लगे।

''प्रभो! अब मेरा क्या होगा यही एक बेटा था। अब घर पर दो–दो विधवाओं को मुँह दिखाने कैसे जाऊँ ? उनकी सुहाग लुटी, हम कैसे जीवित रहें ? आप मेरा भी वध कर डालिए। यह सबसे बड़ा अनुग्रह होगा। अब मैं जीना नहीं चाहता। मैं ही आत्महत्या कर लूँगा।''

कहकर सब सचमुच संगीन को अपनी छाती में भोंकने लगा। तैलप ने सहसा उसका हाथ थामकर संगीन को झटके से छीन लिया।

''दल्लप जी! क्या मैं आपकी संतान नहीं हूँ। जब तक मैं जिन्दा हूँ। तब तक आप अपने को दीन क्यों मानते हैं ? आप भी आत्महत्या कर लें तो मैं क्या करुँ ? मेरा क्या होगा ? नागदेव की मृत्यु से मुझे क्या कम दुःख हुआ है ? वादा करता हूँ कि जब तक मैं जिन्दा रहूँगा तब तक आपसे पुत्र के रूप में व्यवहार करुँगा। मरे पुत्र को कैसे ला दूँ ?''

''कौन किसका है प्रभो ? संसार तो क्षणभंगुर है। खैर, आप मेरे साथ पुत्र के समान ही बर्ताव किया करें पर रिक्त स्थान तो भर नहीं सकते ? सब व्यर्थ का आश्वासन है।''

कहकर दल्लप सिर पकड़कर बैठ गया।

तब फौज के प्रत्येक जवान ने दूर ही खड़े होकर नागदेव को देखा। सब

की आँखों से आँसू की धारा बह रही थी। विजय लक्ष्मी का स्वागत फल-फूल से नहीं, आँसू से कर रहे थे। कुंकुम रोली लुटाकर नहीं सुहाग लुटाकर किया जा रहा था। संगीत-नृत्य नहीं शोक और कातरता से..... यह विधि विडम्बना थी।

सुगंध द्रव्यों से भरी पेटी में नागदेव का शव विजयपुर भेजा गया। वहाँ शोक और करुणा का सागर ही उमड़ आया। सुहागिनी स्त्रियों ने युद्ध की भरपूर निंदा की।

''गुंडू मेरे साथ आने का बड़ा दुराग्रह किया था। तो देखो अब कैसे जीवन को ही नष्ट करना पड़ा! क्या सोच रहीं थी कि जीजी के साथ रहना माता के साथ रहने के समान है ? अब देखो न ? तुम्हारा भ्रम दूर हुआ या नहीं ?''

इस प्रकार अत्तिमब्बे प्रलाप करने लगी ?

''हाय! मैंने तुमसे युद्ध में जाने के पूर्व अवश्य कहा था कि विजयी होकर ही दर्शन देना। वह शाप नहीं था। शुभकामना थी। क्या इसे तुमने चुनौती मानकर मृत्यु को गले लगाया ? इस प्रकार क्या मैं ही तुम्हारी मौत का कारण बन गई ?''

गुंडुमब्बे ऐसा सोचते हुए आँसू बहाने लगी।

''मेरे स्वामी! क्या मरने के लिए ही हमारी सलाह माँगने आए थे ? बाहुबली के समान बिना आगा पीछा देखे युद्ध करने की सलाह मैंने किस कुघड़ी में दी ?''

अत्तिमब्बे पैर के पास बैठकर रोने लगी। नागदेव के शव से वे दोनों इस प्रकार लिपट गई थीं कि पद्मब्बे को पुत्र का शरीर दिखाई नहीं दे रहा था। पद्मब्बे ने किसी प्रकार भीड़ के बीच से रास्ता निकाल कर शव के पास जाकर देखा, भीम के समान पराक्रमी पुत्र अब रक्तहीन पीला मुख लिए बन पड़ा है। यह दृश्य उससे देखते नहीं बना। धँसकर बैठ गई। बेहोश हो गई।

होश आते ही बड़बड़ाने लगी.....

''बेटी, मेरे बेटे की बहू बन दूध बतासा खाना चाहती थीं। अब भ्रम दूर हुआ न ? दोनों बहिनों ने एक ही को पति बना लेने का आग्रह क्यों किया अब.....''

कहती हुई फिर मूर्छित हो गई।

''माताजी! अब हमारा क्या होगा ? अब हम किसलिए जिएँ ? हमसे कोई अपराध हुआ हो तो क्षमा कीजिए। प्राणेश्वर के साथ हम भी जाएँगी।''

अत्तिमब्बे बोली।

''सास जी! आप जन्म-जन्मान्तरों में हमारी सास रहें। यही मेरी अंतिम प्रार्थना है। अब मुझे सहगमन की अनुमति दीजिए।''

कहकर गुंडुमब्बे बहिन के पैरों से लिपट गई।

''गुंडू! उठो। उठो। क्या सहगमन करते समय तुम्हें छोड़ जाऊँगी ? उठो ? हाय रे! क्या मेरे साथ सहगमन करने मात्र के लिए मेरे पीछे-पीछे आई थीं। उठो बहिन! जो मेरा हाल वही तुम्हारा भी होगा।''

कहकर अत्तिमब्बे ने अपनी बहिन को खींचकर छाती से लगा लिया और दोनों फूट-फूटकर रोने लगीं।

''हाय रे बेटा! हम सबको अनाथ बनाकर क्यों चले ?''

ऐसा प्रलाप करती हुई पद्मब्बे ने बेटे के शव को गोद में उठाकर रखा। अब्बकब्बे छाती पीट-पीट कर रो रही थी।

''इसीलिए तो बेटा हमने कहा कि दोनों एक ही को मत वरो। पर हमारी बात किसे पथ्य थी ? अब तक एक दिन भी तुमको रोते हुए नहीं देखा था। पर अब दोनों ने एक ही डोली में सुख निद्रा करने का स्वप्न देखते-देखते सदा के लिए जीवन को नष्ट कर डाला न ?''

अब्बकब्बे बड़बड़ाने लगी।

''अब रोने से क्या होगा ? नागदेव को कोई जिला नहीं सकोगी। शव को बहुत दिनों तक रख लेना उचित नहीं है। उठिए-उठिए। क्रिया-कर्म की बात सोचिए।''

वयोवृद्धों ने कहा।

''क्रिया! क्रिया!! कीजिए, कीजिए। पर कैसे देखूँ मैं अपनी दो-दो बेटियाँ के कर्म को। उनकी सुहाग लुटी जा रही है।.... पहले हमारी क्रिया कीजिए बाद को जो चाहे कर्म कीजिएगा।''

अब्बकब्बे ने खीजकर कहा।

मल्लप बड़ा धीर था। पर वह भी अब रो पड़ा। तैलप की रानी आई और

नागदेव की पाद-धूलि से तिलक करती हुई शव के पास बैठ गई। रोने वालों के बीच में स्वयं आँसू बहाने बैठ गई।

''महारानी जी! मेरे बेटे का बलिदान देखिए।''

पद्मब्बे बोली।

''मामी, मेरे वश में क्या है ? अब क्या मैं तुम्हारे बेटे को जिला सकूँगी?''

वह रोने लगी।

''रानी जी! आप लोगों की साम्राज्य दाह ने मेरी दो-दो बेटियों के मांगल्य को मिट्टी में मिला दिया।''

अब्बकब्बे ने डाँटते हुए कहा।

''ठीक कहती हो बहिन! पर कौन हम स्त्रियों की बात सुनता है ? अपनी झूठी प्रतिष्ठा के लिए पुरुष आपस में लड़ते हैं और सुहाग लुटता है हम स्त्रियों का। हम अबलाओं के आँसू में पुरुष तैरना चाहते हैं। इसमें इनकी होड़ लगी रहती है। मेरा बस चले तो मैं युद्ध को सदा के लिए रोकना चाहती हूँ। सोचो न, इस दिशा में हमारा और तुम्हारा क्या कर्त्तव्य है ? अब इस साम्राज्य को देकर भी क्या नागदेव जैसे देवर को पा सकेंगी ?''

महारानी ने अपनी विवशता का वर्णन किया। साथ ही कर्त्तव्य-प्रज्ञा जगाकर सांत्वना देने का प्रयत्न किया।

नागदेव के शव संस्कार की तैयारी हुई। अत्तिमब्बे और गुंडुमब्बे भी तैयारी में लगी रही।

''बहिन! मुझे अंतिम वरदान दो।''

गुंडूमब्बे ने याचना की।

''गुंडू! क्यों इस प्रकार याचना कर रही हो ? मैंने सबके मना करने पर भी क्या अपनी सेज का आधार तुम्हारे लिए नहीं दिया है ?''

अत्तिमब्बे बोली।

''अब मेरी बात स्वीकार करो बहिन। यही मेरी अंतिम अभिलाषा है।''

फिर गुंडुमब्बे ने प्रार्थना की।

''कहो न बहिन।''

अत्तिमब्बे का कुतूहल बोल उठा।

''जीजी! तुम्हारा बेटा है। मेरा कोई नहीं है। मेरा जीवन अमावस्या की गहरी रात है। तुम मुन्नू के वास्ते जीवित रहो और मुझे निश्चिंत होकर जाने दो।

गुंडुमब्बे की बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि अत्तिमब्बे अत्यन्त रुष्ट होकर बोली।''

''भला, बेटे का बहाना दिखाकर मुझे सहगमन से वंचित करना चाहती हो ? क्या पति पर मेरा कोई हक नहीं ? क्यों तुम ही उन्हें अपनाकर मुझसे सदा के लिए छीन लेना चाहती हो ? मैं जिन्दगी भर जलती रहूँ और निश्चिंतता से सती बनकर इह और पर दोनों को तुम निभाओ, खूब सोचा, सौत आखिर सौत ही तो होगी! मेरा कहना मानो, मानना ही पड़ेगा। तुमने वादा किया था कि मेरे कहे अनुसार ही चला करोगी। तभी तो मैंने अपने पति के हाथों तुम्हारी माँग भरवाई थी। अब तुम ही घर रहो, मैं सती बनूँगी। क्या अण्णिग तुम्हारा बेटा नहीं है ?''

''बहिन! ऐसा क्यों कहती हो ? आखिर संसार क्या कहेगा ? जैसे लोग कहेंगे वैसे करें।''

गुंडुमब्बे ने असहायक ध्वनि में कहा।

''लोग! संसार! अब कहाँ के लोग और कहाँ का संसार ? जब जीवन ही बर्बाद हुआ पड़ा है तो मेरा लोगों से या संसार से क्या वास्ता ? जब मेरा राजा ही नहीं रहा तो यह संसार मेरे लिए घोर नरक है। अब मैं किसी की नहीं मानूँगी।''

अत्तिमब्बे ने दृढ़ता से कहा।

''बहिन क्या हम दोनों की प्रतिस्पर्धा में अण्णिग अनाथ बन जाये ?''

गुंडुमब्बे यह कह रही थी कि अण्णिग वहाँ चला आया। अत्तिमब्बे का मातृ-हृदय मचल पड़ा। बेटे को छाती से लगा लिया। आँसू दुगुने वेग से उमड़ पड़े। किसी प्रकार संभलकर फिर बोली -

''गुंडू! मेरे लिए इतना त्याग और करो। लो, यह तुम्हारा बेटा है। तुम्हें सौंप देती हूँ। बदले में मुझे सती होने दो।''

अण्णिग को उठाकर अत्तिमब्बे ने गुंडुमब्बे की गोद में डाल दिया।

''जीजी! क्या हमारे बुजुर्ग नहीं है ? उनके कहने के अनुसार हम बरतें।''

गुंडू ने सलाह दी।

''मैं सती बनूँगी! बनूँगी! अवश्य बनूँगी! इसे छोड़कर और कुछ कहना हो तो कहो।''

अत्तिमब्बे ने अपना निश्चय दुहराया। सभी हितेच्छु कुलवृद्धों ने मिलकर निर्णय दिया कि गुंडुमब्बे सहगमन करें और अत्तिमब्बे अण्णिग के पालन-पोषण का भार संभाले।

पद्मब्बे ने समझाया -

''अत्ति, तुम अण्णिग की माँ हो। अण्णिग के वास्ते तुमको जिंदा रहना ही होगा। क्या मेरा दुःख कम है ? ऐसे बेटे को खोकर जीने में क्या सुख है ? फिर भी मैं उसके पीछे जा पाऊँगी ? हम बूढ़े हैं। सहगमन की बात भूल जाओ। हमारे लिए जीवित रहो। उसके पुत्र के वास्ते जीवित रहो।''

''सुनिए, संसार भाड़ में जाये। मैं लेकर क्या करूँ ? किसी पर मेरा विश्वास नहीं है। अकाल में पति की मृत्यु हुई और बेटे से न जाने क्या-क्या भोगना पड़ेगा ? मैं पाँव पड़ती हूँ मुझे न रोकिए। दुःख भोगने के लिए मैं जीना नहीं चाहती।''

अत्तिमब्बे ने दृढ़ता से कहा।

''सोचो तो सही अण्णिग का क्या होगा ? माता का कर्त्तव्य है कि संतान की देखरेख करे। नारी की जिम्मेदारी बँटी है। नारी के जीवन में एक और पति है जो दूसरी ओर संतान। दोनों को निभाना होगा, बेटी।''

''पर मैं अकेली क्या निभाऊँ? वे हमें छोड़कर क्यों चल बसे ? हम क्यों पीछे रह जायें ?''

''हाँ, वह तो चल बसा। पर संतान की रक्षा तो करनी होगी ? अब उस पुत्र के लिए रहना पड़ेगा। हाँ! गुंडुमब्बे की बात दूसरी है उसे अनुमति दो। पीछे आई थी, आगे जायेगी। यहाँ तुमने साथ दिया वहाँ वह।''

आगे बोलते नहीं बना फिर भी पद्मब्बे ने उचित सलाह दी थी।

''अत्ति! कैसी अबोध बातें करती हो ? इस दुध मुँह बच्चे को छोड़कर सहगमन करने से क्या तुम्हें शान्ति मिल सकेगी ? क्या माँ का हृदय इतना नीरस रेगिस्तान बन सकता है ?''

अब्बकब्बे ने डाँटने वाली आवाज में कहा।

''अत्तिमब्बे! तुम्हारा हठ करना उचित नहीं है।''

''तुम्हारा और तुम्हारे बेटे का भार हम संभालेंगी। तुम्हारे साथ जिंदगी का भार ढोने के लिए हम सब बैठे हैं। लोक हित साधना में मन लगाओ। सहगमन ही एक मात्र कर्त्तव्य नहीं है। यदि तुम्हारे कोई संतान नहीं होती तो कौन तुम्हारे रास्ते का रोड़ा बनता ?''

कह रानी ने भी समझाया बुझाया। सबका मत एक-सा था। अत्तिमब्बे को उसे मानना ही पड़ा।

गुंडुमब्बे ने नवेली के जैसे आज शृंगार कर लिया। जितना बन सका उतना फूल सिर पर धारण किया। सोलहों शृंगार से सुसज्जित हुई। बड़े बूढ़ों को नमस्कार करके आशीर्वाद पाया। अण्णिग को गोद में लेकर पुचकारा। तब उसके धैर्य का बाँध टूट गया। क्षण भर के लिए विचलित हो उठी। फिर किसी तरह संभालकर उसे उतारा और अत्तिमब्बे को छाती से कसकर लगाया। तब आँसू का बाँध फिर टूट गया। जगमगाते हुए चंदन की चिता के समीप गई। चिता जल रही थी। उसी दशा में तीन बार परिक्रमा की। जिनगंधोदक लिए सिर आँखों पर लगाया। पंचपरमेष्ठियों का मंत्र जपते-जपते चिता में इस प्रकार प्रवेश किया मानों लता-मण्डप में प्रवेश कर रही हो। उस समय उसका मुँह अलौकिक कांति से चमक उठा। जैसे आड़ में आने वाली पत्तियों को अगल-बगल सरकाते हुए कोई केलि-कुंज में जाता है उसी प्रकार लपटों को दोनों हाथों से सरकाती हुई हँसते-हँसते चिता पर चढ़ी और पति के बगल में सो गई। चिता की सेज पर पति को गले लगाए रम गई।

❑❑❑

12.

उखाड़ी गई लता–सी अत्तिमब्बे मुरझा गई। अपस्मार का शिकार बनी–सी स्तब्ध बन गई। पानी से काढ़ी गई मछली–सी छटपटाने लगी। उसे बड़े कष्ट से खिलाना पड़ता था। बड़े कष्ट से नहलाना पड़ता था। बिना दबाव डाले उसको खिलाना पिलाना भी मुश्किल बना। हर बात में दबाव पड़ता था। उसके लिए मानो यह संसार शून्य था। सिर के बाल सूखी घास बनकर उड़ने लगे। गालों पर पहले की भाँति ललाई नहीं रही। माथे पर रोली की चमक मिटी। गले का मांगल्य निकाला गया था। वह मानो अमंगल की खान सी लग रही थी। हाथ के कंगन तोड़े गए। कमल नाल–सी बाँहें पेड़ की सूखी टहनी से लगने लगीं। यहाँ तक कि उसके नाखूनों की चमक भी मिट गई। पहले वह उतनी सुंदर थी कि मानों इंद्रचाप को पिघला कर सांचे में डालकर बनाई गई पुतली हो। वही अब इतना मलिन बन गई थी कि मानों कोई काई से भरा सड़ने वाला ताल हो। अब उसकी आँखों में नींद कहाँ ? दिन और रात का अंतर ही मिट गया। सदा नरक की पीड़ा भोगते–भोगते शरीर एक दम दुर्बल बन गया। वह बैचेन थी क्योंकि उसे मरने के लिए स्वातंत्र्य नहीं था। कभी–कभी उसका नन्हा सा बच्चा पास आता, गोद पर चढ़ता और सूखे स्तनों को चूस–चूसकर निराश लौट पड़ता। कभी–कभी ठूँठ सी पड़ी हुई माँ को हिला–हिलाकर जगाने का प्रयत्न करता और न हिलने पर शरीर को टटोलकर जाँच करता। पर अत्तिमब्बे यह सब जानती हुई भी अनजान सी पड़ी रहती थी, क्योंकि अब उसके लिए संसार में कोई आकर्षण नहीं बचा था।

''अत्ति! बच्चे का मुँह देखो। उठो। वह बार–बार आकर हताश लौट रहा है न ?''

पद्मब्बे कह देती। पर स्वयं अपना दुःख सह नहीं पाती थी। रो पड़ती थी।

''मुझे न रहने देते हैं; न मरने छोड़ते हैं!!''

अत्तिमब्बे कुड़बुड़ाती।

''क्या कहती हो बहू! क्या तुम्हें हम लोग सता रहे हैं। तुम्हें हमीं लोगों ने अवश्य मरने नहीं दिया पर क्यों ? हमारे लिए तो नहीं। उस मुन्नू के लिए तो।''

''अब मुझे छोड़ दीजिए। मैं जी कर क्यों घुल-घुलकर मरूँ और कौन-सा सुख बाकी है कि मैं जिंदा रहूँ।''

''अत्ति! उठो। जरा अण्णिग को तो देखा। बेचारा सूखता जा रहा है। जिस प्रकार चण्ड मारुत के झोंको से उखाड़े गए पेड़ के कोंपलों की दुर्गति होती है। वही दुर्गति अण्णिग की हो रही है। अब इस कुल का वही एक मात्र आधार है। अगर उसकी रक्षा नहीं की तो क्या होगा सोचो तो सही ?''

पद्मब्बे ने खिन्न होकर कह दिया। तब तक वहाँ अण्णिगदेव चला आया। अपनी। माँ को हिलाते हुए 'माँ, माँ'! कह पुकारने लगा।

''अत्ति! कैसे सहूँ! हृदय विदारक है बेटी। उठो बेटा तो गया, क्या तुम यही चाहती हो कि इस उम्र में इकलौते पोते को भी गँवा बैठूँ ? इसकी रक्षा हमारे लिए ही सही, करो।''

गद्गद् हो रो पड़ी।

''माताजी! मैं और किसलिए जियूँ। विधवा हूँ। समाज का कलंक हूँ। अमंगल मूर्ति हूँ। मेरा न रहना ही अच्छा है। अमंगल की मूर्ति बनकर, धर्म-कर्म से हीन होकर जीना भी क्या जीना है ? गुंडू सचमुच सौभाग्यवती थी। मरकर अमर बनी। सती सावित्री बनी। मैं जीकर नरक यातना भोग रही हूँ।''

अत्तिमब्बे छटपटाने लगी।

''अत्ति! क्या हम जी नहीं रहे हैं। पुत्र को खोकर कौन-सा बड़ा सुख हम भोग रहे हैं ? हम जिंदा हैं जो केवल तुम्हारे लिए और तुम्हारे इस बच्चे के लिए। तुम अण्णिग की माँ हो। सोचो अगर पेड़ ही अपनी शाखा की उपेक्षा करने लगे तो उसका क्या हाल होगा ? यदि तुम ही अपनी संतान की उपेक्षा करो तो बेचारा क्या करे और कहाँ जाये ? तुम्हारी इस उपेक्षा का क्या परिणाम होगा ? लोग क्या कहेंगे।''

पद्मब्बे ने कर्तव्योन्मुख करने के लिए अत्तिमब्बे से कहा।

दो-एक दिन बीत गए। पंप कवि विजयपुर आए। फिर करुणा की बाढ़ बह चली। नई-पुरानी स्मृतियाँ आँसू की धारा बन प्रवाहित हुई। दल्लप का दुःख

फिर जाग्रत हो उठा।

''पंपदेव हम लुट गए। अब व्यर्थ की सांस ढोने जिंदा हैं। न जाने ये पापी प्राण और क्या देखना चाहते हैं। हमारा लड़का नागदेव आपको बहुत मानता था। आपके काव्य का कंठपाठ किया था। फल्गुन का साहस बाहुबली का पराक्रम उसका प्रिय भाग था। उन्हें पढ़ते-पढ़ते स्वयं फल्गुन या बाहुबली बनने का स्वप्न देखा करता था। अब हमें आँसू के घूँट पीने छोड़कर स्वयं चल बसा! बाप के सामने बेटा मरे! माँ-बाप को शोक-सागर में ढकेल दे। वह अभागा है.... नहीं, नहीं, हम अभागे हैं! पुत्रशोक में दल्लप अंटसंट बकने लगा।''

सांत्वना देते हुए पंप बोले -

''दल्लप जी! आपका दु:ख मैं समझ सकता हूँ। कहा जाता है कि पुत्र-शोक चिर-स्थायी होता है। पर शोक करें तो किसके लिए ? आपका बेटा जीना और मरना दोनों जानता था। कायर सौ-सौ बार मरते हैं। आपका नागदेव कायर नहीं था। वह तो हमारे फल्गुन और बाहुबली के समान ही वीर था और वीतराग भी था। उसकी मौत पर लाखों की जिंदगी न्यौछावर है। ऐसे पुत्र को जन्म देकर आप अमर बने हैं। मरना तो अनिवार्य है। जरा सोचिए, आपका बेटा मरकर भी अमर बना है कि नहीं ? कौन आपके बेटे का शौर्य-पराक्रम नहीं जानता ? शत्रु तक सराहते हैं। ऐसे व्यक्ति पार्थिव शरीर के बंधन तोड़कर यश:काय बनकर अमर होते हैं। वीर पुत्र के योग्य वीर पिता होकर आप आँसू पोंछ डालिए। आप अत्ति को सांत्वना दीजिए और अण्णिग को सुयोग्य बनाने का कर्त्तव्य पालन कीजिए।''

''पंपदेव! हम कगारे पर के पेड़ हैं। अब हम किसकी चिंता करें ? हम सूखे पत्ते हैं। किसी तरह हमारे दिन कट जाएँगे। पर अत्तिमब्बे को संभालना असंभव बन गया है। हम प्रयत्न करके हार गए हैं। वह सुन्न-सी बनी है। खाना, पीना, सोना भी बिना दबाव डाले नहीं हो रहा है। आप महाकवि हैं। रस ऋषि हैं, देवलोक से लेकर भूलोक तक आपकी पहुँच है। आप पत्थर में जान फूँकने की प्रतिभा रखते हैं। आप पत्थर से भी संभाषण कर सकते हैं। कुछ तो कीजिए कि अत्तिमब्बे लोक-व्यापार में प्रवृत्त हो जाये ताकि बच्चे को संभाल ले।''

दल्लप ने अपनी विवशता व्यक्त करते हुए प्रार्थना की।

''पंप जी ने अत्तिमब्बे से भेंट की। कहाँ वह कुसुमकली और कहाँ यह

काँटा! उसे न किसी के आने की खबर रहती न जाने की, चिंता में जल रही थी। जिंदगी ही जिसके लिए दुर्भर बनी हो, वह औरों की बात लेकर क्या करे ?''

''अत्ति! बेटी!! मेरी ओर देखो। मैं आया हूँ।''

पंपदेव ने अत्तिमब्बे का ध्यान खींचने के लिए कहा।

''बेटी! जो होना नहीं चाहिए था वह हो गया। किसका वश है ? जो गए वह धन्य हैं ? चाँद भी तो घुल जाता है। यहाँ का कर्म समाप्त होते ही हर किसी को जाना पड़ता है। यहाँ किसका चलता है ? उठो बेटी। तुम क्या नासमझ हो ?''

पंप महाकवि ने सांत्वना पूर्वक जगाया।

''मामाजी! आप अब आए ? पर यहाँ सब समाप्त हो चुका है। बताइए तो सही अब इस जिंदगी की अपेक्षा मौत लाख भली है कि नहीं ? आप अरिकेसरी की मृत्यु से संतप्त थे। मैं आपको सांत्वना देने का प्रयत्न कर रही थी। अब मैं समझ गई। मामा जी! मेरी वेदना किसी के मिटाए नहीं मिट सकती! लोग आते हैं। सांत्वना देते हैं। पर क्यों सांत्वना नहीं मिलती ? आप कवि हैं। कवि की दृष्टि से विचार कर बताइए कि क्या इस आघात को सहकर भी जिंदा रहें और क्यों ?''

अत्तिमब्बे ने अपना दुःख कह सुनाया।

''बेटी! जीवन बहुमुखी होता है। पति और पुत्र उसका एक मुख मात्र है। अब तुम्हारा पति मात्र नहीं रहा और सब कुछ तुम्हारे सामने पड़ा है। जिंदगी के कई पहलुओं को संभालने के लिए तुम्हें जीना ही होगा। आर्तध्यान नरक का द्वार है। तुम बरसात की बूँद से डरकर बाढ़ में बह जाना चाहती हो। यह उचित नहीं है।''

पंप कवि ने समझाने का प्रयत्न किया।

''मामा! मेरी आवश्यकता किसको पड़ी है ?''

अत्तिमब्बे के स्वर में निराशा जनित कंपन था।

''बेटी! आदिदेव के संन्यास स्वीकार का प्रकरण तुमने पढ़ा ही होगा। तब उनकी रानियाँ, यशस्वती और कुमुदवती क्या पति के होते हुए भी पतिहीन नहीं बनीं ? उसका जो अकथनीय दुःख था, वह क्या इस दुःख से कुछ कम था ? क्या उन्होंने सहन नहीं किया ? इतना ही नहीं अपनी संतानों की रक्षा करने के

लिए और उनके उज्ज्वल भविष्य के लिए दिन-रात परिश्रम नहीं किया ? पति के संन्यास लेने से रूठकर उन्होंने अपनी संतानों की उपेक्षा तो नहीं की ? उठो बेटी! अण्णिग की देखभाल में पति वियोग का दुःख भूल जाओ। देश भी तुम्हारी सेवा की प्रतीक्षा कर रहा है।''

''मामाजी! मैं क्या कर सकती हूँ ?''

''ऐसी निराश मत बनो। कन्नड़-साहित्य की श्रीवृद्धि और विकास तुम पर निर्भर है।....और....''

''कैसे मामाजी! मैं कवि थोड़ी ही हूँ। मैं क्या लिख सकूँगी ?''

''अत्तिमब्बे! कवियों का अस्तित्व तुम जैसी कल्पलता पर निर्भर है। साहित्य की रक्षा करने के लिए समय-समय पर उसकी प्रतिलिपियाँ बनवानी होगी। कवि काव्य लिखें और तुम उसकी प्रतिलिपियाँ बनवाकर रक्षा करो। दोनों का महत्त्व है। एक निर्माता है दूसरा संरक्षक! सृष्टि करने वाले सृष्टि करें। पालन करना तुम्हारे हाथ है। नहीं तो सृष्टि नष्ट हो जायेगी। बेटी तुम जैन साहित्य की प्रतिलिपियाँ कराओ। देश के कोने-कोने तक पहुँचाओ। हो सके जहाँ कहीं आवश्यकता हो वहाँ जिनालयों का निर्माण कराओ। देखो तुम जैसे दान चिंतामणियों पर निर्भर है जैन साहित्य और संस्कृति। जैन धर्म और जिनागम तुम्हारे जैसे उदार चित्त वालों का मुँह ताक रहा है।''

पंप कवि ने इस प्रकार कर्त्तव्य-क्षेत्र का परिचय करा दिया और अत्तिमब्बे के शून्य जीवन को कार्यों से भर देने का प्रयास किया।

''पर मामाजी! वह काम धन से होता है मुझसे नहीं। मैं निमित्त मात्र हूँ। मैं न रहूँ तब भी धन रहेगा ही। अब मुझे यह सब धर्म का बवंडर सा लगता है।''

''और एक बात है बेटी! नागदेव युद्ध में मरे ?''

पंप देव ने दूसरे प्रकार से समझाने का प्रयास किया। बात काटकर अत्तिमब्बे बोली -

''मरे नहीं, किसी हत्यारे ने छिपकर वार किया और हत्या की।''

''ऐसा ही सुना है बेटी-बड़ा अन्याय हुआ और अधर्म भी। फिर भी युद्ध में न जाने कितने जवान कट मरे ?''

''मामा जी! मैं क्या करूँ ? हजारों ढेर हो गए।''

''बेटी! उनकी माँ बहिन और बहुओं का दुःख कौन दूर करे ? उनमें से बहुतों को दो कौर अन्न तक नहीं मिलता होगा। जानती हो बहिन उनकी जिंदगी कैसे दूभर है ? उठो, उनकी सेवा करो। भगवान् की कृपा से तुम्हारे पास सम्पत्ति है। उन अभागों की सेवा में खर्च करो। उन हतभागिनियों के आँसू पोंछो, उनका दुःख तुम समझ सकती हो। तुम ही दूरकर सकती हो।''

पंप देव की बातों का उस पर असर पड़ने लगा।

चालुक्यों के द्वितीय तैलप ने राष्ट्रकूटों को पराजित किया और विशाल साम्राज्य के सम्राट् बने। अपने राजकुमार इरिवबेडंग को युवराज बनाया। अभिषेक का महोत्सव बड़ी धूमधाम से मनाया गया। इस अवसर पर सम्राट् ने लक्कुंडी और मासवाडी के कुल एक सौ चालीस ग्रामों का राजा अण्णिग को घोषित किया। नागदेव को जो राज–सम्मान प्राप्त थे, उन सभी सम्मान को सर्व सेनाधिपत्य के साथ अण्णिग को दिया।

अत्तिमब्बे के सम्बन्धी, नातेदार, रिश्तेदार आदियों ने समयोचित संदेशादि भेजकर, साधुवाद दिया। इस प्रकार हर एक ने उसका उत्साह बढ़ा देने का प्रयत्न किया।

''अत्ति! तुम्हारा यह लाड़ला कैसा भाग्यशाली है।''

पद्मब्बे ने बलैय्या ली।

''हाँ हाँ! सबका भाग्य बिजली के समान चकाचौंध करने वाला अवश्य होता है पर कितने समय के लिए ? यह सब इंद्रचाप–सा आकर्षक अवश्य है, पर मन में आने के पूर्व ही विधि उसे मिटा डालता है। तब उसका नामोनिशान तक नहीं रहेगा। गहरा अंधकार छा जायेगा।''

अत्तिमब्बे ने अपने अनुभव की बात कही।

''जब तक रहता है तब तक वह आकर्षक है। इस आकर्षण में ही सच्चा जीवन है। अण्णिग अब राजा बना – यह सत्य है। जब तक धर्म पर उसका राज्यशासन टिका रहेगा तब तक वह धर्म हमारी रक्षा करेगा।''

पद्मब्बे ने अपना विचार स्पष्ट किया।

''वह ठीक है। राज्य हो या कोष जब तक धर्म से अनुप्राणित हो तो सार्थक रहेगा। तभी उनकी शोभा है। माँ! एक बार हम लोग राज्य की सैर कर

आवें।''

अत्तिमब्बे ने अपनी इच्छा बता दी।

''अत्ति! तुम्हारी इच्छा ही हम लोगों की इच्छा है। हम केवल तुम्हारी हँसी देखना चाहते हैं। तुम हँसती रहो तो बस, हमें कुछ नहीं चाहिए।''

ऐसा पद्मब्बे ने कहा। यात्रा की तैयारी हुई।

''पंप देव ने उस अवसर पर साधुवाद देने के साथ-साथ दीन दुखियों के प्रति अत्तिमब्बे का ध्यान आकर्षित किया।''

अत्तिमब्बे ने पुत्र के राज्य को देख लिया। गाँव-गाँव में राजोचित स्वागत सत्कार हुआ। राजा अण्णिग भी माताजी के साथ ही था। प्रत्येक गाँव को अत्तिमब्बे ने दर्शन दिए। शक्ति भर घर-घर जाकर जनता के सुख-दुःख की बात जानने का प्रयत्न किया। सदा पंपदेव की बात उसके चित्त पर चढ़ी रहती थी। कहाँ मंदिर चाहिए, कहाँ कुँआ चाहिए, कहाँ धर्मशाला चाहिए.... यह सब पूछताछ करके जान लिया। जनता की माँग को पूरा कर दिया। कभी ना नहीं कहा चाहे माँग व्यक्ति की हो या समाज की। जनता ने भी राज-भक्ति से अपार धन-राशि अर्पित की थी। अत्तिमब्बे ने इसे वहीं कुछ न कुछ जनोपयोगी धार्मिक कार्यों में लगा दिया। कहीं खेत पर्याप्त नहीं थे तो तुरंत वहीं के जंगलों से अनावश्यक हिस्सा साफ करके भू-हीन किसानों का घर बसा दिया तो कहीं किसानों के लिए आवश्यक बैल आदि दे दिलाकर उनकी सहायता की।

अत्तिमब्बे ने सोचा लक्कुंडि राजधानी बनने योग्य स्थान है। सबसे पहले वहाँ जिनालय की नींव डाल दी। लाखों स्वर्णमुद्राओं को खर्च करके जिनालय बनाने का संकल्प लिया। उसका मानचित्र बनवा लिया। उसके समाप्त होते ही अण्णिग के लिए महल भी बनवाना चाहा।

एक बार रन्न विजयपुर आया। अत्तिमब्बे से मिलकर नागदेव की मृत्यु पर अपना शोक व्यक्त किया। अत्तिमब्बे को सांत्वना दी।

''रन्न! हमारी यह दशा हुई। तुम्हें कवि चक्रवर्ती बना देने का स्वप्न देखते-देखते उन्होंने आँखें मूँद लीं। उनकी आशा पूर्ण होनी चाहिए।''

ऐसा कहते हुए अत्तिमब्बे रो पड़ी।

''माँ! आपका दुःख कौन दूर कर सकता है ? उसे आप कर्तव्य में भूलने

की चेष्टा कीजिए। मैं कवि चक्रवर्ती बनूँ या नहीं बनूँ सो बात दूसरी है। जब ऐसे कवि चक्रवर्तियों का आश्रयस्थान ही नहीं रहा।''

रन्न ने खिन्न होकर कहा।

''तात! हताश होना बुरा है। वे होते तो तुम्हारी प्रतिभा और विद्वत्ता से अवश्य आनंदित होते और तैलप चक्रवर्ती के दरबार में ले जाते। वहाँ तुम्हें सम्मानित देखकर फूले नहीं समाते!!''

कहकर अत्तिमब्बे अपनी असहायकता पर रो पड़ी।

''आप आँसू न बहाइए। जब वे ही नहीं रहे तो अब मैं मान-सम्मान ले क्या करूँ।''

''बेटा, निराश न बनो। वे चल बसे। पर उनकी अधूरी आशा-अभिलाषाओं को पूर्ण करना हम लोगों का कर्तव्य है। तुम जिस दिन कवि चक्रवर्ती बनोगे उसी दिन मेरे प्रियतम की आत्मा को सच्ची शान्ति मिलेगी।''

''माँ मैं कैसा अभागा हूँ। पितृ-तुल्य मेरे स्वामी का अंतिम दर्शन तक नहीं पा सका। उस समय धूप देना तक मेरे भाग्य में नहीं बदा था। कम से कम आप कहलवा भेजतीं।''

''बेटा! उस अपार शोक में मुझे एक भी नहीं सूझा।''

अत्तिमब्बे का गला गद्‌गद् हो गया।

''माँ मैंने आपको दोष नहीं दिया। मेरे दुर्भाग्य की बात कही।''

रन्न ने कहा।

''क्यों तात! कुछ लिख रहे हो ?''

अत्तिमब्बे ने पूछा।

''अभी नहीं, पर लिखने की बात सोच रहा हूँ।''

''परमात्मा पर भरोसा रखकर लिखना प्रारम्भ करो। मामाजी से कहकर अवश्य मैं चक्रवर्ती के पास भिजवा दूँगी।''

अत्तिमब्बे ने प्रोत्साहन दिया।

''अब मेरी एक प्रार्थना है।''

रन्न ने विनती की।

''कहो बेटा! मेरे लिए तुम और अण्णिग दोनों एक से हो। जो चाहे माँगो। पैसे की कमी हो तो लो, जितना चाहे उतना लो। संकोच मत करना।''

ऐसा कहकर तिजोरी की तालियाँ उसके हाथ दे दी।

''माताजी! आपके आशीर्वाद से रुपये-पैसे के लिए मुझे इतनी दूर आने की आवश्यकता नहीं पड़ती। आपका नाम लेते ही रुपये मिल जाते हैं। हाल ही में चामुण्डराय जी बंकापुर आए थे। इधर जो कुछ उथल-पुथल मचा सब उन्हीं से जाना। राष्ट्रकूटों के पतन और अप्पाजी की मृत्यु की बात भी उन्होंने बड़े संकट से कही। सुनकर अजितसेनाचार्य जी रो पड़े। आचार्य जी ने मुझे आपके पास भेजा है।''

''आचार्य जी की आज्ञा शिरोधार्य है। अवश्य मैं उसका पालन करूँगी। हाँ, मुझसे बड़ा अपराध हुआ है तात! कि पहले....''

अत्तिमब्बे की आवाज अपराधी की सी लड़खड़ा रही थी।

''माताजी, अब भूल चूक की बात नहीं। उसे भूल जाइए। जो होना था हो चुका। अब जैन-धर्म, जैन साहित्य और जैन संस्कृति का नाश नहीं होना चाहिए। ये रत्न-त्रय हैं। अब इनकी रक्षा का भार आप पर है। अब राष्ट्रकूटों के पतन से अपार क्षति हुई है उसे आप भर सकती हैं। यही अजितसेनाचार्य जी का संदेश है।''

रन्न की ध्वनि कंपित थी।

''तात! कैसा भार मुझ पर लादा जा रहा है। सो भी एक विधवा पर, इतना भार ? यदि वे रहते तो मैं बिना आना-कानी किए हामी भर देती। मैं ही अनाथ हूँ। मैं क्या आश्रय दूँगी ? मैं धर्म-कर्म हीन विधवा हूँ। मैं कैसे धर्म की रक्षा कर पाऊँगी ? संस्कार विहीन विधवा से संस्कृति का बचाव होगा ? मैं एक दुर्बल नारी हूँ। तिसपर पतिहीना दीन दुखिनी हूँ। मुझसे कवियों को आश्रय मिल सकेगा ? जैन साहित्य अपार है। उसका पुनरुद्धार क्या मुझ हत भागिनी से संभव है ? जो भार राष्ट्रकूट सार्वभौम संभाल रहे थे, उसे इस भाग्यहीन नारी पर लादना क्या उचित है ?''

अत्यन्त हताश होकर अत्तिमब्बे बोली।

''माताजी! आप हीन-भावना का त्याग कीजिए। आप तो महा-महिमामयी

हैं, उदार हैं, आप सुसंस्कृत महिला हैं, आपसे क्या नहीं होगा ? आचार्य ने सोच-समझकर ही आपको इस कार्य में नियोजित किया है। शुभ-संकल्प कीजिए। शुभ ही होगा।''

रन्न ने आत्म-विश्वास जगाने का प्रयत्न किया।

रन्न! तुम भी ऐसा कहते हो ? वत्स! मेरी योग्यता ही कितनी है ? मैं अकेली क्या कर पाऊँगी। आचार्य का आदेश टालते नहीं बनता, क्या करूँ ?

अत्तिमब्बे सिर पर हाथ धरे बैठ गई।

''माताजी! आपके संभाले जैन समाज अब संभल सकता है। राजाश्रय की प्रतीक्षा में बैठे रहना उचित नहीं है। जनता स्वयं यह भार उठावे। अजेय जन-शक्ति राजा-महाराजाओं से भी बढ़कर ऐसा कार्य कर सकती है, इसका प्रमाण आप दे सकती हैं। आप नारी रत्न हैं। आप सबके सम्मुख एक जीता जागता आदर्श बनकर विराजें। इसीलिए मैं आपकी ओर से आचार्य जी को आश्वासन दे चुका हूँ।''

रन्न ने कहा।

''रन्न! क्यों तुमने ऐसा किया ? बिना सोचे समझे ऐसा वचन दे देना क्या उचित है ? आखिर मेरी शक्ति और सामर्थ्य को क्या जानते हो ? अकेली मैं क्या कर पाऊँगी ?''

''माताजी! यदि आप चाहें तो सौ-सौ सम्राट् भी नहीं कर सके इतना कर सकती हैं। मुझे पूरा विश्वास है।''

''रन्न मेरे पिताजी कहा करते थे कि कवियों का व्यवहार ज्ञान शून्य सा रहता है। आज उस कथन का अर्थ समझ गई। क्या एक अबला नारी सम्राटों की बराबरी कर पायेगी ?''

व्यंग से हँस पड़ी।

माताजी! आपने देखा है कि युद्ध से कैसा अनर्थ हुआ ? आपके आँसू अब वरदान बनें। आप जनता में सच्चे धार्मिक संस्कार डालने का प्रबन्ध कीजिए। हिंसा को मिटा डालने के लिए अहिंसा का प्रचार कीजिए। इस नरहत्या को रोकने के लिए लोगों को सुसंस्कृत बनाइये। अब जो पति पुत्र हीन अबलाएँ हैं, उन्हें आश्रय दीजिए। उनकी सहायता से अनाथ शिशुओं की रक्षा का भार उठाइये और

नव निर्माण की नींव डालिये.... यही आचार्य के संदेश का तात्पर्य है।

''तात! आचार्य जी तपस्वी हैं। उनके आदेश का पालन करना हमारा कर्तव्य है। मैं अपनी सीमा से भी परिचित हूँ। फिर भी इतना आश्वासन दूँगी कि हाँ अपने जीवन के प्रत्येक क्षण मैं सांस्कृतिक कार्य के लिए अर्पित कर सकूँगी। अपनी सारी सम्पत्ति का उपयोग उसके लिए कर दूँगी। इतना मेरी ओर से आचार्य-चरणों में निवेदन करना।''

तब रन्न ने अत्यन्त दीन भाव से कहा -

''माँ! मेरी भी एक प्रार्थना है। आप उसे स्वीकार करें।''

''रन्न! तुम ही मेरी पहली संतान हो। अण्णिग के समान ही तुमको मानती हूँ। तुम्हें क्या संकोच है ? मन की बात कहो।''

''वरदायिनी माता सरस्वती के समान आश्वासन दिया।''

''माताजी! चामुण्डराय जी अत्यन्त आदर के साथ मुझे निमंत्रण दे रहे हैं। आपकी अनुमति मिले तो मैं उनके यहाँ कुछ दिन रहना चाहता हूँ।''

रन्न ने निवेदन किया।

''रन्न! मेरे रहते औरों के यहाँ जाने की आवश्यकता क्या है ? किसी का मुँहताज क्यों बनना चाहते हो ? जो चाहे मुझ ही से ले लो।''

अत्तिमब्बे की ध्वनि में तिरस्कार का भाव था।

''माताजी! आपसे निराश होकर थोड़े ही मैं चामुण्डराय के यहाँ जा रहा हूँ। उनकी प्रार्थना स्वीकार करके वहाँ जाने का आदेश आचार्य अजितसेन जी ने दिया है। पर आपकी अनुमति के बिना मैं कैसे जा सकता हूँ। मैं गुरुजी के आदेश से बढ़कर माँ की इच्छा मानता हूँ। आप जो भी कहें मैं मानने को तैयार हूँ।''

रन्न से स्पष्ट किया।

''रन्न! आखिर तुम्हारी क्या इच्छा है ? जाना चाहते हो तो जाओ। पर निराश्रित मानकर मत जाओ। जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम आराम से यहाँ रहो। अपने को अनाथ मानने का कारण नहीं। समझे।''

''माताजी! क्या मैं आप पर संदेह कर सकूँगा ? आप ही के कृपाश्रय से आज मैं एक मनुष्य हूँ। नहीं तो न जाने किसके यहाँ पानी भरते या रसोई पकाते पड़ा होता। आपकी कृपा से पढ़ा-लिखा हूँ। आपकी कृपा है कि आज चामुण्डराय

जैसे महानुभाव मुझे अपने यहाँ बुला रहे हैं।''

रन्न की ध्वनि में कृतज्ञता सनी हुई थी।

''तात! जाओ, कवि हृदय में जगह-जगह भ्रमण करते रहने की इच्छा बनी रहती है। रावजी तो बड़े महानुभाव हैं। पर एक बात याद रखना कि जब तक तुम्हारा आदर सत्कार होता रहेगा। तब तक वहाँ रहना। कहीं किसी भी कारण से जरा-सा अनादर देखा तो यों ही चले आना। तुम्हारे लिए मेरा द्वार सदा खुला रहेगा।''

इतना कहते-कहते अत्तिमब्बे का गला बैठ गया। आँसू बह निकले।

रन्न ने झुककर आपकी पद-धूलि उठाई और उसे सिर-आँखों पर रखा।

''तात! रावजी के साथ जा रहे हो तो न जाने फिर कब हमारी और तुम्हारी भेंट होगी। इसलिए चाहती हूँ कि तुम विवाह कर लो। तब कहीं मैं निश्चिंत होऊँगी।''

इस प्रकार अत्तिमब्बे ने रन्न के विवाह का प्रश्न छेड़ा।

''जैसी आपकी इच्छा। मैं कभी आपकी बातों का उल्लंघन नहीं कर सकता।''

क्या कहीं कन्या देखी जाए ?

''माताजी एक बात मानिए। मेरे पिताजी को समाचार भेजिए। संभव है कि कहीं उन्होंने कन्या देखी होगी।''

रन्न ने कहा।

जिनवल्लभ की बहिन की यमज संतानें थीं। बड़ी का नाम शान्ति छोटी का जक्कि था। इनके सगे-सम्बन्धियों में अधिक पढ़ा लिखा रन्न ही था। कन्याओं के पिता आदिराजु का आग्रह था कि या तो दोनों कन्याओं का पाणिग्रहण करें या नहीं। विजयपुर में ही विवाह महोत्सव सम्पन्न हुआ। रन्न का विवाह उस ठाट बाट के साथ सम्पन्न हुआ जैसे किसी राजकुमार का हुआ करता है।

जक्कि और शान्ति के साथ रन्न का चामुण्डराय के दरबार में जाना निश्चय हुआ।

❑❑❑

13.

रन्न को विदा करते समय अत्तिमब्बे ने अपने और गुंडुमब्बे के गहनों को अत्यन्त उदारता से शान्ति और जक्कि में बाँट दिया। निर्धन परिवार की वे कन्याएँ इतना आभूषण पाकर कृतकृत्यता का अनुभव करने लगीं। उनकी दृष्टि में अत्तिमब्बे सामान्य मानवी नहीं साक्षात् देवी थी। तलकाडु जाने के पूर्व उनको उतना ही दुःख अत्तिमब्बे को छोड़ते हुआ जितना नैहर छोड़ते हुए हुआ था।

उन बहुओं की विदाई के बाद फिर अत्तिमब्बे के जीवन में उदासी उतर आई। विवाह की धूम स्तब्ध निराशा में बदल गई। अत्तिमब्बे सदा यही सोचा करती थी कि राष्ट्रकूटों का पतन हमारे ही कारण तो हुआ। इससे समाज और धर्म का जो भी नष्ट हुआ है उसे क्यों कर भर पायेगी ? ऐसे अवसर पर गुंडुमब्बे की सलाह और आश्वासन बड़े काम का होता है। पर वह अब कहाँ ? एक बार अपनी सास से मिलकर अत्तिमब्बे ने प्रश्न किया –

''क्या हमारे ही कारण राष्ट्रकूटों का नाश हुआ ?''

''अत्ति! क्यों व्यर्थ माथा पच्ची कर लेती हो ? क्या कोई किसी का नाश कर सकेगा ? राष्ट्रकूटों का पुण्य क्षय हुआ। तभी उसका वैभव मिटा। साम्राज्य गया। क्या तुम षड्खण्डाधिपति भरतेश की कथा नहीं जानती! भरतेश का दावा था कि उनके समान षट्खण्डों पर किसी और का आधिपत्य पहले नहीं हुआ था और शायद ही आगे हो। अपने नाम पर शिला शासन खुदवाने के उद्देश्य से घमण्ड के साथ वृषभाद्रि गए। वहाँ अपना यशोगान लिखवाना चाहते थे पर कहाँ लिखवाते ? वहाँ देखते हैं कि कई पूर्वज चक्रवर्तियों के कई लेख पड़े हुए हैं। गिनते गए; पर कहीं उसका अंत दिखाई नहीं दिया। बेटी, हम जिसे नया समझते हैं, वह न जाने कितने बार हुआ रहता है। उन्होंने कई बार चालुक्यों को हरा दिया था ? अब उनकी अवनति का काल आया। हार गए। हम कैसे अपने सिर पर इसका जिम्मा उठा लें ?''

पद्मब्बे ने इन शब्दों में सांत्वना दी।

''माताजी! अजितसेनाचार्य जी ने रन्न के द्वारा कहलवा भेजा है कि....''

''क्या कहलवा भेजा है ? क्या आचार्य जी पधारेंगे ? या आश्रम को धन चाहिए।''

पद्मब्बे के बातकाट कर पूछा।

''आश्रम के किए कुछ नहीं मांगा है। कहलवा भेजा है कि धर्म, संस्कृति और साहित्य की रक्षा का भार हम कंधों पर लें और...''

अत्तिमब्बे की बातें सहसा रुक गई।

''बेटी, ऐसे कामों में हाथ बँटाना हमारा कर्त्तव्य है। कौन तुम्हारा हाथ रोकेगा ? न मैं रोकूँगी न वे। जो चाहे करो। भगवान् का दिया है काहे के लिए ? जितना बने करते जाओ।''

''सर्वप्रथम अहिंसा का प्रचार करना चाहिए। अब लोगों को व्यक्तिगत झूठी प्रतिष्ठा की बात भूलने के लिए प्रेरित करना होगा।''

''इस प्रतिस्पर्धा का ही परिणाम देख रहे हैं। युद्ध कभी न हो ऐसा कुछ करना होगा। अब जो उजड़े हैं उनको बसाना होगा। अनाथ शिशुओं की देख-रेख का प्रबन्ध करना होगा। दीन-दुखियों की सेवा करनी पड़ेगी। इस पर धर्म संस्कृति और साहित्य का भार भी उठाना हो तो न जाने कितना धन लगेगा।''

अत्तिमब्बे ने अपनी समस्या बताई।

''अत्ति! धन की चिंता मत करो। अपने पास जो कुछ है सब खर्च हो जाए तब भी चिंता करने की बात नहीं। तुम्हारा बेटा अब राजा है। समझो कि हमें कल्पवृक्ष की छाया मिली है। हम अब जो चाहे कर सकते हैं।''

पद्मब्बे ने भरोसा दिया।

''अत्तिमब्बे ने देश की सुव्यवस्था का प्रबन्ध करके सैंकड़ों लिपिकारों को नियुक्त किया। बंकापुर से मंगाए गए ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ उतरवाने लगी। प्रत्येक ग्रन्थ की सौ-सौ प्रतियाँ तैयार होने लगीं। यह देखकर दल्लप दंग रह गया। मल्लप प्रसन्न हुआ। हाथियों पर लदे ताड़पत्र देखकर सब आश्चर्यचकित हुए। हजारों कंठ (धातु की कलम) बनवाए गए। कंठ भी लोहे या चाँदी के नहीं सोने न्के बनवाए गए। प्रतिलिपिकारों से ताड़पत्र पर जैन आगमों और शास्त्रों की प्रतियाँ बनने लगीं।''

इतने बड़े पैमाने पर कभी किसी ने प्रतिलिपियाँ बनवाने का प्रयत्न नहीं

किया था। अत्तिमब्बे ने सहस्रों प्रतिलिपियाँ बनवाकर जैन मठों को दान दिया। जैन संन्यासियों को शास्त्र दान दिया। जिन ग्रन्थों की प्रतिलिपि करने में आठ-आठ साल लगते ऐसे श्री धवल, श्री जयधवलादि ग्रन्थों की भी सैंकड़ों प्रतियाँ बनाई गईं।

अत्तिमब्बे की दृष्टि लोक-व्यवहार से उचट गई। आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होने लगी। घर पर रहते हुए अंतर्मुखी रहती। तपस्या करती। जैन मुनियों की सेवा में लगी रहती। एक ओर से जिनालयों की मरम्मत का प्रबन्ध किया। जहाँ कहीं जैन श्रावक अधिक संख्या में रहते थे। वहाँ स्वयं जिनालय बनवाने लगी। लक्कुंडी का जिनालय इस ढंग से बनवाया गया कि वह हर दृष्टि से असदृश बन जाये। कई अग्रहार बनवाये। मंदिरों का निर्माण हुआ। अन्नदान का प्रबन्ध किया। अनाथालय बनवाये। शास्त्र प्रवचन और काव्य-वाचन की व्यवस्था बड़े पैमाने पर हुई।

अत्तिमब्बे ने कन्नड़ साहित्य की ओर विशेष ध्यान दिया। संस्कृत, प्राकृत तथा अर्धमागधी ग्रन्थों का आदर समस्त भारत में हुआ करता है। अतएव उन ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ कहीं न कहीं होती रहती हैं। पर दुर्विनीत, जयबंधु, कुमदेन्दु, गुणवर्मा जैसे कोरे कन्नड़ के कवियों के कृतिरत्नों का तथा पंपदेव के आदिपुराण, विक्रमार्जुन, विजय, पोन्न कवि के भुवनैक रामाभ्युदय और शान्तिपुराण का आदर कर्नाटक मात्र में संभव है। इनकी प्रतियाँ कन्नड़ जनता ही बना सकती है क्योंकि वही उन्हीं के काम की होंगी। अतएव कन्नड़ जनता की उपेक्षा इस सम्बन्ध में कदापि नहीं होना चाहिए।... ऐसा सोचकर जहाँ अन्य ग्रन्थों की सौ-सौ प्रतियाँ बनवा रही थी वहाँ कन्नड़ ग्रन्थों की हजार-हजार प्रतियाँ बनवाने लगीं। राजा-महाराजाओं ने भी इतनी प्रतियाँ नहीं बनवायी होंगी।

इस प्रकार अत्तिमब्बे कवि कुल के लिए चिंतामणि बन गयी। जनता के लिए दानचिंतामणि बनी। डेढ़ हजार सोने के जिन-प्रतिमा बनवाकर नव-दम्पतियों को निमंत्रित करके ग्रन्थों और जिन-प्रतिमाओं का दान किया और समझाया देखो। तुम आदर्श दाम्पत्य जीवन बिताओ। जिनों की पूजा करो; ग्रन्थों का पाठ करो। तुम्हारे कष्ट दूर होंगे। ऐसे आशीर्वाद देकर विदा करती थी।

वे कहते..जी आपके आदेशानुसार हम यथासंभव चलने का प्रयत्न करेंगे।

''और एक बात। तुम अपने जीवित काल में, जब कभी संभव बने तब

किसी न किसी ग्रन्थ की कम से कम पाँच प्रतियाँ लिखकर दान करते जाओ। यह आश्वासन तुम लोगों से चाहती हूँ।''

''माताजी! आपके शुभाशीर्वाद से पाँच ही क्यों पचास प्रतियाँ बनवाकर दान करेंगे। यह तो हमारे उद्धार की बात है।''

इस प्रकार सहर्ष वादा करते और विदा लेते थे।

इस प्रकार अत्तिमब्बे का दान एक को दस, दस को सौ के हिसाब से बढ़ाते-बढ़ाते व्यापक आंदोलन सा बन गया। कन्नड़ प्रदेश में ग्रन्थों के प्रसार का इतना व्यापक आंदोलन कभी नहीं हुआ था। नव-दम्पतियों के लिए यह एक आवश्यक कर्त्तव्य बन गया। इस प्रकार जब जनता में साहित्याभिरुचि बढ़ गई तो यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कवियों के जीवन पर क्या अच्छा प्रभाव पड़ा करेगा। वे सोचने लगे अब राजाश्रय की आवश्यकता ही क्या है ?

अत्तिमब्बे बंकापुर गई। अजितसेनाचार्य के दर्शन पाये। अपने पुत्र अण्णिग को श्री-चरणों में अर्पित करते हुए निवेदन किया कि आचार्य जी! यही हमारे वंश की एक मात्र ज्योति है। यह सौ वर्ष तक प्रज्वलित रहकर धर्म का प्रकाश फैलाता रहे-ऐसा आशीर्वाद दीजिए।

''क्या पूरा सौ साल का जीवन चाहती हो बेटी।''

आचार्य जी मुस्कुराते हुए बोले।

''स्वामिन्! हम लोगों के कारण राष्ट्रकूटों का पतन हुआ। नहीं तो उनसे धर्म और समाज का बड़ा उपकार हुआ होता। अब मैं और यह सौ-सौ साल जीवित रहकर समाज की सेवा करना चाहते हैं। राज-सुख भोगने के लिए नहीं। जीवन के प्रत्येक क्षण को अहिंसा-धर्म के प्रचार में लगाने के निमित्त चाहती हूँ। आपके आशीर्वाद से धर्माभिरुचि अंत तक बनी रहे।''

''बेटी! तुम साधारण स्त्री नहीं हो। आदिदेव की जननी मरुदेवी के समान तुम भी लोक-कल्याण मार्ग में लगी हुई हो। तुम इस अण्णिग के भरोसे जनता के अपार दुःख दैन्य को दूर करके लोक कल्याण पथ पर अग्रसर हो रही हो। कर्नाटक का कोई भी शासक तुम्हारी बराबरी नहीं कर सकता। तुम व्यक्तिगत शील चारित्र्य से कर्नाटक की आदर्श महिला-मणि हो। इससे भी बढ़कर भक्त शिरोमणि हो और जैन धर्म एवं संस्कृति की तो मुकुटमणि हो। हमने सोचा था कि राष्ट्रकूटों के पतन से जैन धर्म का भाग्य डूब गया पर तुम्हारे योजनाबद्ध कार्यों से

विश्वास हुआ कि जैन धर्म और संस्कृति का नाश असंभव है।''

''प्रभो! आप मुझे न कहिए। आपकी बातों से इस दुर्बल नारी का सिर चकरा जायेगा।''

अत्तिमब्बे ने घबराते हुए कहा।

''देखो बेटी! तुम पक्की हो। कच्ची नहीं। सदियों से पर्वत तल में पड़े-पड़े गुरुतर भार सहकर कोयला अमूल्य हीरा बन जाता है। तब उसकी चमक असदृश हो जाती है। तुम ऐसी ही हीरा हो हीरा। तुम्हें बनाने के लिए नहीं कह रहा हूँ। सत्कर्म देखकर साधुवाद देना चाहिए। तुमने कर्म के मंगलमय स्वरूप का दर्शन करा दिया। तुम्हारा जीवन जितना कल्याणमय है, उससे भी अधिक कल्याण मय तुम्हारे पुत्र का जीवन होगा। अत्तिमब्बे तुम कहीं भी रहो वहीं तीर्थ बनेगा। तुम्हें वाक्सिद्धि का वर प्राप्त है। तुम्हारे स्पर्श से मिट्टी का ढेला भी सोना बन जायेगा।''

आचार्य के हृदयांतराल से बातें निकल रही थीं।

''मैं सिद्धि नहीं चाहती, न स्पर्श से सोना बना देना ही। आपकी चरण धूलि का मूल्य क्या यह सोना है ? आपकी पद-धूलि मेरी आँखों का अंजन बने। आपके श्री-चरणों के प्रभाव से यह मेरा हृदय जिनमंदिर बन जाये। न धन चाहती हूँ। न मान सम्मान चाहती हूँ केवल यही चाहती हूँ कि मेरी जीभ सदा जिनमंत्र जपा करे। मेरे कान जिनस्तुति से भर जायें। मेरा हृदय समवसरण बने और जिनेन्द्र का सिंहासन हो। दीन धर्म की सेवा करने के लिए जितनी बार चाहे मुझे जन्म मिला करे।''

ऐसा कहते-कहते अत्तिमब्बे गद्गद् हो गई।

''बेटी! तुम परम सात्त्विक हो। हमारे जैसे यतियों के लिए भी तुम्हारे दर्शन से स्फूर्ति और प्रेरणा मिला करेगी।''

आचार्य जी ने मुक्त कंठ से अत्तिमब्बे का यशोगान किया।

अत्तिमब्बे बंकापुर में कुछ दिन ठहर गई। आश्रम को चिंता से मुक्त करने के लिए अपनी सम्पत्ति का कुछ हिस्सा दान पात्र करके दे दिया। अपने हाथ से रसोई बनाकर विद्यार्थियों की सेवा की। आश्रम से विदा लेने के पूर्व अजितसेनाचार्य से बोली -

''आचार्यजी! आप हमारे समाज के रत्नों को बटोर कर लाते हैं और उन्हें सान पर चढ़ाकर चमका देते हैं। इन विद्यार्थियों में न जाने कितने अनर्घ्य निकलेंगे। आप बिना संकोच मुझे आज्ञा दे सकते हैं। आपकी सेवा के लिए सदा कटिबद्ध रहूँगी। स्वयं इस आश्रम में परिचारिका बनकर रहने के लिए भी तैयार हूँ। आपके दर्शन से बढ़कर और कोई सम्पत्ति मुझे नहीं चाहिए। इस नश्वर सिंहासन पर बैठने की अपेक्षा समवसरण के द्वार पर परिचारिका बनकर खड़े रहने में अधिक सुख है। यह श्रेय और प्रेय दोनों है।''

यह कहते समय अत्तिमब्बे पुलकित हो रही थी।

''बेटी! ठीक कहती हो। एकाध जन्म में समवसरण के द्वार पर परिचारिका बनकर रहे तो संभव है कि जिन ही बन जाने का पुण्य प्राप्त हो।''

इन शब्दों में नत मस्तक अत्तिमब्बे एवं अण्णिग को हँसते-हँसते आशीष दिया।

❑❑❑

14.

अजितसेनाचार्य जी के दर्शन से अत्तिमब्बे का उत्साह दुगुना बढ़ गया। उसने सोचा कि मानव की आयु सीमित है। कब अंतिम सांस तोड़नी होगी यह कौन जाने। अतएव जो भी कुछ धर्म-कर्म करना है जल्दी से जल्दी करना है ताकि हँसते-हँसते विदा ले सकें। अत्तिमब्बे का संकल्प कर्नाटक के कोने-कोने में पहुँच कर शास्त्र एवं साहित्य की बाढ़ प्रवाहित कर सका।

धर्म वही है जो सबके सुख का साधन हो। इसका स्वरूप समझने पर किसी भी भाषा में समझाते बनता है। संस्कृत में ही धर्म ग्रन्थ रचा जा सकता है, सो बात नहीं देश-कालानुसार जनता की भाषा में, सरल शैली में धार्मिक ग्रन्थों की रचना होनी चाहिए। तभी जनता में धार्मिक भावना जाग्रत होगी; अंधविश्वास दूर होगा। सच्चे ज्ञान के प्रकाश में अधर्म रूपी अंधकार मिट जायेगा।

यह अत्तिमब्बे का कथन था। उसने कन्नड़ भाषा लेखकों के कष्ट को दूर कर देने की प्रतिज्ञा की। पण्डितों से साग्रह निवेदन किया कि वे जनता की भाषा में रचना किया करें, तभी जनता का ऋण चुका सकेंगे। ऐसे व्यक्तियों को चुनचुन कर अपने यहाँ स्वागत किया जो केवल कन्नड़ में ही रचना किया करते थे। उनका आदर और सम्मान इस कदर किया कि कोई राजा-महाराजाओं से भी करते नहीं बने। कर्नाटक में मलय मारुत के समान चक्कर काटते हुए संस्कृति का प्रचार किया। उन दिनों में कर्नाटक में शैव, वैष्णव, बौद्ध और जैन सम्प्रदाय प्रचलित थे। अत्तिमब्बे इन सभी धर्मों का समादर किया करती थी। मठ मंदिरों को भरपूर दान भी देती थी। अतएव यह 'चतुस्समय संरक्षिका' नाम से विख्यात हुई।

राष्ट्रकूटों के पतन के साथ मालव स्वतंत्र बना। दिन ब दिन इनकी शक्ति भी बढ़ती गई। उत्तर के कई प्रदेशों को जिन पर राष्ट्रकूटों का शासन चल रहा था। मालव परमारों ने हड़प लिया। बाद को कन्नड़ जनता पर भी आक्रमण करने लगे। तैलप ने कई बार उनका मुकाबला किया। उनसे लोहा बजा बजाकर थक गया था। अंत में अपने पुत्र इरिवबेडंग के नेतृत्व में बड़ी सेना भेजने का निश्चय किया। इरिवबेडंग यात्रा के पूर्व अत्तिमब्बे से आशीर्वाद पाने के लिए आया। मल्लप तथा

दल्लप दोनों के हाथ जोड़कर होनहार चक्रवर्ती सम्राट् का स्वागत किया।

''माताजी मैं समर-यात्रा पर निकला हूँ। यह मेरी प्रथम यात्रा है। आशीर्वाद दीजिए। ताकि मैं विजयी बनूँ।''

ऐसा कहते-कहते अत्तिमब्बे के चरण-रज उठाकर सिर पर चढ़ा लिया।

''बेटा! क्या तुमको मेरे आशीर्वाद चाहिए ? समर में सम्मिलित होने वालों को आशीर्वाद देने में मुझे भय होता है।''

अत्तिमब्बे पीछे हट गई।

''माताजी! आपको हमारे राज्य की प्रत्येक प्रजा देवता मानती है। आपका आशीर्वाद वज्र-कवच होगा। आपके स्पर्श में संजीवनी शक्ति है। आपकी कृपा दृष्टि से मृतक भी जी उठता है।''

राजकुमार ने प्रार्थना की।

''बेटा! रहने दो। मैं जानती हूँ कि मुझ अभागिनी की योग्यता कितनी है! ज्योतिषी की बेटी विधवा बन जाती है। तुम्हारे कहने के अनुसार रत्ती भर भी मुझ में शक्ति होती तो क्या मैं अपने प्राणेश्वर को खो बैठती ? अपनी प्यारी बहिन को अग्निशय्या पर लेटने की नौबत आती ? अज्ञ जनता मुझे देवी कहकर तृप्ति पाती है। खैर! परमात्मा की कृपा पर भरोसा रखकर जाओ।''

''देखिए, आप मेरे सिर पर हाथ रखकर कह दें कि तुम विजयी बनो।''

ऐसा कहते हुए इरिवबेडंग ने और एक बार चरणों में सिर झुकाया।

अत्तिमब्बे द्रवित हो उठी। बोली -

''बेटा! धर्म युद्ध करो। प्रलोभन में मत फँसो। जाओ। विजयवधू के साथ लौट आओ। धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा।''

अत्तिमब्बे के आशीर्वचन और स्पर्श पाकर इरिवबेडंग को बड़ा आनंद मिला। तब उठकर पास ही बैठे हुए रन्न की ओर देख कर बोला -

''महाकवि की जय! आप समर यात्रा में साथ दें तो अच्छा होगा। आपसे हमारा उत्साह बढ़ेगा और युद्ध के साक्षात् अनुभव से आपका साहित्य सजीव बनेगा।''

''हमारे कविवर्य कोरे लेखनी घिसने वाली नहीं हैं। यह समरपटु, परशुराम के शिष्य हैं। इनका परशुराम चरित एक बड़ा वीररस प्रधान काव्य है। बेटा,

इसलिए युद्ध कोई अपरिचित घटना नहीं है।''

अत्तिमब्बे ने कहा।

''जी हाँ! मैंने भी परशुराम चरित पढ़ा है। ऐसे कविसिंह साथ रहेंगे तो समर-भूमि भी रसागार बनेगी। दो उद्देश्य लिए यहाँ चला आया था। सर्वप्रथम आपसे आशीर्वाद पाना था, पाया। दूसरा, इन महाशय को अपने साथ ले जाना है। आपकी आज्ञा हो तो ये अवश्य साथ चलेंगे।''

इरिवबेडंग ने प्रार्थना की।

''रन्न! क्या कुमार की बात मानोगे ?''

अत्तिमब्बे ने रन्न से पूछा।

''आपका आशीर्वाद मिले और आदेश हो तो मैं कुमार के साथ समर भूमि की यात्रा करके लौट आऊँगा।''

रन्न ने अत्तिमब्बे पर सारा भार डाल दिया।

''रन्न! तुम्हारे द्वार पर भाग्य ही चला आया है। जाओ। देखो, समर में साहस भी कमी न हो और धर्म-ग्लानि भी न हो!''

ऐसा कहकर विदा किया।

''परमारों के साथ महीनों तक लोहा बजाना पड़ा। रन्न स्वयं शस्त्र उठाना चाहता था, पर इरिवबेडंग ने अनुमति नहीं दी।'' बोले -

''अभी क्या बिगड़ा है कि आप हथियार उठा लें। आपकी वाणी सजग हो, आप हमारे जवानों में आग सुलगाइये। उनका समरोत्साह बढ़ाइये - यही हम आपसे आशा रखते हैं - माताजी का भी यही आदेश था न ?''

''युद्ध समाप्त हुआ। इधर रन्न का गदायुद्ध भी समाप्त हुआ। इस काव्य का नाम साहस भीम विजय रखा गया। इरिवबेडंग और साहस भीम में अभेद दृष्टि रखकर काव्य की रचना हुई। दुर्योधन का छल, निर्व्याज एवं निश्छल प्रेम आदि सद्गुणों को भी मुक्त कंठ से सराहकर चरित्रांकन में नवीनता दिखाई गई थीं। स्वाभिमान का सजीव वर्णन काव्य की विशेषता बन गई। कवि ने इरिवबेडंग को काव्य समर्पित किया था।''

चालुक्य सम्राट् तैलप रन्न के गदायुद्ध में अपने पुत्र इरिवबेडंग के युद्ध कौशल का वर्णन देखकर प्रसन्न हुआ। कर्नाटक के सम्राट् के कवि रन्न को कवि-

सम्राट् कहकर समादृत किया। सुवर्ण-दण्ड, कनक-चँवर, हाथी, घोड़े आदि सभी राजगौरव कवि को प्राप्त हुए। बत्तग्राम को जागीर में दिया। रन्न ने इन सारी उपलब्धियों को अत्तिमब्बे के चरणों में अर्पित करके निवेदन किया -

''माताजी! मैं आपका स्नेह-शिशु हूँ। यह सारी प्राप्तियाँ आपकी हैं। आपके पद-रज के सम्मुख इनका क्या, ऐसे हजारों राजा-महाराजाओं से प्राप्त सम्मान भी तुच्छ हैं। अपना कल्याण इन उपाधियों में नहीं, आपकी पद-रज में देखता हूँ। वही मेरे लिए सब कुछ हैं।''

रन्न कवि भाव परवश हुए।

''रन्न तुम्हारी कीर्ति से मेरा हृदय फूले नहीं समाता। तुम्हारी कीर्तिलता जैसे जैसे लह-लहा उठती है, वैसे मेरे हृदय का उत्साह उमड़ पड़ता है। मेरे स्वामी का स्वप्न यथार्थ बन रहा है। अब तक तुमने जो भी काव्य रचना की वह केवल लीला है, शब्द जाल है, लोक प्रसिद्धि की भूख से प्रेरित थी। वह अब मिट गई होगी। अब आत्मोद्धार के लिए काव्य लिखो। तीर्थंकरों की शरणगति ही मेरे लिए, तुम्हारे लिए और समस्त लोक के लिए गतिप्रद है। तीर्थंकरों की लीलाओं का वर्णन करो। तब मैं अपनी ओर से तुम्हें एक पुरस्कार दूँगी - समझे।''

कहकर मुस्कुराई।

''माताजी, आपका शुभाशीर्वाद ही पर्याप्त है। तीर्थंकर पुराण रचूँगा। अब मैं नरकाव्य की रचना में प्रतिभा का अपव्यय नहीं होने दूँगा। शीघ्रातिशीघ्र आपके आदेश का पालन करके कृतकृत्य बनूँगा... फिर से झुककर प्रणाम किया और चरण धूलि का तिलक लगा लिया।''

❑❑❑

15.

चामुण्डराय ने माताजी की आज्ञा मानकर उनकी महदिच्छा को पूर्ण करने के लिए श्रवणबेलगोल के विन्ध्यगिरि शिखर पर बाहुबली की विशाल मूर्ति खुदवाई। यह समाचार हवा के साथ आसेतु हिमालय फैल गया। अभिनव समवसरण क्षेत्र बेलगोल बना। श्रावकों की कतार चींटी की कतार सी लग गई। रन्न कवि ने विजयपुर को समाचार भेजा। चामुण्डराय के आज्ञानुसार रन्न ने अत्तिमब्बे को सपरिवार भगवद् दर्शनार्थ आने का निमंत्रण दिया। राचमल्ल गंग ने तैलप, दल्लप और मल्लप को अलग-अलग निमंत्रण भेजा। अत्तिमब्बे ने निमंत्रण स्वीकार किया। लक्कुंडि की राजमाता को यथासम्मान लिवा चलने का प्रबन्ध रन्न ने कर दिया।

भगवद् दर्शनार्थ करने तक केवल फल और दूध पर रहने का संकल्प अत्तिमब्बे ने किया। यह सुनकर उसके नातेदार और रिश्तेदार सब चिन्तित हुए। कहाँ विजयपुर और कहाँ श्रवणबेलगोल ? जल्दी से जल्दी जाना भी चाहें तो कम से कम पंद्रह दिन लगेंगे। रास्ते में पड़ने वाले जिन-मंदिरों के दर्शन करते हुए जाने लगे तो महीने से कम तो नहीं होगा। उतने दिनों तक कैसे फल खाकर या दूध पीकर रहे ? यात्रा के अवसर पर व्रत-नियमों का पालन कैसे संभव होगा ? शरीर को इतना कसना ठीक नहीं। पद्मब्बे ने इन शब्दों में बहू को समझाया।

''माताजी! मैंने संकल्प कर लिया। उन्नत कुक्कुटेश्वर बाहुबली की प्रेरणा से ही तो ऐसा किया। कुछ नहीं होगा - सब उनकी कृपा है। आप चिंता नहीं करें।''

अत्तिमब्बे ने दृढ़ता से कहा।

''अत्ति! तुम बड़ी हठीली बन गई हो। बड़ों की बात मानना चाहिए। उनके मना करने पर तुम्हें किसी अनुष्ठान में नहीं लगना चाहिए। दूध और फल के बदले रोटी और जल ले लो, समझी।''

अब्बकब्बे ने सुझाया।

''माँ! तुम नहीं खाओगी तो मैं भी नहीं खाऊँगा।''

अण्णिग देव ने कहा। उस समय सहसा उसके आँसू बह निकले।

''अण्णिग! रोओ मत! उनकी प्रेरणा से ही तो ऐसा कर रही हूँ। व्रत उनकी प्रसन्नता के लिए किया जा रहा है, अतः किसी को उसका विरोध नहीं करना चाहिए। यह अनुचित होगा।''

अत्तिमब्बे ने बेटे को समझाने के बहाने सबको समझा दिया और लोगों ने इस बारे में कहना छोड़ दिया।

अत्तिमब्बे ने पंप महाकवि और पोन्न महाकवि को भी कहलवा भेजा। वे आए। फिर नगर भर में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो बाहुबली के दर्शनार्थ उनके साथ जाना चाहे निकले। उनकी सारी व्यवस्था की जायेगी।

असहाय और निरुपाय व्यक्तियों के लिए अत्तिमब्बे कामधेनु थी। उसके सम्मुख जाने पर दरिद्र भी श्री-सम्पन्न बन जाता। कष्ट में पड़े हुए लोगों का कष्ट दूर हो जाता। कहीं वह रोगियों को देखती तो अपने हाथ से उनकी सेवा करती, दवा देती और तंदुरुस्त हो जाने के पश्चात् भी महीनों उनके लिए पुष्टिकर दूध, फल आदि का प्रबन्ध करती। दीन दलितों की सहायता करना उसका व्रत था। जाति-पाति की बात सेवा में नहीं देखी जाती थी। ऐसी अन्नपूर्णा जब यात्रा के लिए निमंत्रण दें तो कौन उस मौके को हाथ से जाने देगा ? कुछ लोग यात्रार्थी बनकर आये। कुछ एक परिचारक वर्ग में सम्मिलित हुए। कल्पवृक्ष की छाया में रहते समय राजा और रंक में विशेष क्या कुछ भी अंतर नहीं रह जाता। अमृत बाँटते वक्त जिस किसी के हाथ में पड़ा वह अमर बन गया।

अत्तिमब्बे का यात्रा-दल प्रतिदिन दस मील चलता। सैंकड़ों बैल गाड़ियाँ थीं। बालक, वृद्ध और रोगी गाड़ियों पर सवार थे। तत्परता से उनकी देख-भाल होती थी। अत्तिमब्बे, पद्मब्बे और अण्णिग एक रथ पर जा रहे थे। औरों के लिए भी यथायोग्य रथ दिया गया था। अत्तिमब्बे केवल दूध और फल ले रही थीं। सो भी दिन में एक बार। पर उसकी शक्ति कुंठित नहीं हो रही थी। सभी यात्रियों से स्वयं मिलकर सुख-सुविधा का विचार करती थी। उनको हिंडोले पर बिठाए शिशुओं के समान संभाले ले जा रही थी। जिन मंदिरों में पड़ाव डालती। सब ग्रामवासियों से मिलकर दान-दक्षिणा आदि से उनका यथायोग्य सत्कार करती थी।

पंद्रह दिन बीत गए। अत्तिमब्बे के स्वास्थ्य में कुछ गड़बड़ी दिखाई देने लगी। वह कमजोर बन गई। दिन में केवल एक बार दूध और फल मित मात्रा में लिया करती थी। पर बिना विश्राम लिए काम करती थी। परिणाम यह हुआ कि सेहत गिरती गई। इतनी दुर्बल बन गई कि लोग घबरा गये।

''बेटी! तुम कर्नाटक की देवी हो। तुम्हारे रहने से यह देश हरा भरा रहेगा। तुम दुर्बल हो तो देश दुर्बल होगा। देश की संस्कृति क्षीण हो जायेगी। दूध और फल ही सही कुछ अधिक लिया करो।''

पंप महाकवि ने समझाया।

''माताजी, आप भूख-प्यास से दुर्बल बनती जा रही हैं, यह किसी को अच्छा नहीं लगता। यह व्रत आपके बूते का नहीं है छोड़ दीजिए। समवसरण के लिए जाने वाले क्या निश्चिंत नहीं रहें ? जिनेश्वर की नहीं आपकी ही चिंता में डूबे रहें! आपने सेवाधर्म की दीक्षा ली है तो व्रतोपवासों की आवश्यकता आपके लिए नहीं है। पंप महाकवि की सलाह मानिए। सोचिए, यदि वृक्ष की जड़ सूख जाये तो वृक्ष कैसे हरा रह पायेगा ?''

रन्न ने प्रार्थना की।

''मामाजी! आप और रन्न रसोपजीवी हैं। आप जैसे व्यक्ति भी मेरे संकल्प में विघ्न डालने का प्रयत्न करें यह क्या उचित है ? इस मिट्टी के ढेले को बड़ा महत्त्व दे रहे हैं; क्या मेरे पीछे ही प्रलय हो जायेगा ? मेरे मुर्गे के बांगने पर ही दिन खुलेगा और मेरे अंगीठी के सुलगाने पर ही खाना पकेगा। ऐसा मानकर चलूँ ? क्या आप समझते हैं कि सब मैं करती हूँ ? ममता ने आपकी समझ को क्या मार डाला है ?''

अत्तिमब्बे ने खिन्न होकर जवाब दिया।

''पोन्नजी! कम से कम आपके कहने पर अत्तिमब्बे मान लें। एक बार कह देखिए। क्या हम लोग चुपचाप देखते रहें और कर्नाटक माता यों भूखे घुलती जाये ?''

पंप ने पोन्न को फुसलाया।

''पंपजी! हम संन्यासी, हम व्रत-नियमों के पालन में कैसे विघ्न डालें ? कौन जाने कि किस व्यक्ति में कौन सी शक्ति छिपी रहती है ? व्रतोपवास से भले ही देह शक्ति कुंठित हो पर आत्म शक्ति की वृद्धि होती है। आप चिंता नहीं

कीजिए।''

पोन्नजी ने उत्तर दिया।

''स्वामिन्! न जाने इस संसार में कितनी बार जन्म ग्रहण किया है। विषय सुख के लिए अनंत काल से अनंत जन्म ले चुकी हूँ। केवल एक जन्म का एक अंश परमपद पर अर्पित करना चाहती हूँ तो भी न जाने कितनी विघ्न-बाधाएँ आ रही हैं। हमारे आत्मीय गुरुजन परिजन ही विघ्न डालते हैं तो क्या करूँ।''

अत्तिमब्बे ने अत्यन्त विषाद व्यक्त किया।

''बेटी! तुम खिन्न न हो। चाहे जो परिस्थिति हो व्रत में बाधा न आने दो। संसार की दृष्टि से तुम और हम दोनों बड़े सनकी हैं। हम दोनों के सिर पर अध्यात्म की सनक सवार है।''

इन शब्दों में पोन्न कवि ने अत्तिमब्बे को आश्वासन दिया।

करीब एक महीना बीता होगा कि यात्री-दल चन्नरायपट्टण पहुँचा। उस रात को वहीं ठहरे। प्रातःकाल स्नानादि से निवृत्त होकर सबने अल्पाहार लिया। अत्तिमब्बे ने अपने नियमानुसार दूध-फल लिया। सिद्धि की प्रतीक्षा में सफल हुए योगी के समान उत्साह से आगे बढ़ी। प्रतिक्षण बड़ी कातरता से परमात्मा के दर्शनार्थ सिर उठा-उठा कर देखती न जाने कब मिले। आधे घंटे भर यात्रा की होगी कि सहसा दर्शन मिले। ऐसा लगा कि बाहुबली अपने मुग्ध मुखमण्डल पर मृदु मुस्कान लिए यात्रार्थियों पर कृपा दृष्टि फैला रहे हों। यात्रार्थियों का स्वागत कर रहे हों। सहस्रों कंठों से एकाएक जयघोष हुआ। कदम-कदम बाहुबली की मूर्ति स्पष्ट से स्पष्टतर बनती गई।

अगल-बगल में धान के खेत थे मानों हरे मखमल बिछा दिए हों। जहाँ तहाँ क्रौंच बगुले आदि पक्षी उड़ रहे थे। एक के बाद एक जलाशय मिल रहा था। जलाशयों में अनगिनत कमल खिले थे। परमात्मा के दिव्य सान्निध्य के सूचक थे ये दृश्य! ब्रह्मानंद रसानंद के आवरण में अधिक आकर्षक बन जाता है। वैसे ही श्रवणबेलगोल चन्नरायपट्टण के प्रकृति-सौन्दर्य से अत्यन्त आकर्षक बनता जा रहा था। पंप कवि का मन चंचरीक बनकर कमल के चारों ओर मँडराने लगा। उन क्रौंचों को देखते ही स्वयं क्रौंच बन उड़ते-उड़ते इन्द्रगिरि पर उड़ जाने का अनुभव करके पुलकित हो उठा। अत्तिमब्बे की दृष्टि में प्रकृति के कण-कण में भगवद्भक्ति ओत-प्रोत दिखाई दे रही थी।

रन्न ने सबसे आगे बढ़कर चामुण्डराय को यात्रा-दल के आगमन की सूचना दी। तुरन्त श्रवणबेलगोल के सदर फाटक पर आकर अगवानी करने चामुण्डराय खड़ा हो गया। पंप महाकवि, दल्लप, मल्लप आदि का स्वागत किया। पोन्न के चरणों में नमस्कार करके पद रज लिया। काललादेवी ने सब स्त्रियों का स्वागत किया। अत्तिमब्बे को अत्यन्त दुर्बल देखकर दंग रह गई। बोली –

''अत्ति! क्यों ऐसी बन गई हो ? क्या कोई बीमारी है ? सेहत अच्छी नहीं ? हमारे स्वामी के दर्शन से अवश्य तुम्हारी सेहत सुधरेगी, अमृत पान करने का आनंद मिलेगा, तुम तो फूले नहीं समाओगी।''

काललादेवी ने प्यार से अत्तिमब्बे के सिर पर हाथ फेरा। अत्तिमब्बे ने झुककर प्रणाम किया और कहा – ''मामी, आपने इस कलियुग में भी समवसरण को धरातल पर उतरवा दिया है। सारा देश आपका आभार मानता है। हमारे जैसे हजारों व्यक्तियों की अपेक्षा आप जैसा एक भी व्यक्ति हो तो देश का सौभाग्य है।''

अत्तिमब्बे ने श्रद्धापूर्वक कहा।

''अत्ति! तुम कहाँ और मैं कहाँ ? जंगम कल्पलता बनकर तुम विचार कर रही हो। तुम्हारी बात सुन चुकी हूँ! तुमने श्री धवल, श्री जयधवल की सौ-सौ प्रतियाँ बनवायी हैं। तुम ही ने तो डेढ़ हजार सुवर्ण प्रतिमाएँ बनाकर दान दिया है। यह क्या कोई मामूली सी बात है ? तुम्हारे दिए सुवर्ण का ढेर लगावें तो ऐसी एक मूर्ति बन सकेगी।''

काललादेवी ने मुक्त कंठ से सराहा।

''माताजी, आप एक बड़ा पर्वत हैं और अत्तिमब्बे करुणा तरंग पूरित महासागर है।''

पंप महाकवि ने इन महिला-रत्नों का काव्यमय भाषा में वर्णन किया।

''मैं पर्वत हूँ और यह सागर तब तो आप शून्य गगन हैं – यही न ?''

काललादेवी की हँसी सबको अच्छी लगी।

''हाय! हाय! उन्नत विशाल और व्यापक वस्तुओं को आपस में बाँट लें तो मेरे लिए बचा क्या रहेगा ?''

रन्न ने घबराते घबराते कहा।

''घबराओ मत रन्न! तुम मार्तण्ड हो कवि मार्तण्ड!''

पंप ने रन्न की पीठ ठोंकी।

''जी! धन्य भाग्य! शून्य में भ्रमण कर सकूँगा और सागर का रस भी ग्रहण कर सकूँगा और पर्वत...''

रन्न की बात पूरी सुनी भी नहीं, सब हँस पड़े।

''सब गोम्मटेश्वर के दर्शन के लिए चले। काललादेवी की इच्छा थी कि दुर्बल अत्तिमब्बे को डोली के सहारे ले चलें।''

''मामी! मुझ पर आपका असीम स्नेह है। मानती हूँ! भला, डोली पर मैं क्यों चलूँ। बच्ची थोड़े ही हूँ।''

अत्तिमब्बे ने असहमति दी।

''बच्ची! तुम बड़ी कमजोर हो। अब हठ मत करो। स्वामी का दर्शन करना मुख्य है। चाहे जैसे उनके पास पहुँचो। बच्चों, बूढ़ों और रोगियों को चढ़कर अपने पास आने का आग्रह दयामय गोम्मटस्वामी का नहीं है। जैसे-तैसे ही सही उनके पास पहुँचे यही मुख्य है। अपनी कृपा दृष्टि से, मंदस्मिति से अपने पास आने वालों को देख लेते हैं। हम सोए-सोए गोम्मट का भजन करें तो वे बैठे-बैठे सुनेंगे। बैठे-बैठे गाएँगे तो खड़े-खड़े सुनेंगे। हम खड़े होकर यशोगान करें तो नाचते हुए सुनेंगे। हम उनके भजन कीर्तन में मग्न होकर झूमें तो अपना साम्राज्य ही दे बैठेंगे! अत्ति, तुम मेरी अतिथि हो हमारे कहने के अनुसार चलना ही होगा। तुम डोली में बैठो।''

काललादेवी ने आग्रह किया।

''मामी! कृपया इस विषय में मुझ पर दबाव न डालिये। मैं केवल निमित्त मात्र हूँ। गोम्मटस्वामी मुझे अपने सान्निध्य में उठा ले जायेंगे। ऐसे कृपालु के पास जाने के लिए इन बेचारों के कंधों पर चढ़ूँ ? उनका नाम जपकर जीव ऊर्ध्वगामी बनते हैं! क्या यह पहाड़ चढ़ नहीं पाऊँगी ?''

अत्तिमब्बे ने दृढ़ता पूर्वक कह दिया।

''अत्ति, क्या तुम्हारी बुद्धि घास चरने लगी है ? निर्जल निराहार रहने से तुम्हारी देह एकदम कमजोर हो गई है। पैदल निकलोगी तो उनके पास तक पहुँच ही न सकोगी। बेटी, बड़ों की बात मानों। डोली पर चढ़ो।''

कुछ स्नेह भरी अधिकारवाणी से अब्बकब्बे ने कहा।

''माताजी, आप क्या उस मेंढ़क की कहानी भूल गई ? उसने महावीर स्वामी का समवसरण देखने की अभिलाषा से एक जल पुष्प लेकर विपुलाद्रि पर जाने का संकल्प किया। वह गुणस्थान से गुणस्थान पर चढ़ने वाले महासाधक की भाँति चढ़ते-चढ़ते जा रहा था कि रास्ते में श्रेणिक महाराज की सवारी आई। तब एक अनहोनी घटना हो गई। हाथी से वह मेंढ़क कुचला गया। भगवान् के दर्शन की लालसा लिए वह चल बसा। उसके अंतःकरण में समवसरण का दृश्य समा गया था। अतएव समाधिमरण का फल पाकर वह देवता बना। विमान पर चढ़ कर महावीर के समवसरण समारोह पर श्रेणिक से पहले ही जाकर सम्मिलित हुआ। बीच रास्ते आप जिस अनिष्ट की संभावना देख रहे हैं वह संभव बन जाये। अहोभाग्य है। पर कहाँ मैं उस योग्य हूँ।

अत्तिमब्बे भावावेश में बोल उठी। लोगों ने सोचा कि उससे कुछ कहना ही व्यर्थ है।

अत्तिमब्बे का उत्साह बेहद था पर देह की शक्ति सीमित थी। दस एक कदम चढ़ सकी पैर ने जवाब दे दिया। आगे चढ़ना संभव नहीं हुआ। बीच बीच में दम लेते हुए चढ़ने लगी। सो भी कुछ दूर तक। आगे वह भी असंभव बन गया। शान्ति और जक्कि सहारा देने को तैयार होकर बोली -

''मामी! हम दोनों के सहारे चढ़ सकती हो। तुम कंधों पर हाथ रखे रहो। हम संभाल लेंगे। .... शान्ति ने विनती की।''

''शान्ति! क्या नहीं जानती हो कि सबको अपना-अपना कर्म फल आप भोगना पड़ेगा ? यहाँ सहारा दे सकती हो, पर भवसागर में डूबी हुई मुझे कौन सहारा दे पायेगा ?''

बड़े मार्मिक ढंग से प्रश्न किया।

''आप तो सारा पुण्य अकेली बटोर लेना चाहती हैं। हम लोगों को भी कुछ प्राप्त करने का मौका देतीं।'' जक्की ने आक्षेप किया।

''बेटी! संकल्प करने पर दृढ़ता से पालन करना चाहिए। जैसे-जैसे शारीरिक सुख सुविधाएँ अधिक होती हैं, वैसे ही वैसे हम भगवान् से दूर-दूर पड़ते जाते हैं। धर्म से घबराने लगेंगे। जन्म जन्मान्तरों में इस घोंसले को आराम पहुँचाने का ही तो प्रयास किया है ? इतना सुख पाकर भी इस देह ने आत्मोन्नति के लिए क्या किया है ? शान्ति! मैं देह के अधीन नहीं हूँ देह को अपने वश में

रखना चाहती हूँ कि माँ के समान तुम मेरी शुभकामना देने जा रही हो।''

अत्तिमब्बे ने खिन्न होकर कहा।

पहाड़ को कुचलते हुए आकाश में सिर तानकर वह विराट बाहुबली की मूर्ति दर्शनीय थी। विषय रूपी-वासना बादल उसके माथे पर खेलते रहे। उस मूर्ति का एक ही बार में देख लेना हमारी आँखों के बूते की बात नहीं। अखण्ड दृष्टि, भला अविकसित आत्माओं के लिए कैसे संभव हो सकती है! अतएव हम खण्डशः दर्शन पा सकेंगे। सहस्र दल कमल पर बाहुबली खड़े हैं। चरणों के चारों ओर वामी बने हैं, मानों घातिकर्म उस रूप में खड़े-खड़े अपने अनाथ बन जाने का दुःख सुना रहे हों। उस वामियों के विवरों से सर्प झांक रहे हैं। मंदारलता वहीं पदतल का आश्रय पाकर ऊपर चढ़ती गई है, जो घुटनों के सहारे चढ़ते-चढ़ते किसी प्रकार का हाथ का सहारा पा लिया है; वहाँ से बाहुओं में लिपटते हुए यत्र-तत्र फूलों की गुच्छाओं से सुशोभित है।

दर्शकों की दृष्टि भी लताओं का अनुसरण करते हुए ऊपर को चढ़ती जाती है। विशाल वक्षस्थल देखना चाहिए, कैसा विशाल है। भूमण्डल को छोटी गेंद के समान फेंकने में समर्थ महाशक्तिशाली बाहु हैं। ठोडी कैसे आकर्षक है! जरा ऊपर दृष्टि ले जाने पर मूर्ति कला की चरम परिणति से लगने वाला मृदु मंदहास ओंठों पर दिखाई देगा। मंदहास की लहरें अनंत सुख की तरंगों से दिखाई देंगी। नाक, आँख, भौंहे और भाल, घुंघराले केश- एक से एक बढ़कर चित्ताकर्षक हैं। मूर्ति-कला की सीमा बाहुबली का यह पाषाण-प्रतीक है।

अत्तिमब्बे ने मूर्ति की इस भव्याकृति की झांकी पाकर कृतकृत्यता का अनुभव किया। सहसा तब नागदेव और गुंडुमब्बे का स्मरण जाग्रत हो उठा अर्थात् प्रशांत सागर तल से बड़वानल प्रज्वलित हो उठा।

''स्वामी! तुम्हारे दर्शन पाने तक उनको जिलाए रखते। तुम्हारे ही समान वे भी स्वाभिमानी थे। तुम्हारे ही जैसे वे भी साहसी थे। यदि जीवित रहते तो तुम्हारे ही जैसे संभव है कि वे भी त्यागी बने होते।''

अत्तिमब्बे बड़बड़ाने लगी।

''गुंडू! तुम हतभागिनी हो। प्रभो! आज वे दोनों जीवित होते तो तुम्हारी मूर्तियाँ बनवाकर भारतवर्ष के कोने-कोने में प्रतिष्ठापित करते अर्थात् राष्ट्र को रक्षा कवच से मढ़ते। हमारी गुंडू का हृदय इतना उन्नत और विशाल था कि उसकी

विशालता की समता क्या सागर कर पाते! प्रभो उन दोनों को मुझसे छीन कर मुझे अंधा कर रखा।''

अत्तिमब्बे की परा-वाणी से आकाश भी काँप उठा। ठीक उसी समय वहाँ किसी बूढ़ी को लिये कोई आया और वह उस बूढ़ी से पूछने लगा -

''नानी! हम परमात्मा के निकट आए हैं। क्या उसके चरणों तक पहुँचा दूँ।''

''चरणों के पास! नहीं-नहीं। मुझे यहीं बैठने दो। जब तक मेरी दृष्टि मुझे नहीं मिलेगी तब तक मैं अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगी।''

ऐसा कहते-कहते कुछ दूर सरक कर बैठ गई। उसे किसी का स्पर्श हुआ सा लगा।

''यह क्या है ? क्या किसी को कुचला ? हाय हाय।''

बूढ़ी ने कहा

''बूढ़ी माँ! मैं। मेरा नाम अत्तिमब्बे है।''

अत्तिमब्बे! यह नाम सुनते ही बुढ़िया के शरीर में बिजली का संचार हुआ। बोली -

''कौन अत्तिमब्बे ? तुम्हारा गाँव कौन-सा है ? इसी नाम की एक देवी विजयपुर में रहती है।''

''हाँ-हाँ! मैं विजयपुर की अत्तिमब्बे हूँ।''

''तब तो मेरा अहोभाग्य है। ठीक समय पर मिली हो। तुम दानचिंतामणि हो न ? तुम कल्पतरु हो। चिंताग्रस्त व्यक्तियों के लिए चिंता दूर करने वाली चिंतामणि हो। माँ तुमने सबकी इच्छा पूर्ण की है। मेरी भी इच्छा पूर्ण करो। मुझे दृष्टि दान दो।''

उस बुढ़िया ने ऐसे गिड़गिड़ाकर माँगा कि जैसे कंगाल श्रीमंतों से माँगा करते हैं।

''बूढ़ी माँ तुम्हारा गाँव कहाँ है ?''

''कोल्हापुर। वहाँ से रवाना होते समय दृष्टि अच्छी थी। मेरे पास पैसे नहीं थे। हमारे गाँव से कुछ लोग चले। उनके पीछे-पीछे चल पड़ी। वे बड़े धर्मात्मा थे। रास्ते भर मुझे खिलाते-पिलाते रहे। जब तक आँखें सूझ रही थीं पैदल

स्वतंत्र चलती रही। पर जैसे-जैसे दृष्टि धुँधली सी हुई, गाड़ी पकड़कर उसके साथ चलने लगी।''

''तब क्या तुम्हारी दृष्टि गाँव से निकलते समय स्पष्ट थी ?''

''जी। बहुत अच्छी थी। गाँव से निकले तीन महीने बीत गए। अभी-अभी एक सप्ताह पूर्व मैं स्पष्ट देख सकती थी। धीरे-धीरे आँख बुझती गई। अब तो महाशून्य है कुछ भी दिखाई नहीं देता। देवी एक बार मेरा स्पर्श करते हुए बोलो कि तुम्हारी दृष्टि प्राप्त हो। मुझे विश्वास है कि मेरी दृष्टि साफ हो उठेगी। मैं देख सकूँगी। एक बार मैं अपने प्रभु को देखना चाहती हूँ। बाद को मेरी दृष्टि सदा के लिए बुझ जाये।''

''बूढ़ी माँ! क्या तुमने इससे पूर्व मुझे कहीं देखा था ?''

''हमारे देश में तीन व्यक्ति इतने प्रसिद्ध हैं कि उनको जिन्होंने नहीं देखा वह सचमुच अभागा ही होगा। उन तीनों में पहला स्थान तुम्हारा है, अत्तिमब्बे तुम्हारा है। दूसरा स्थान काललादेवी का और तीसरा स्थान है इन बाहुबली का। इनको देखने के बाद और कुछ नहीं देखा तो कोई नुकसान नहीं। प्रथम दोनों को मैंने कोल्हापुर में देखा था। अब मेरे प्रभु के दर्शन के लिए पाँच सौ मील पैदल आयी। पर आखिरी घड़ी में निगोड़ी आँख बुझ गई। अब देवी दृष्टि दान दो। हे दानचिंतामणि! नहीं तो मैं यहीं अनशन करके मर जाऊँगी।''

''बूढ़ी माँ! मैं भी एक सामान्य अबला नारी हूँ। दृष्टिदान देने की क्षमता मुझमें कहाँ ? पुरखों ने संग्रह करके अपार सुवर्ण-राशि छोड़ी थी। उसे बाँट बाँटकर खाली करती आई। यह अपनी मेहनत की कमाई थोड़े ही थी। जनता की सम्पत्ति थी जनता में बाँटी गयी। तालाब का पानी तालाब में ही समा गया। बस कृतज्ञ जनता मुझे दानचिंतामणि कहकर सम्मानित करती है।''

''रहने दो देवी! मेरे लिए प्रभु से प्रार्थना करो किसी तरह दृष्टि-दान दो।''

''बुढ़िया बच्ची सी मचलने लगी। अत्तिमब्बे के चरण पकड़कर रो पड़ी। अत्तिमब्बे का अंतःकरण विश्वानुकंपा से द्रवित हो उठा। सीधे उठकर प्रभु के चरणों के निकट आयी। प्रभु के चरणों का शुद्ध जल से अभिषेक किया। उस जल के साथ आँसू भी मिले थे। उस पादोदक की कुछ बूँदें उस बुढ़िया पर छिड़की गई। अत्तिमब्बे ने आँखें बंद करके प्रार्थना की।''

''हे प्रभो! यह एक जीव है जो तुम्हारे दर्शन के लिए लालायित है। हे दयामय! दया करो। कृपालु! कृपा करो। मैं अपनी एक आँख से तृप्त होऊँगी। दूसरी आँख की ज्योति इस बुढ़िया को मिल जाये। हे प्रभो बुढ़िया को आँखें नहीं दी तो तुम्हारे सिर मेरी सौंह।''

इस प्रकार अत्तिमब्बे ने भक्ति परवश होकर कहा। पादोदक के स्पर्श से उस बुढ़िया ने यह अनुभव किया कि मानों चाँदनी ही उस पर छिड़की गई। सूरज पर से बादल जैसे हट जाता है वैसे ही आँख पर से यह परदा भी हटा जिस कारण दृष्टि बुझ सी गई थी। उसका कुतूहल और उत्साह जैसे जैसे बढ़ता गया वैसे ही वैसे उसकी दृष्टि भी स्पष्ट बनती गयी। ठीक उसी समय कहीं से ठंडी-ठंडी हवा बहने लगी। काले बादलों ने घेरकर सूरज का तेज कम कर दिया। कुछ बूँदें भी गिरीं। प्रभु पर स्वर्गीय अमृत कलश का अभिषेक हुआ। बरसात का जल उस भव्याकृति पर से उतरते-उतरते बड़ा आकर्षक लग रहा था। बुढ़िया की आँखें स्पष्ट देखने लगीं। उसने बाहुबली की मूर्ति को आपाद मस्तक देखा। बरसात में भीगती जा रहीं थी, पर जनता को इसका ध्यान ही नहीं था। सब आनंद सागर में डूबे हुए थे। अत्तिमब्बे के आनंद का तो पारावार ही नहीं था।

अत्तिमब्बे ने अंधी को अनुग्रह करके आँखें दीं। जनता में यह समाचार विद्युतगति को भी मात करते हुए फैल गया। मस्तकाभिषेक के निमित्त भारतभूमि के कोने-कोने से भक्तवृंद आया ही था। उनमें जो-जो मूक, बधिर, लंगड़े, लूले, कोढ़ी, तपेदी आदि थे, सब अत्तिमब्बे के पास आये। अपने कष्ट से पार करने के लिए प्रार्थना की। बाहुबली की अपेक्षा जनता अत्तिमब्बे के कीर्ति-गान में तन्मय होने लगी। अत्तिमब्बे देह की थकावट की ओर ध्यान न देकर दिन रात उनके रोगों को दूर करने के निमित्त प्रभु से प्रार्थना करने लगी। जिनका प्रारब्ध दूर हुआ था उनको वांछित फल मिला। प्रभु ने अत्तिमब्बे को निमित्त बना लिया। उसका यश दिग्दिगंत फैलने लगा।

अजितसेनाचार्य जी ने अत्तिमब्बे से कहा - ''जनता के दुःख दर्द को दूर करने जाकर अपनी सारी शक्ति गँवाती जा रही हो। यही हाल रहा तो साल डेढ़ साल में अपनी शक्ति से वंचित हो जाओगी। क्या कोई साग-पात तौलने के लिए सोने का तराजू और हीरे का बटुआ बनवायेगा। इन बातों से विरत हो जाओ।''

''आचार्य जी, क्षमा कीजिए! भवरोग को दूर करने के लिए तीर्थंकरों ने

युग-युग तक तपस्या नहीं की ? स्वामी! तीर्थंकर महाप्रभुओं की शक्ति अपरिमित थी। मैं गरीबिन क्या कर सकूँगी ? यदि मुझसे जनता का दुःख दूर हो सकता हो तो जाने दीजिए। मैं निमित्त मात्र हूँ। सब प्रभु की कृपा है।''

अत्तिमब्बे ने विश्वानुकंपा से आर्द्र होकर कहा।

''देखो बेटी, तीर्थंकरों की बात अलग है। इस मर्त्यलोक में कई ऐसे महानुभाव हैं, जिन्हें अपूर्व सिद्धियाँ मिली रहती हैं। पर विशेष परिस्थिति के अतिरिक्त अन्यत्र उसका उपयोग नहीं करते। तुम तो सिंचाई करने की धुन में जलाशय की बाँध ही तोड़ने लगी हो।''

आचार्यजी ने कहा।

''तब मैं क्या करूँ ? बताइये।''

अत्तिमब्बे नतमस्तक थी।

''बेटी! जनता से सहानुभूति रखो। धीरज बँधाओ। भगवान् का भरोसा रखकर भक्ति सहित प्रार्थना करने कहो। वे प्रार्थना करें। अन्यथा तुम्हारी यह दया अनुचित होगी। जनता आलसी बनेगी और तुम्हारा दीवाला निकलेगा। अब भी चेतो! यह महिमा-प्रदर्शन की भूख दबायी जाये।''

अब अपने आत्म-कल्याण की बात सोचो। कोई भी तीर्थंकर यों ही जनता के दुःख दर्द दूर नहीं करते। जिस प्रकार वैद्य दवा देता है और परहेज कर रोगियों को रहने के लिए कहता है उसी प्रकार तीर्थंकर भी स्वास्थ्य-लाभ का मार्ग सुझाते हैं और केवल आवश्यक प्रतीत होने पर दया या अनुग्रह करते हैं। अनंत शक्ति सम्पन्न परमात्मा ही जब इतना सजग रहता है तो अल्पशक्ति युक्त तुम्हारे लिए कितना संयम चाहिए, सोचो तो सही। अपने अपने कष्टों से पार होने के लिए उन्हीं को प्रार्थना करने का आदेश दो। जनता की भक्ति भावना को जागृत करो। सबमें अनंत शक्ति अंतर्निहित रहती है। तुम्हारा काम उस शक्ति के स्रोत की ओर संकेत करना मात्र है। समझी!''

आचार्य जी ने चेतावनी देने के साथ अत्तिमब्बे को कर्त्तव्य का रास्ता भी दिखाया।

❑❑❑

16.

अण्णिग देव युवक हुआ था। लक्कुंडी में जिनालय बनकर तैयार हुआ था। मूर्तियों में बाहुबली की मूर्ति असदृश थी। मंदिरों में लक्कुंडी का मंदिर असदृश था। जनता मुक्त कंठ से दोनों का यशोगान कर रही थी। लक्कुंडी राजधानी बनने योग्य, कोट, नहर, बुर्ज आदि से सम्पन्न हो गया। अत्तिमब्बे के नेतृत्त्व में ही महल, मंदिर, प्रासाद आदि बन गये। लक्कुंडी के जिनालय में पंचकल्याणक महोत्सव की तैयारी होने लगी। अत्तिमब्बे की योजना थी कि मंदिर में जिनमूर्ति की स्थापना हो महल का प्रवेशोत्सव हो और साथ ही आथ अण्णिग देव का शुभ विवाह भी सम्पन्न हो। अत्तिमब्बे की इस योजना का सबने अनुमोदन किया।

अत्तिमब्बे के पाँच भाई थे। पाँचों के यहाँ कन्याएँ थीं। सबकी सब अत्तिमब्बे की बहू बनना चाहती थीं। एक दृष्टि से उनमें होड़ मच गई थी।

''बेटियों! मेरा इकलौता बेटा है। कैसे मैं सबको बहू बना सकूँगी ? एक, नहीं तो दो को बहू बना सकूँगी।''

अत्तिमब्बे ने इन भतीजियों को समझाया।

गुंडुमय्य की छोटी बेटी की ओर से किसी ने कहा।

''मामी! तुम सुमती को मत भूलो, सबसे सुंदर है। अवश्य अण्णिगदेव इसे पसंद करेंगे।''

एलमय्य की मझली बेटी की ओर से किसी ने कहा।

''मामी! चन्द्रप्रभा में रानी बनने योग्य लक्षण है। देखो बदन कैसा गठीला है।''

पोन्नमय्या की दूसरी लड़की की सिफारिश इन शब्दों में पेश हुई।

''मामी! वह खूब गाती है, आपके बेटे को रिझाने की कला भी जानती है। रोज आपको भजन सुना सकेगी। आप सोचिये और इसे ही अपनी बहू बना लीजिये।''

आहवमल्ल की ज्येष्ठ-पुत्री का प्रस्ताव इन शब्दों में किया गया। वल्ल की बड़ी लड़की घुंघराले केश वाली विमला थी। उसकी योग्यता को प्रतिपादित करते हुए कहा गया -

''मामी! यह खूब अभिनय कर सकती है। जिनेन्द्र के पंचकल्याणक महोत्सव का ऐसा अभिनय कर सकेगी कि आपके समक्ष वह यथार्थ में उतरा हुआ लगेगा। गाने में भी किसी से कम नहीं है।''

अत्तिमब्बे ने सबकी बातें सुनीं। सबको सांत्वना देती हुई बोली ''देखो! यदि अण्णिग माने तो मैं सबको बहू बना लूँगी।''

अण्णिग ने सीतला और विमला को पसंद किया। एक ही मुहूर्त में एक साथ दोनों कन्याओं का अण्णिग से पाणिग्रहण हुआ। लक्कुंडी उस समय अमरावती के समान सुशोभित थी। पंचकल्याणक महोत्सव हुआ; जिनेन्द्र का प्रतिष्ठापना समारोह भी सम्पन्न हुआ। इसी समय रन्न विरचित अजित पुराण का प्रकाशन महोत्सव भी अभूतपूर्व ढंग से मनाया गया।

अजितनाथ दूसरे तीर्थंकर थे। आदिनाथ के दिव्य चरितों का अनुवाद पंप महाकवि ने कर दिया था। अब कवि चक्रवर्ती रन्न ने अजितनाथ की लीलाओं का गान किया था।

अयोध्या में जितशत्रु राज कर रहा था। उनकी रानी विजयसेना देवी थी। इनकी ही संतान अजितनाथ थे। आपके जन्म के अवसर पर देवलोक ही पृथ्वी पर उतर आया था। अहिंसा धर्म के प्रभाव को दिखाने व प्रसार करने के लिए अवतरित अजितनाथ का जन्मोत्सव बड़ी धूम से मनाया गया।

यथासमय अजितनाथ का पाणिग्रहण एक हजार कन्याओं से हुआ। वे युवराज भी बने। सहस्र संख्यक लोल लोचनाओं के साथ कई वर्ष रासलीला आदि भोग विलास में मग्न रहे। एक बार उल्कापात हुआ। सहसा उनको लगा कि सारा संसार ही एक उलका है, न जाने कब इसका भी पतन होगा। अतएव सहसा विरक्त बने और दिगम्बर संन्यासी हुए। कई वर्षों तक तपस्या करते-करते जीव और कर्म के स्वरूप और सम्बन्ध समझे। तप में सिद्धि मिली। घाति कर्म नष्ट हुआ। अजितनाथ तब जिनेन्द्र बने। समवसरण महोत्सव में सभी देवगण उपस्थित हुए। उस सभा में इस जिनेन्द्र ने तीनों लोकों के सम्मुख जीव और कर्म का स्वरूप समझाया और उनकी संख्या, उनसे होने वाले अनर्थों का वर्णन किया। कर्म से

छुटकारा प्राप्त करने का रहस्य बताया। इन सबका उपदेश सर्वभाषामयी दिव्य ध्वनि में दिया जिसे श्रव्यकोटि ने सुना और समझा।

इन तीर्थंकर के काल के चक्रवर्ती सगर थे। रन्न ने अजितनाथ पुराण में इनका भी वर्णन किया है। सगर की राजधानी अयोध्या थी। वहीं से आप षट्खण्डों पर शासन कर रहे थे। वृषभाचल पर पूर्व में भरतेश ने अपनी विजयगाथा खुदवायी थी। उसी के बगल में सगर ने कविरत्न से अपनी विजयगाथा खुदवायी। छियानबे हजार सुर सुंदरियाँ उनके रनवास में थीं और साठ हजार पुत्र थे और षट्खण्डों के राज्यशासन आदि में निरत सगर संसार सागर में पूर्ण निमग्न थे। उनको समझा बुझाकर आत्मकल्याण के मार्ग पर लगाने के उद्देश्य से, उनके जन्म-जन्मान्तर के मित्र मणिकेतु दो-एक बार प्रयत्न कर विफल मनोरथ हुए थे।

एक बार सगर चक्राधिप से साठ हजार कुमारों ने लीला से कैलास पर्वत के चारों ओर खाई खोदने का संकल्प किया। इससे असंतुष्ट होकर मणिकेतु ने अपनी विद्या के बल पर भ्रम उत्पन्न कर दिया कि इन सबको भस्मीभूत कर दिया हो। उनमें से केवल भगीरथ बच गया। उसने अपने भाइयों का हाल सगर से निवेदन किया। उस समय विप्र-वेश धरकर मणिकेतु आया और अपने इकलौते बेटे को, जिसे मृत्यु ने छीन लिया था, बचा देने का आग्रह करते हुए रो पड़ा। सगर की रानियाँ भी उसे घेरकर अपनी अपनी संतान को जिला देने का आग्रह करने लगी। सगर की सभी बहुएँ वहाँ आ गईं। अपने पतियों के वियोग में आँसू बहाते-बहाते सागर ही उमड़ा दिया। इस ऊधम के बीच सगर में वैराग्य जगा। संसार की अनित्यता का बोध उसे हुआ। संसार का त्याग किया। प्रेयसियों की ओर भी नहीं देखा। पुत्रों के शव तक नहीं देखे। दिगम्बर संन्यासी बन गए। उधर भ्रमावरण के हटते ही मृतवत् पड़े हुए राज-पुत्र मोह निद्रा से जागे। उन्होंने पिता की विरक्ति की बात सुनी। उनका भ्रम भी दूर हुआ। वैराग्य के महापूर में बह गए। सबके सब दिगम्बर यति बने। कुछ समय के बाद भगीरथ भी अपने पुत्र वरदत्त को राज्य सौंप दिगम्बर बने और कठोर तपस्या में निरत हुए। कालक्रम में कर्मक्षेप हो गया; केवलज्ञान सम्पन्न हुआ। रन्न ने अजितनाथ तथा सगर के इस दिव्य चरित को अत्तिमब्बे के परिवार को सुनाया। इसे सुनकर सब प्रसन्न हुए।

अजितनाथ पुराण में रन्न ने अत्तिमब्बे का यशोगान भी मुक्त कंठ से किया था। अजितनाथ पुराण के उपोद्धात के रूप में अत्तिमब्बे का वृत जोड़ा गया है।

अत्तिमब्बे का वंश इस कारण से अमर बना है।

अत्तिमब्बे के सम्यक्त्व को बड़ा ही सुंदर निरूपित किया है। पुराण प्रसिद्ध महिला रत्नों की कतार में रखकर दिखा दिया है कि वह किसी से कम नहीं है। रन्न ने अत्तिमब्बे को जिन जननी के समकक्ष माना है। 'बुधजन वंदिता'! 'कविवर कामधेनु'! 'चक्रवर्ती–पूजिता'! 'जिनशासन प्रदीपिका'! 'दानचिंतामणि'! 'विनय चूड़ामणि'! 'सम्यक्त्व शिरोमणि'! 'शीलालंकृता'! 'गुणमालालंकृता'! आदि विशेषणों से रन्न ने अत्तिमब्बे का यथार्थ गुणगान किया है।

अत्तिमब्बे ने अजितपुराण की एक हजार प्रतियाँ बनवाईं। मठों और मंदिरों में इसे बाँट दिया। योग्य दम्पतियों को भी दान दिया। महामना अत्तिमब्बे ने रन्न का सुवर्ण तुलाभार करके सब सुवर्ण कवि को दे दिया और भरी सभा में रन्न का यशोगान करते हुए सम्मानित किया।

''कन्नड़ भाषामृत को दुहकर, औटाकर इससे मलाई निकालकर रखने का श्रेय पंप कवि का था। कन्नड़ भाषामृत जमाकर, दही बनाकर मथकर उससे नवनीत निकालने का श्रेय पोन्न का था। कन्नड़ भाषामृत से बने नवनीत को औटाकर सुगंधित घृत बना देने का श्रेय रन्न के पाले पड़ा। ये कन्नड़ साहित्य के रत्नत्रय हैं। मैं दानचिंतामणि हूँ सही, पर मेरा यह पुत्र रन्न केवल दान चिंतामणियों और सम्यक्त्व चूड़ामणियों का यशोगान करने वाले चारण शिरोमणि है!'' ऐसा कहकर अत्तिमब्बे ने सबका आनंद बढ़ा दिया।

❑❑❑

17.

राष्ट्रकूटों के बाद गंगराज्य दुर्बल बना। चामुण्डराय ने शस्त्र संन्यास ग्रहण किया और गोम्मट के सान्निध्य में ही आत्मचिंतन में लीन रहने लगा। जैसे ही समर परशुराम के शस्त्र संन्यास का समाचार चोलों ने सुना तो उनमें सुप्त राज्यदाह रूपी साँप फन फैलाने लगा। कर्नाटक पर मद गज के समान चढ़ आए, पदतल पर आए हुए गाँवों को कुचल डाला। इस प्रकार चालुक्य साम्राज्य पर धाक जमाने के निमित्त आगे बढ़े। इरिवबेडंग ने तुंगभद्रा पार करके चोलों का मुकाबला किया। सर्व सेनापति अण्णिगदेव ने इरिवबेडंग का दाहिना हाथ बनकर चोलों से युद्ध किया। युद्ध में चालुक्य जीत तो गए पर दुर्भाग्य से ठीक उसी समय वर्षा प्रारम्भ हुई।

तुंगभद्रा में बाढ़ आई। नदी के इस पार चालुक्यों की सेना, रसद उस पार रह गई। शस्त्रास्त्र भी उसी पार था। चालुक्य सेना हत्बुद्धि-सी रह गई। न रसद न शस्त्र। करें ही क्या ? ऐसे अवसर का लाभ उठाते हुए चोलों ने फिर से धावा बोलने का निश्चय किया और रास्ते में पड़ने वाले गाँवों को लूटते हुए अपने लिए आवश्यक रसद आदि जुटाने लगे। पहले चोल हार गए थे और दुम दबाकर भाग खड़े हुए थे। अब रणोत्साह से तुंगभद्रा की ओर कूच किया। इधर विजयी चालुक्य सेना खाली हाथ रह गई थी। दोनों के बीच में केवल छह मील का अंतर रहा होगा। एक के सिर पर चिंता सवार थी तंगी के कारण, दूसरे के सिर पर शैतान सवार था, बदला लेने के जोश के कारण।

एक दिन चोलों के पड़ाव में एक पालकी आई। उसके साथ पंद्रह-बीस कहार भी थे। सैनिकों ने उन्हें रोका और डांट कर पूछा कि तुम कौन हो ? और कहाँ से आ रहे हो ? इस पालकी में कौन है ?

''हम लक्कुंडी जा रहे हैं ? पालकी में राजमाता विराज रही है ?'' कहारों ने कहा।

इस उत्तर ने चोलों को अचंभे में डाल दिया। फिर उन लोगों ने सोचा कि

यदि इसे हम कैद कर रखें तो अवश्य चालुक्य संधि कर लेने के लिए विवश हो जाएँगे। इस अवसर का खूब लाभ उठा सकते हैं। सेनापति को समाचार दिया गया। उन्होंने आते ही पालकी से उतर आने की आज्ञा दी। कहारों ने म्यान से तलवार खींची फिर पालकी के चारों ओर खड़े हो गए। अत्तिमब्बे ने बाहर झाँकते हुए पूछा कि किसने हमको रोका है ?

''हम चोल सेनापति हैं। हमारी आज्ञा है कि तुम उतर आओ अब हमारी हिरासत में हो, समझी ?''

सेनापति ने बड़े घमंड से कहा।

''मैं क्यों उतर आऊँ ? कैसे तुमने मुझे हिरासत में लिया है और क्यों ?''

अत्तिमब्बे की भौंहे तन गई थीं।

''अरे! क्या देखते हो! दो चार लगा दे तो दिमाग ठिकाने आएगी। चोटी पकड़ के उतरवा लो।''

चोल सेनापति ने अपने जवानों को आज्ञा दी।

''कहारों! तुम धीरज रखो।''

अत्तिमब्बे ने कहारों से कहा। बाहर आई। चोलों के सम्मुख खड़ी हो गई और बोली...

''क्या मुझे हिरासत में लेना चाहते हो ? हमने क्या अपराध किया है ? बताओ।''

''अपराध! अपराध यही कि तुम हमारे दुश्मन की माँ हो। तुम्हारे बेटे ने हमारे सैंकड़ों जवानों को मारा है। उस अकेले व्यक्ति के कारण हम हार गए, नहीं तो सारा कर्नाटक हमारे पदतल पर आया होता।''

सेनानी ने दाँत पीसकर जवाब दिया।

''मेरा पुत्र तुम्हारे ही समान सेनाधिपति है। अपने कर्त्तव्य का निर्वहण मात्र उसने किया है। क्या चालुक्य सेना में तुम्हारे हाथ किसी की मौत नहीं हुई ? वाद विवाद क्यों ? अपने व्यवहार की बात अपने पास ही रहने दो।''

अत्तिमब्बे ने सलाह दी। व्यंग से हँसते हुए सेनापति ने अपने सैनिकों की ओर लाल लाल आँखों से देखते हुए कहा –

''क्या देखते हो ? बढ़ो आगे! ले लो हिरासत में!''

वे आगे बढ़े। पालकी को घेर लिया। अत्तिमब्बे की भौंहे चढ़ गई।

बोली....

''खबरदार! कहीं आगे एक कदम आया तो कुशल नहीं होगा। स्त्रियों, बाल बच्चों और निरीह जनता को कुचल कर साम्राज्य स्थापित करने वाली तुम्हारी ऐसी बुद्धि पर थूक है। तुम्हें धिक्कार है।''

अत्तिमब्बे ने जोर से कह दिया।

जैसे ही चोल सैनिकों ने उसे पकड़ने के निमित्त हाथ बढ़ाया वैसे ही क्रुद्ध होकर ज्वालामुखी के समान आग उगलती हुई दृष्टि से घूरकर अपने पद तल पर रहने वाली मिट्टी ले, उन सैनिकों की ओर फूँक दिया। उनको ऐसा लगा कि सैंकड़ों, हजारों बिजलियाँ एक साथ उन पर टूट पड़ी हों। विपक्षियों के लिए जहाँ बिजलियाँ टूट रही थीं वहीं स्वपक्षीय कहारों को चन्द्रकिरणों का जाल दिखाई दे रहा था। सभी चोल वज्राहत से मूर्छित हो गए। अत्तिमब्बे ने पंचनमस्कार जपते हुए पालकी की परिक्रमा की। कहारों और पालकी को घेरकर एक अग्निवलय निर्मित हुआ। घेरे के अंदर रहने वालों को वह चाँदनी था। पर चोलों को वह सचमुच अग्निवलय ही था। उस दैवी व्यापार से चोल हतप्रभ होकर खड़े रह गए।

अत्तिमब्बे पालकी में बैठ गई और पालकी आगे बढ़ी। पालकी और कहारों के चारों ओर निर्मित वह अग्निवलय भी उसी प्रकार आगे बढ़ा।

घड़ी दो घड़ी की यात्रा के बाद अत्तिमब्बे की पालकी तुंगभद्रा के किनारे आ पहुँची। चालुक्य सेना के पड़ाव पर उतरते ही अत्तिमब्बे ने मंत्रजप करते हुए चोलों का दिग्बंधन कर दिया। उस मंत्र शक्ति से दोनों के बीच में विद्युत प्राकार सृजित हुआ। असल में यह लीला देखकर सारी सेना चकित हो उठी। खबर पाकर इरिवबेडंग सेनाधिपति अण्णिग को साथ लिए चला आया। इस अमानुषिक एवं अप्राकृतिक दृश्य से घबरा उठा। सोचा, अब हम बुरे फँसे न, पीछे हटते बनता न आगे बढ़ते; पीछे तेज प्रवाह है, आगे यह अलौकिक विद्युत प्राकार है क्योंकि प्रवाह में उतरे तो हाथी भी चींटी से बह जाते। आगे वह अड़ंगा; चोलों का कोलाहल क्षण-क्षण बढ़ रहा है। वे चढ़े आ रहे हैं। अब शत्रु के पंजे में फँस जायेंगे। इरिवबेडंग चिंताक्रांत हुआ। अण्णिग को भी कुछ नहीं सूझ रहा था। दोनों घबरा उठे। तब वहाँ सहसा एक पालकी दिखाई दी। आश्चर्य से दोनों देख ही रहे थे। अत्तिमब्बे वहाँ थी। इरिवबेडंग आगे बढ़ा।

''माताजी! कैसे समय दर्शन दिए।''.... कह उसके पदतल पर सिर रख दिया। अण्णिग भी कम चकित नहीं था। माताजी के चरणों में नतमस्तक हुआ। पदतल पर वह भी गिर जाता पर वहाँ इरिवबेडंग दंडवत् पड़ा हुआ था। माताजी से बोला...

''माँ हम संकट में फँसे हैं। पीछे प्रवाह आगे शत्रु। अब यह नया संकट भी उपस्थित हुआ। खैर, आप श्रवणबेलगोल से क्या कर आईं ? चोल बड़े नीच होते हैं।''

''अत्तिमब्बे ने इरिवबेडंग को ऊपर उठाया। देह में लगी धूल पोंछ डाली। अण्णिग के सिर पर प्यार से हाथ फेरा।''

''माँ! वहीं, सामने चोलों की सेना है। हमारे पास कुछ भी नहीं बचा है न रसद न शस्त्र! हम बड़े संकट में फँसे हैं।''

घबराहट से अण्णिग फिर बोला।

''अण्णिग घबराओ मत! जब तक मैं जीवित हूँ कर्नाटक साम्राज्य का बाल तक बाँका न होगा। मेरे रहते न तुम्हारे लिए अनिष्ट की संभावना है न इरिवबेडंग की ही। बेचारे चोलों की कौन कहे, चाहे तो समस्त भारत के राजा-महाराजा भी एक साथ आक्रमण करें। सेना को संभालो। मेरी तपःशक्ति से बने इस विद्युत प्राकार के निकट आने का साहस शत्रु करें तो जल जायेगा।''

अत्तिमब्बे ने आश्वासन दिया।

''माँ! तुंगभद्रा को शांत करने के लिए कुछ तो करो।''

अण्णिग ने प्रार्थना की।

''अण्णिग! यह तुंगभद्रा ही क्या ? आवश्यकता हो तो मैं सप्त समुद्र को कटाक्ष वीक्षण से सोख सकती हूँ। डरो मत। पार करने के लिए सन्नद्ध हो जाओ।''

इस प्रकार अभय देकर अत्तिमब्बे ने पुत्र को और इरिवबेडंग को विदा किया।

अत्तिमब्बे के आगमन का शुभ समाचार चालुक्य सेना के कोने-कोने में पहुँच गया। प्रत्येक सैनिक में विचित्र स्फूर्ति का संचार हुआ।

चोलों ने आक्रमण करने का साहस किया। पर आगे बढ़ नहीं सके। उस

विद्युत प्राकार के निकट तक जा नहीं सकते थे। कुछ-एक को पहले से अत्तिमब्बे की शक्ति का अनुभव था अतएव आगे बढ़ने का विचार छोड़ दिया। दूर ही से चालुक्य सेना की गतिविधि को देखते खड़े रहे।

चालुक्यों का आत्मबल ऐसा जाग पड़ा था कि उन्होंने बेधड़क खाया पिया। पेड़ के नीचे आराम से लेट कर पान लगाकर खाया। धूप उतर गई। चालुक्य सेना नदी पार करने की तैयारी में लग गई। एक रथ पर जिनमूर्ति को बिठा लिया। सैंकड़ों दीप जलाये गए। पुष्प गुच्छों से रथ सजाया गया। अत्तिमब्बे भी रथारूढ़ हुई। जिन-मूर्ति के पदतल पर बैठ गई। उसकी अगल बगल में इरिवबेडंग और अण्णिग बैठ गए। रथ में चार सफेद घोड़े जोते गए। उस नदी में उतार दिया। नदी का पानी किसी खिंचाव के कारण दस दस गज सरक गया। बीच में रास्ता खुला। रथ आगे बढ़ा। पीछे से सैंकड़ों हाथी, हजारों घोड़े, लाखों सिपाही चल पड़े। आश्चर्य की बात यह थी कि वह विद्युत प्राकार भी उसके पीछे-पीछे जाने लगा।

चोल सेनापति यह देख ही रहा था। नदी पार करते हुए शत्रु को रोकने की इच्छा थी फिर भी कुछ करते नहीं बन रहा था। इस विवशता ने उसको बैचेन कर दिया। फिर भी सेना को आज्ञा दी कि तीरों से हमला करो। उनके फेंके बाण अत्यन्त वेग से चले आते पर इस ज्योर्तिमण्डल के पास आते ही पर जले पक्षी की भाँति गिर जाते और जल जाते।

घड़ी दो घड़ी के अंदर सारी चालुक्य सेना नदी के उस पार थी। चोलों ने भी इस मौके का लाभ उठाकर नदी पार करना चाहा। पर उस प्रज्वलित दीवार के निकट ही नहीं आ सके। सेना के पार पहुँचते ही अत्तिमब्बे रथ से उतर आई और पूजा के फूलों की अंजली में भर कर नदी पर चढ़ाया। तुरंत ही ऐसा शब्द हो उठा मानों समुद्र ही छींक रहा हो। पानी उमड़ आया।

बाढ़ के आघात से किनारे पर के वृक्ष गिर पड़े। जिससे तुंगभद्रा की शोभा और बढ़ गई। कर्नाटक महिला-रत्न के कीर्ति प्रवाह में चोलों का पराक्रम बह गया। कर्नाटक की सीमा से बाहर खदेड़ने तक अत्तिमब्बे की मंत्रशक्ति ने चोलों का पीछा किया।

❑❑❑

18.

अत्तिमब्बे की आँखों देखी एक-एक करके महान् विभूतियाँ अस्तंगत होती जा रही थीं। ऐसे अवसरों पर कहती प्रभो! क्यों मेरे भाग्य में ये सब मुझे देखना बदा है। खैर तुम्हारी इच्छा! कभी-कभी आप्तेष्टों की मृत्यु का समाचार मिलता। तब अपने कान के परदे को फाड़ देने के लिए प्रार्थना करती।

इसके पिता वृद्धावस्था में लक्कुंडि आए और वहीं अंतिम सांस तोड़ी। माता जी सती हो गई। अत्तिमब्बे बोली -

''पिताजी आप देवतुल्य हैं। आपने बहुत कुछ दान पुण्य किया। इस ढंग से आपने दान दिया है कि दांये हाथ का दिया बाँए हाथ को पता न लगे। माँ, तुम सचमुच भाग्यवती हो। तुम्हारे पुण्य से मैं दानचिंतामणि हूँ। आपने अपनी सारी सम्पत्ति मुझे दे डाली। मुझसे दान धर्म करा दिया। आपका सारा जीवन पति और संतान की परिधि में सीमित रहा। भरतखण्ड की महिलाओं का आदर्श था आपका जीवन। अपनी सारी सम्पत्ति और कीर्ति संतानों में बाँट कर संतृप्त थी। अपने व्रत अनुष्ठानादि किए पर किसी को पता भी लगने नहीं दिया। हम कीर्तिकामना के पुतले थे।''

इन शब्दों में माता-पितरों का स्मरण करके रो पड़ी।

पितरों का वियोग हुए थोड़े दिन हुए थे कि पंप महाकवि के देहावसान का समाचार बिजली सा टूट पड़ा। उनके साथ उनकी तीनों पत्नियों ने सहगमन किया। कवितागुणार्णव! क्यों तुमने आँखें बंद कर ली ? हे नाडोज (हे जगद्गुरु)! कर्नाटक अब निगुरा बना। तुम्हारी तीनों रानियाँ तुम्हारे रत्नत्रय मानों थीं। आंध्रतीरंध्र बंधुर रत्नहार रत्न! केरलवधूकंटि सूत्रारुणमणि! कर्नाटक-कन्यका कंठाभरण! अब तुम्हें कहाँ पाऊँ ?''

इस प्रकार गुण गणों का स्मरण करके रो पड़ी।

अभी पंप का देहावसान हुए पंद्रह दिन हुए होंगे कि दल्लप की मौत लक्कुंडी में हुई। सास तो सती होने से रोकने का भरसक प्रयत्न किया। मुझ

अनाथिनी के लिए ही सही आप रह जाहए कहकर आग्रह किया। पर कौन परम्परा के विरुद्ध जाना चाहता है ? दल्लप की चिता पर पद्मब्बे हँसते-हँसते सो गई। इस प्रकार अपनी सास को सजीव जला देखकर अत्तिमब्बे से सहा नहीं गया। उसे संभालने के लिए बहुयें आगे बढ़ीं। उन्हीं को सम्बोधन करते हुए अत्तिमब्बे बोली -

''ये ऐसे सास-ससुर थे कि कभी मेरे हाथ को रोकने का प्रयत्न नहीं किया। मुझे पतिहीना अनाथिनी जानकर सदा मेरी इच्छाओं को पूर्ण करने में लगे रहे। मैंने इनकी सारी सम्पत्ति लूटी। तब भी उनके मुँह से चकार तक नहीं निकला।''

ठीक इन्हीं दिनों में पौत्र और अजितसेनाचार्य जी के अंतिम दिन भी आए। प्रभो! कहकर रो पड़ी। सोच रही थी कि सचमुच पापी चिरायु होते हैं। आँख के आँसू अब सूख गए थे। सदा सुन्न सी बैठी रहती सदा मन ही मन आचार्य और पोन्न की महिमा का स्मरण किया करती थी। दो दिन बीते। काललला देवी के काल कवलित होने का समाचार मिला।

''मामी! काललादेवी! घमण्ड तुम्हारे नाम लेने वाले के निकट भी नहीं रह सकता! गोम्मट का अत्युन्नत विग्रह खड़ा करके स्वर्ग और मर्त्य का अंतर नाम दिया! मैं भावगीति हूँ तो तुम एक महाकाव्य हो।''

''कर्नाटक के महान् व्यक्तित्व एक-एक करके अस्त होते जा रहे हैं और देश अनाथ बन रहा है। न जाने और भी क्या-क्या देखने के लिए मैं जीवित हूँ!''

अत्तिमब्बे की आहें निकलने लगीं। परिस्थिति ऐसी थीं कि अत्तिमब्बे सदा सशंक रहने लगी। दिन-रात उसे यही भय रहता कि कहीं कोई बुरा सुनना नहीं पड़े। न जाने आज किसकी मौत होने वाली है ? उठते बैठते दुःखद समाचारों का भय उसे सताने लगा था। एक दिन चामुण्डराय के स्वर्गवास का समाचार मिला।

''मामा जी मैं आपके प्यार को कैसे भूलूँ ? आपके धैर्य स्थैर्य का स्मरण करके हृदय भी आश्चर्यचकित होता है। आप कैसे महामहिम हैं। आप महामना हैं। आपकी बराबरी करने वाला इस संसार में कौन होगा ? माताजी की आज्ञा के बहाने आपने इन्द्रगिरि की चोटी को कोमल बनने को बाध्य किया और उस

पाषाण को सजीव किया। बाहुबली की अनुपम मूर्ति गढ़वाई। प्रस्तर-प्रतिमाओं में जैसे बाहुबली हैं वैसे ही भव्यात्माओं में आप महान् हैं; असदृश हैं। सचमुच आज कर्नाटक अनाथ हुआ। शिल्पलोक निर्गतिक हुआ। कन्नड़ काव्य-गगन अंधकार मय बन गया। अब क्या बचा है ? किसलिए अब जीवित रहना है ? क्यों और किसके वास्ते जीवित रहूँ ?''

अत्तिमब्बे आठों पहर चिंतित रहने लगी।

अत्तिमब्बे अब पूर्ण विरक्त बन गई। बची खुची सम्पत्ति भी दान दे बैठी। लोभकर्म कभी का मिट गया था। आए दिन मृत्यु का समाचार सुन सुनकर विवश होकर मोहकर्म भी गल गया। अब व्रतोपवास करके देह शोषण करने लगी। दिन रात तपस्या में लीन रहती। स्वप्न में भी समवसरण को देखती हुई दिव्यध्वनि सुनने के चाव में आत्मचिंतन में डूबी रहने लगी। लौकिक से विरत तो हुई पर लोक से विरत नहीं हो सकी। सदा याचकों की टोली पीछे पड़ी रहती। कभी-कभी अत्तिमब्बे का हाथ खाली रहता। तब भी न नहीं कहती। अपनी बहुओं से कुछ न कुछ दिला देती थीं। कभी-कभी पुत्र के पास ही याचकों को भेजने के लिए विवश हो जाती थीं।

प्रतिदिन अण्णिग प्रातःकाल अत्तिमब्बे के चरणों पर सौ मुद्राएँ चढ़ाकर चला जाता था। उनमें से एक-एक मुद्रा अपने पोतों को देकर, अपनी बहुओं को दस-दस देकर, रत्न के नाम पर दस मुद्राएँ छिपा रखती और बाकी सब दान देती थीं। एक बार बंकापुर से आश्रम के संचालक आए। उन्होंने निवेदन किया -

''माताजी! आश्रम की आर्थिक स्थिति शोचनीय बन गई है। विद्यार्थियों की संख्या बढ़ रही है पर आमदनी घटती जा रही है! देने के लिए है कौन ? राष्ट्रकूटों के अधःपतन से हमारी रीढ़ टूट गई। चामुण्डराय भी गए। कल्पतरु सी काललादेवी भी अब नहीं। गंगों की ओर से जो भी वार्षिकी बँधी थी वह कम कर दी गई है। हम किंकर्त्तव्यविमूढ़ बने हैं। अजितसेनाचार्य की बातों के भरोसे हम यहाँ चले आए। आचार्य जी ने कहा था कि जब तक अत्तिमब्बे हैं, तब तक आप को चिंतित होने की जरूरत नहीं होगी। संकट की स्थिति में दानचिंतामणि के पास कहलवा भेजने पर सहायता मिल जायेगी। यही कहते-कहते प्रशांत भाव से समाधिस्थ हुए थे।''

''हम सबके द्वार खटखटा चुके हैं। हर कहीं हमें बहाने से टालने का

स्वभाव दिखाई पड़ा। कहीं-कहीं इतना दुःख सुना कि बस चलता तो अपने हाथ से उनकी ही कुछ सहायता कर आते। अंत में आपको ही कष्ट देना पड़ा। आपकी अनुमति हो तो कहीं उधार लेकर अपना काम चला लेंगे। नहीं तो यही एक जैन विश्वविद्यालय है। इसे भी बंद कर देंगे। कन्नड़ प्रांत में अब केवल दो ही जैनियों के आधार बचे हैं। एक तो आप हैं दूसरे श्रवणबेलगोल के गोम्मटनाथ हैं।''

अत्तिमब्बे ने यह सब शांतचित्त से सुना। सोचने लगी -

''मेरी भूल थी कि मैं दानचिंतामणि बनी। संसार के दैन्य को दूर करने का बीड़ा व्यर्थ ही क्यों उठाया ? औरों के समान कहीं अज्ञात रह जाती तो यह संकट नहीं रहता। क्या जैन समाज रसातल चला गया ? यदि जनता अपनी ओर से जितना बने उतना ही हाथ बँटावे तो इस विश्वविद्यालय का भार संभालना क्या कठिन होगा ? कैसी दरिद्रता आयी है ? यह धनाभाव का परिणाम नहीं, भावना के अभाव का परिणाम है। जनता स्वार्थी और भाव-शून्य बन गयी हैं। क्या करूँ ? अपने पास मैंने एक कानी कौड़ी तक नहीं रखी।''

ऐसे सोचते-सोचते अत्तिमब्बे की आँखों से आँसू की बाँध टूट गई। उसके आँसू देखकर आश्रमवासी बोले -

''माताजी! क्षमा कीजिए। आपको हमने कष्ट दिया। यह हमारी दुर्बलता थी। आप आँसू बहावें! अजितसेनाचार्य जी की बात मानकर विवश होने पर चले आये। खैर, आश्रम को चाहे बंद कर सकते हैं; पर आपके आँसू नहीं देखे जाते। आपका रोना और गोम्मटेश्वर का खण्डित हो जाना दोनों एक सा है।''

''प्रबन्धकों! मैंने अजितसेनाचार्य जी को वचन दिया था। वचन का पालन करूँगी। आखिर दान देने वाली मैं कौन हूँ। अजितसेनाचार्य की पादधूलि मेरे पास है। वही मेरे लिए अक्षयनिधि है। आश्रम को बंद करने की बात सोची भी नहीं जा सकती। हाँ, परिस्थिति के अनुरूप हमें परिवर्तन करना पड़ेगा। अब बंकापुर का योग समाप्त-प्राय है। अब हमारे लिए सजीव कल्पवृक्ष केवल गोम्मटेश्वर हैं। अतएव उसे श्रवणबेलगोल ले जाइये। हमारा विद्यालय वहाँ जम सकेगा। उसका नाम गोम्मटेश्वर विद्यालय हो। पंप कवि जिस विद्यालय में अध्ययन कर रहा था वह बंद क्यों हो ? जिस विद्यालय ने रन्न जैसा कवि दिया है उसका नामोनिशान तक रहने नहीं पावे ? चामुण्डराय को लिखा पढ़ाकर यशस्वी बनाया हुआ विद्यालय स्थगित हो जाये ? नहीं नहीं, कष्ट का सामना करना है। करेंगे।

धृतिभ्रष्ट न हो। श्रवणबेलगोल में स्थापित करके चला लें। अभी इसका प्रबन्ध कर दीजिए।''

इतना कहकर अत्तिमब्बे अंदर चली गई। गोम्मट विद्यालय के लिए बहुओं से सहायता की याचना की।

बहुओं ने कहा – ''माताजी! हमारी सारी सम्पत्ति आप ही की देन है। इतना सोना हम पर लाद रखा है कि हमसे ढोते नहीं बने। आपके नाम पर हम अपना सारा सुवर्ण विद्यालय के लिए दान देंगी। केवल इस मांगल्य, नूपुर, कर्ण-फूल और दो-दो चूड़ियों को रख लेंगीं।''

ऐसा कहती हुई दोनों बहुओं ने अपना सारा सुवर्ण लाकर संचालकों के सम्मुख ढेर लगा दिया।

''महाशय! अब इससे किसी भाँति काम चलाइये। आगे भगवान् की कृपा। श्रवणबेलगोल में विद्यालय प्रतिष्ठापित हो तो चिंता नहीं होगी। कई महानुभाव परमात्मा के दर्शन के लिए आते रहेंगे। कम से कम सौ में विद्यालय का एक दानी निकलेगा तो भी काम चलता रहेगा।''

अत्तिमब्बे ने यह कहकर उन संचालकों को विदा किया।

''दिन बीतते गए। अत्तिमब्बे की भक्ति भी बढ़ती गई। साक्षात् मूर्तिमती भक्ति ही बन गई। आँखों में सदा परंज्योति की झाँकी बसी रहती। कानों में सदा भगवन्नाममृत की धारा बहुएँ बहा रही थीं। अपनी अपूर्व शक्ति को छिपाए रखने का भरसक प्रयत्न किया करती थी; पर उसे अपना संयम कभी-कभी तोड़ना पड़ता था। एक बार लक्कुंडी में इरिवबेडंग का दरबार लगा हुआ था। वहाँ राजगज मस्ती में पागल बना और जो भी कुछ मिला नष्ट करने लगा। आखिरकार सीधे इरिवबेडंग के दरबार में ही घुस पड़ा। इरिवबेडंग को सूंड से उठाकर चक्राकर घुमाने लगा। इरिवबेडंग चीख उठा।''

माँ! बचाओ! माँ बचाओ!!!

अत्तिमब्बे महल में ही थी। न जाने कैसे उसे यह बोध हुआ। दौड़ते-दौड़ते दरबार में आई। पंचनमस्कार का जप करते हुए हाथी के पास गई। उसे देखते ही हाथी शांत हुआ।''

''क्यों गजराज! ऐसी क्या सूझी ? अत्तिमब्बे के पद पर तेरी नजर लगी।

धत् तेरे की।''

ऐसा कहते हुए उसकी पीठ सहलाने लगी। हाथी ने इरिवबेडंग को सूंड़ से उतार दिया। अत्तिमब्बे ने चरण पर पड़े हुए इरिवबेडंग को उठाया। उसका स्पर्श क्या था संजीविनी का स्पर्श करना था। वह नवचैतन्य पाकर जाग उठा। बोला – ''माँ, तुम्हारी बड़ी कृपा है। नहीं तो मैं बेमौत मारा जाता। वह अब भी थर-थर कांप रहा था।''

उसे अभय दान देते हुए अत्तिमब्बे बोली –

''बेटा! गोम्मटनाथ की कृपा है। पंचनमस्कार जपा करो।''

एक बार सपरिवार वन विहार करने अण्णिग गया। नदी के किनारे पड़ाव पड़ा। सब अपने खेलकूद में मग्न थे। नागदेव नामक अत्तिमब्बे का एक पोता था। वह न जाने कब दादी की जिन-मूर्ति लेकर खेलने लगा। उसे नहला रहा था कि वह हाथ से छूटी और नदी में कहीं खो गई।

अत्तिमब्बे ने अन्न जल छोड़ दिया। शपथ-पूर्वक कहा कि जब तक काललादेवी की दी गई पार्श्वनाथस्वामी की वह मरकत-मूर्ति नहीं मिले तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगी। यों ही वृद्धावस्था के कारण अत्तिमब्बे दुर्बल थी। अब निराहार रहने लगी। अण्णिग परेशान हुआ। सारी नदी छनाई गई पर कहीं मूर्ति नहीं मिली। वैसी ही दसों मूर्तियाँ बनवाकर माता जी के चरणों में अर्पित करने का वादा किया, पर उसने स्वीकार नहीं किया।

आठ दिन अत्तिमब्बे निर्जल रह गई! उस दिन फिर हाथी के सिर सनक सवार हुई। वह लोह-शृंखला तोड़कर भागा। रास्ते में जो कुछ मिला कुचल डाला। सीधे नदी में उतरकर उस जिनबिम्ब को सूंड़ में उठाकर, झूमते-झूमते महल की ओर चला। जनता इस दृश्य को देखकर भक्ति-परवश हुई। पार्श्वनाथ की जय, गजराज की जय वाली घोषणा गूंज उठी।

हाथी आगे बढ़ा। जहाँ अत्तिमब्बे थी वहाँ आया। अत्तिमब्बे की गोद में जिनबिम्ब रख दिया। अत्तिमब्बे ने हाथी का सत्कार गन्ने आदि खिलाकर किया। सप्ताह भर जिनोत्सव मनाया गया। पोतों ने उसमें भरपूर योगदान दिया। भक्ति की बाढ़ उमड़ पड़ी।

एक बार गोम्मटेश्वर जिनालय के संचालक फिर से आए।

''महाशयों! आपके शुभागमन से बड़ा हर्ष हुआ। मैं आपकी क्या सेवा कर सकती हूँ।''

अत्तिमब्बे ने संतृप्ति से विनयपूर्वक प्रश्न किया।

''माताजी! आपके दान से श्रवणबेलगोल में विद्यालय बना। यात्रार्थियों से भी कुछ न कुछ मिलता रहता है। पर इसी से विद्यालय का काम सुचारु रूप से चल नहीं सकता। अभी कोई समस्या नहीं है। फिर भी आचार्यपाद का अभिमत है कि इसके लिए स्थाई व्यवस्था हो जानी चाहिए। मूलनिधि आपके नाम पर स्थापित हो जाए। अतएव आकर आपको कष्ट देना पड़ा।''

संचालकों ने निवेदन किया।

''मूल-निधि की बात है ? कितने की होगी ?''

अत्तिमब्बे ने सहज ही प्रश्न किया।

''कम से कम एक करोड़ की तो होना चाहिए।''

संचालकों ने उत्तर दिया।

यह सुनते ही अत्तिमब्बे का उत्साह ठंडा पड़ा। पर इस भाव को व्यक्त नहीं किया। उन लोगों से इतना ही कहा कि ''आप यहीं रह जाइये। एक सप्ताह के अंदर इसका प्रबंध हो जायेगा।''

अत्तिमब्बे यों तो खाली हाथ थी। अपना कहने के लिए एक कौड़ी भी नहीं रही फिर भी उसने संचालकों को आश्वासन दे दिया।

पार्श्वनाथ के सम्मुख चुपचाप बैठे-बैठे मानसिक पूजा करने लगी। मन ही मन सुवर्णाभिषेक भी कर दिया। पाँच दिन बीत गए।

''प्रभो, क्या अंतिम दिनों में मेरी बात खाली रह जाये ? अब तक तुम्हारी कृपा से किसी को भी ना नहीं कही। तुमसे कभी मैंने अपने लिए कुछ नहीं माँगा। जनता के लिए माँग रही हूँ। दीन दलितों को मेरे घर जाने की प्रेरणा देने वाले तुम ही तो हो। क्या यही तुम्हारी लीला है ? अब यह श्रवणबेलगोल के संचालक कैसे आ सके ? करोड़ रुपयों की माँग कौन कर रहा है ? यह तुम्हारी प्रेरणा नहीं ? मुझ अबला की परीक्षा लेना चाहते हो ? तुम तो स्वामी, जानते ही हो कि इस अकिंचन के पास क्या है और क्या नहीं है। निस्तेज सूर्य, कांतिहीन चन्द्र, दान न दे सकने वाली दान चिंतामणि! इनका रहना, न रहना बराबर है। प्रभो अब मेरे घर में सुवर्ण

वृष्टि हो ताकि आए हुए ये अतिथि खाली हाथ न लौट पावें। फिर मुझे समाधिमरण ही दे दो। कोई बात नहीं।''

इस प्रकार उसका रोवाँ-रोवाँ माँग रहा था। ठीक उसी समय इसके पोते पोतियाँ वहाँ चली आई। चारों ने देखा कि दादी के आँसू बह रहे हैं। गुंडुमब्बे से रहा नहीं गया। पूछ लिया -

''दादी रो क्यों रही हो ?''

अब्बकब्बे ने प्रश्न किया।

''दादी ? तबीयत तो ठीक है ?''

पद्मब्बे ने हाथ से छूकर प्रश्न किया।

''दादी! बताओ तुमको क्या चाहिए ? रोओ मत''

''जो चाहो माँगो मैं ला दूँगा। तुम रोओगी तो मैं भी रो पड़ूँगा।''

चौथे नागदेव ने सहानुभूति में सनी आवाज में कहा और हथेली से आँसू पोंछ डाले।

''बच्चो! मैं क्या उत्तर दूँ ? तुममें से कोई मेरी माँग पूर्ण नहीं कर सकोगे।''

''ऐसी बात नहीं दादी। हम अवश्य कर देंगे।''

प्रत्येक ने विश्वासपूर्वक कहा।

''देखो! मुझे बहुत पैसा चाहिए। मेरे हाथ में एक पैसा तक नहीं है।''

अत्तिमब्बे ने अपने पोतों के सम्मुख अपनी शोचनीय स्थिति का वर्णन किया।

''बस! पैसे के लिए रो रही हो ?''

इतना कहकर सब वापस गए और कुछ ही क्षणों में लौट आए।

''दादी! लो इतना मेरे पास है।''

गुंडुमब्बे ने अंजुली भर सुवर्ण-मुद्रा लाकर अत्तिमब्बे के सामने रख दी। इसी प्रकार अब्बकब्बे और पद्मब्बे ने किया।

''दादी, अब मेरे पास सिर्फ इतना ही धन है। इसमें आधा तुम लो। आधा मेरे पास रहेगा।''

नागदेव ने बाँटते हुए कहा।

''बेटा! तुम्हारी बहिनों ने अपनी सारी पूँजी दे दी। तुम तो केवल आधा देने की बात कहते हो। यह क्यों ?''

नागदेव को गोद में लेकर प्यार से अत्तिमब्बे ने प्रश्न किया।

''दादी! और आधा हिस्सा बचाकर रखे रहूँगा। और कभी तुम्हें जरूरत पड़े तो ला दूँगा। समझी!''

बहुत ही सहज भाव से छोटे नागदेव ने उत्तर दिया। अत्तिमब्बे का हृदय फूल उठा। आनंदाश्रु के फौव्वारे फूट निकले।

कंजूस कहीं का। दादी! यह बड़ा कंजूस है।

सब बहिनों ने एक स्वर में करार दिया।

''पगली! तुम सभी मेरे ही समान मूर्ख हो। यह मेरा मुन्नू बड़ा समझदार है और होशियार है। एक और उदारता से दान करता है तो दूसरी ओर कुछ आपदधन भी बचाए रखता है। दोनों चाहिए नहीं तो मेरे ही समान तुम लोगों को रोना पड़ेगा।''

इस प्रकार पोतों को समझा बुझाकर देखा साढ़े तीन अंजुली भर सुवर्ण-मुद्राएँ थीं। अत्तिमब्बे ने उन्हें अंजुली में भरकर भक्तिपूर्वक पार्श्वनाथ का स्वर्णाभिषेक किया; कुबेर का खजाना ही मानों चढ़ा दिया। क्षण भर अंतर्मुखी हो ध्यानस्थ रही। आँखें क्या खुली देखती है सामने एक ओर अण्णिग दूसरी ओर इरिवबेडंग खड़े हैं। पोते सब चले गए हैं।

''इरिवबेडंग! कब आए बेटा ? तैलप जी कुशल से तो हैं ? महाराज्ञी चक्रेश्वरी देवी कैसी हैं ?''

''माताजी! सब कुशल हैं। आपके दर्शन की इच्छा हुई चले आए।...'' इरिवबेडंग ने उत्तर दिया।

''चक्रवर्ती सार्वभौम का इस बुढ़िया के दर्शन की चाह! कहो, किसलिए आए ?''

कह अत्तिमब्बे हँस पड़ी।

''आपको भूलूँ ? तब तो मेरा चक्रवर्ती पद आधी घड़ी भी नहीं रहेगा, माँ! सचमुच आप ही के दर्शन के लिए आया। पिताजी ने आपकी सेवा में

कहलवा भेजा है कि नागदेव के स्वर्गवास होने पर नियमानुसार राज्य की ओर से कुछ क्षतिपूर्ति देनी थी। उस समय भूल गए। अब एक सप्ताह से पश्चाताप के मारे उन्हें सोते जागते शान्ति नहीं मिल रही है और आपदधन के रूप में मल्लप देव की धरोहर भी हमारे पास पड़ी हुई है। वह भी आपको मिलनी चाहिए। इसे चुकता कर देने के निमित्त मुझे भेजा है। हिसाब लगाने पर कुल दो करोड़ दो लाख मुद्राएँ निकलीं। उसे हाथियों पर लादकर यहाँ ले आया हूँ, स्वीकार कीजिए और शुभाशीर्वाद दीजिए ताकि हमारे वंश का भला होता रहे।''

अत्तिमब्बे ने पूजा विग्रह हाथ में लिया और ऊपर उठाते हुए कहा...

''प्रभु पार्श्वनाथ सबका भला करेगा। मेरे बाल बच्चे अलग नहीं, तुम अलग नहीं हो। जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम लोगों का बाल तक बांका नहीं होगा।''

फिर पुष्प का प्रसाद इरिवबेडंग को दिया। चरणामृत दिया। जैसे बाल बच्चों को दिया करती थी वैसे ही भोग चढ़ाए गए। मेवा आदि भी इरिवबेडंग और अण्णिग को दिया।

ठीक उसी समय रन्न कवि हाँफते हाँफते आ उपस्थित हुआ। अत्तिमब्बे के दर्शन से संतुष्ट होकर बोला ...

''माताजी! इधर एक सप्ताह से न जाने आप क्यों खिन्न हैं। कम से कम मुझसे अपना दु:ख कह देतीं।''

घबराये हुए पूछा।

''बेटा! कैसे जाना कि मैं दु:खी हूँ।''

''माँ! मैं भत्तग्राम में भले ही रहूँ पर मेरा मन सदा आप ही के चरणों में लीन रहता है। आँख अंधी हो पर हिये की आँख अंधी नहीं होती। मेरे साथ चलिए। प्रमाण दे दूँगा।''

इतना निवेदन करके अत्तिमब्बे, अण्णिग और इरिवबेडंग को साथ ले गया और महल के आंगन में अपने रथ पर स्थित मूर्ति को अनावरण कर देने का आग्रह अत्तिमब्बे से किया। अत्तिमब्बे ने विवश होकर उसका अनावरण किया और दंग रह गई। वहाँ अत्तिमब्बे को ही पद्मासनासीन सुवर्ण प्रतीक के रूप में पाया। उसकी आँखों से बहे आँसू के चिह्न स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। इसे देखकर

सब आश्चर्य चकित हुए।

तात! कहाँ से इतना सोना जुटाया ?

अत्तिमब्बे ने रन्न से पूछा।

''माताजी! आपका दिया हुआ है, आपने मेरा तुला भार करा दिया था। उस सोने से आपकी मूर्ति गढ़वाकर नित्य पूजा कर रहा हूँ।''

''जीवित व्यक्तियों की मूर्ति नहीं बनवानी चाहिए। मृत व्यक्तियों की मूर्ति बनायी जाती है।''

अत्तिमब्बे ने कहा।

''माताजी! आप तो अमर हैं। आप इस नियम की अपवाद हैं।''

रन्न ने गंभीरता पूर्वक कहकर नमस्कार किया।

''पागल कहीं का! सोना दिया था आराम से रहने के लिए। बाल बच्चों और उनकी माँ के आभरण बनवाते। आराम का जीवन बिताते। उसके बदले मुझ जैसी साधारण स्त्री की मूर्ति बनवाने में मनों सोना लगा बैठे। मुझ जैसी विधवा अनाथिनी की मूर्ति बनवाकर पूजा की ? तुमने अपनी मूर्खता में इस तरह चार चाँद लगा दिए हैं। मेरे नानाजी कहा करते थे कि कवियों का व्यवहार ज्ञान शून्य रहता है। तुम्हारा बर्ताव साक्षी भर रहा है। इस सुवर्ण से सहस्रों जिन मूर्तियाँ बनवा सकते थे।....'' अत्तिमब्बे ने रन्न को डांटा।

''माताजी! जिनेन्द्र आपकी दृष्टि में बड़े हैं; पर हमारी दृष्टि में आप बड़ी हैं! आपने मेरी पत्नियों को सोलह शृंगार से एड़ी चोटी एक कर दी है। मेरे बेटे राव को इतना दिया है कि कोई हिसाब नहीं कर पाता। मेरी मुन्नी छोटी अत्तिमब्बे का तुलाभार करके चोखा सोना ही दे रखा है। अब मुझे गहनों की भूख नहीं है। मैं जन्म से रत्न हूँ। यदि किसी दिन मैं निर्धन भी बनूँ तो आपकी मूर्ति के सामने बैठ प्रार्थना करूँगा।''

यह कहते समय रन्न भाव-परवश था।

सबों ने मिलकर भक्ति पूर्वक अत्तिमब्बे की सुवर्ण प्रतिमा उठाई और सीधे महल में दीवानखाने ले आए। वहाँ इरिवबेडंग के द्वारा लगाए गए सोने के ढेर के सम्मुख रखकर इरिवबेडंग, अण्णिग और रन्न तीनों ने मिलकर उस मूर्ति का अभिषेक ऐसे ही किया। जैसे जिन मूर्ति का किया जाता है। जलाभिषेक,

क्षीराभिषेक और गंधाभिषेक किया। अंजुलि में भर-भर कर सुवर्ण से भी अभिषेक किया। बहू-बेटे, बाल बच्चे सबने मिलकर 'अत्तिमब्बे की जय!' ''दानचिंतामणि की जय!' ''सम्यक्त्व चूड़ामणि की जय!'' कहकर जयघोष किया।

अत्तिमब्बे को बच्चों का यह खेल अच्छा लगा। वह आनंद से फूल उठी। पार्श्वनाथ की हरी मूर्ति को अपनी सुवर्ण-मूर्ति की जाँघों पर रखा और कहा -

''महाप्रभो! इन बालकों को आशीर्वाद दो। मैं नहीं जानती कि ये क्या कर रहे हैं। अच्छा है या बुरा, तुम ही जानो। इसे स्वीकार करो। इन पर अनुग्रह करो।''

भक्तिभाव से अत्तिमब्बे गद्‌गद् हो उठी।

अत्तिमब्बे की सुवर्ण प्रतिमा की जाँघों पर पार्श्वनाथ की मूर्ति रख देने से ऐसा लग रहा था मानो दानचिंतामणि सम्यक्त्व में पनपकर फूली-फूली और पगी हो।

❑❑❑

परिशिष्ट

1. **अकृत्रिम जिनालय** – निसर्ग निर्मित जिनमंदिर कुल 8, 36, 67, 458 ऐसे मंदिर तीनों लोकों में पाए जाते हैं। यहाँ केवल देवताओं की ओर से जिनों की पूजा होती है।
2. **अनुमोदन पुण्य** – किसी सत्कर्म के अनुमोदन से मिलने वाला पुण्य।
3. **अनुभवमंटप**– महात्मा बसवेश्वर द्वारा स्थापित धार्मिक सभा का नाम अनुभवमंटप है। अल्लमप्रभु इस महासभा के अध्यक्ष थे, जिन्होंने शिव–भक्त संतों का मार्गदर्शन किया था।
4. **अणुव्रत** – अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। प्रत्येक जैन श्रावक (गृहस्थ) को चाहिए कि इनका पालन करें। इनको पंचाणुव्रत कहते हैं। जैन मुनि जब इनका आचरण करते हैं, तब इनको महाव्रत कहते हैं।
5. **अपराजित** – पूर्व विदेह के अजितवीर्य तीर्थंकर।
6. **आर्यिका** – जैन संन्यासिनी, विरक्ता या साध्वी।
7. **ईशानकल्प** – पृथ्वी के उर्ध्व भाग में क्रमशः दो–दो लोकों के आठ स्तर हैं, जिनको कल्प कहते हैं। प्रथम स्तर में दक्षिण की ओर फैले हुए लोक को ईशानकल्प कहते हैं।
8. **उर्जयंत** – जूनागढ़ (गुजरात) के तीन मील दूरी पर ऊँचे पर्वत गिरनार को उर्जयंत कहते हैं। यहीं से बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ ने निर्वाण प्राप्त किया।
9. **कषाय सल्लेखना** – अंतरंग के रागद्वेष को क्रमशः कुचल डालने वाला व्रत।
10. **कंद** – कन्नड़ के एक छन्द का नाम जो चार मात्राओं वाले गणों से रचित होता है।
11. **कुरुळ् सवण** – जटाधारी जैन तपस्वी। कन्नड़ के प्रसिद्ध कवि पोन्न (950 ई.) थे।
12. **कुन्दकुन्द** – ईसा की पहली सदी में विद्यमान जैनाचार्य। जनश्रुति के

अनुसार इन्होंने चौरासी ग्रन्थों की रचना की, उनमें से प्रवचनसार, नियमसार, समयसार और पंचास्तिकाय आदि चौदह दार्शनिक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

13. **कैलाशगिरि** – आदि तीर्थंकर आदिदेव का निर्वाण-स्थान।

14. **गुणस्थान** – जैनागमों के अनुसार कषायमुक्ति के चौदह गुणस्थान हैं।

15. **क्षुल्लक दीक्षा** – जैन श्रावकों की ग्यारह अवस्थाओं में से एक। इस अवस्था को प्राप्त होने पर जैन श्रावक को चाहिए कि वह परिव्राजक हो आत्म साक्षात्कार के लिए उद्योगशील रहे।

16. **चंपू** – गद्य-पद्यमय रचना को चंपू कहते हैं। कन्नड़ साहित्य के प्रारम्भ काल में चंपू काव्यों की इतनी अधिक रचना हुई कि उस काल को चंपू काव्य युग भी कहते हैं।

17. **चामुण्डराय** – 10 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ये गंगराजा के मंत्री थे। इन्होंने अनेक युद्धों में भाग लिया था तथा समर परशुराम की उपाधि पायी थी। इन्होंने कन्नड़ गद्य में तीर्थंकरों का चरित लिखा है। इन्हीं के द्वारा सन् 891 में श्रवणबेलगोल में विश्वविख्यात गोम्मटेश्वर की मूर्ति की प्रतिष्ठा हुई।

18. **चम्पापुरी** – बारहवें तीर्थंकर वासुपूज्य का जन्म और निर्वाण स्थान। भागलपुर (बिहार) के पास आजकल चम्पापुर नाम से यह स्थान प्रसिद्ध है।

19. **चिदम्बर पुरुष** – (चित्+अम्बर+पुरुष) आत्मा का सहज स्वरूप अर्थात् आकाश के समान खुला या दिगम्बर रूप। रत्नाकर ने इसी को चिदम्बर पुरुष कहा है। इसका अर्थ परमात्मा भी होता है।

20. **जन्माभिषेक** – तीर्थंकरों के जीवन में मनाये जाने वाले पंचकल्याणक में एक उत्सव।

21. **जकणाचारी** – कर्नाटक के एक प्रसिद्ध शिल्पी। कहा जाता है कि इन्होंने ही बेलूर (कर्नाटक) का चेन्नकेशव मंदिर बनाया। कुछ विद्वानों में इनके अस्तित्त्व के सम्बन्ध में मतभिन्नता है।

22. **जयधवल** – ईसा की दूसरी सदी में गणधर मुनि ने 180 गाथाओं में कषाय-प्राभृत नामक आगम ग्रन्थ की रचना की। उस पर वीरसेनाचार्य एवं उनके शिष्य जिनसेनाचार्य ने (814-892) क्रम से 20,000 और 40,000 श्लोकात्मक व्याख्या लिखी है। इस व्याख्या का नाम श्री जयधवल है।

23. **नारणप्पा** – चौदहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध वैष्णव भक्त कवि जिन्होंने कन्नड़ में महाभारत की रचना की है।

24. **निरंजन सिद्धि** – कर्मरहित परमात्मा।

25. **त्रिपदी** – यह तीन चरणों का कन्नड़ का अपना छन्द है।

26. **दिव्यध्वनि** – तीर्थंकर की कल्याणकारी वाणी।

27. **धवल** – ईसा की दूसरी सदी में भूतबली और पुष्पदन्त आचार्यों ने मिलकर 600 सूत्रों में जिनागमों का संग्रह किया। इस पर वीरसेनाचार्य (814–872) ने 72,000 श्लोकों की व्याख्या लिखी। इस बृहत्कृति का नाम श्री धवल है।

28. **पंचकल्याणक** – तीर्थंकर बनने वाले 1. माँ के गर्भ में आने के छह महीने पूर्व, 2. जन्म लेने पर, 3. वैराग्य प्राप्ति के बाद दीक्षा के समय, 4. केवलज्ञानी बनने के समय और 5. अघातिकर्मों से मुक्त होकर सिद्ध बनने के अवसर पर चतुर्निकाय अमरों द्वारा मनाए जाने वाला उत्सव।

29. **पंचनमस्कार** – प्रसिद्ध जैन महामंत्र।

30. **पंचपरमेष्ठी** – अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधु।

31. **पंप** – कन्नड़ के प्रथम महाकवि हैं, जिन्होंने आदिपुराण और विक्रमार्जुन विजय अथवा पंप–भारत की रचना की है।

32. **परीषह** – मुक्तिपथ के रोड़े।

33. **पुद्गल** – यह एक पारिभाषिक शब्द है। आत्मा के सहज स्वरूप के अतिरिक्त सब शेष पुद्गल ही हैं। कर्म, रुग्णता, अंधकार–प्रकाश, सुनने और बोलने के शब्द– ये सब पुद्गल ही हैं। आत्मा के सहज स्वरूप पर यह आवृत्त रहता है।

34. **परमौदारिककाय** – विशेष पवित्र तत्त्व से निर्मित 108 लक्षणों से युक्त अर्हंत देह।

35. **पिच्छिका** – जैन साधु के हाथ में रहने वाले मयूर पंख का वह उपकरण जो जीवदया के लिए धारण किया जाता है।

36. **भवाबलि** – जीव के पूर्व जन्मों की गणना।

37. **भव्य** – जैन तत्त्वों को ग्रहण कर उनका आचरण करके मुक्ति प्राप्त करने

की योग्यता वाले को भव्य जीव कहते हैं।

38. **भरत-बाहुबली** - ये दोनों तीर्थंकर के पुत्र थे। भरत नाम पर ही हमारा देश भारत हुआ। बाहुबली इनके छोटे भाई थे। बाहुबली अपने पिता से भी पहले सिद्ध होकर प्रख्यात हुए। इन्हीं का विग्रह (गोम्मटेश्वर) श्रवणबेलगोल में है।

39. **भेदविज्ञान** - आत्मा को छोड़ शेष सबको अपने से सम्बन्धित न मानकर चिंतन करना अथवा संसार में पद्मपत्रमिवांभसि रहना भेदविज्ञान है।

40. **मलेनाडु** - वह पर्वतीय प्रदेश जहाँ अधिक वर्षा होती है।

41. **यक्षगान** - कन्नड़ का लोक गीत-नाट्य।

42. **रत्नकरण्डकश्रावकाचार** - जैनाचार्य समन्तभद्र (दूसरी शताब्दी) की रचना का नाम। इसमें जैन आचारों का वर्णन है।

43. **रत्नत्रय** - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र को रत्नत्रय कहते हैं, जो जैनधर्म की जड़ें हैं। कन्नड़ साहित्य में पंप, रन्न और पोन्न ये तीनों कवि रत्नत्रय नाम से प्रख्यात हैं।

44. **रन्न** - इन महाकवि में कन्नड़ में गदायुद्ध काव्य की रचना (10 वीं शताब्दी उत्तरार्द्ध) की है। इनको कवि चक्रवर्ती उपाधि प्राप्त थी।

45. **राघवांक** - इन्होंने (13 शताब्दी) कन्नड़ में हरिश्चन्द्र काव्य, सिद्धराम चरित, सोमनाथ चरित आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

46. **लक्ष्मीमंटप** - जिस सभा में तीर्थंकर धर्म का बोध करते हैं, उसको समवसरण कहते हैं। उसमें जिस सभा में रत्नवेदिका पर तीर्थंकर विराजमान होते हैं, उसको लक्ष्मीमंटप (गंधकुटी) कहते हैं।

47. **बलदेव** - त्रिषष्टि-शलाका-पुरुषों में नौ बलदेव माने जाते हैं।

48. **श्रीमंधर** - विदेहक्षेत्र के एक जैन तीर्थंकर का नाम। विदेह जम्बूद्वीप का एक विभाग है।

49. **श्रुतकेवली** - जैनागमों के पारंगत महर्षि को श्रुतकेवली कहते हैं। महावीर के बाद ऐसे महर्षियों ने जैन-धर्म की रक्षा की। भद्रबाहु (320 ई. पू.) अन्तिम श्रुतकेवली हैं। उन्होंने श्रवणबेलगोल में चन्द्रगिरि पर सल्लेखना ली।

50. **शोभन संधि** – रत्नाकर के भरतेश–वैभव में 80 संधियाँ (सर्ग) हैं। भूमिका का रूप में जो चार संधियाँ हैं, उनको शोभन संधि कहते हैं। (4+80=84)

51. **सम्यक्त्व** – जैनधर्म में विश्वास कर रत्नत्रय की साधना करना सम्यक्त्व है।

52. **सम्यक्चारित्र** – जैनागमों के अनुरूप जीवन बिताना।

53. **लोच** – सिर और दाढ़ी–मूँछ के बाल उखाड़ने की क्रिया।

54. **वासुदेव** – त्रिषष्टि–शलाका–पुरुषों में नौ वासुदेव और नौ प्रतिवासुदेव भी हैं। प्रतिवासुदेव को पराजित करके वासुदेव अर्ध–चक्री बनते हैं।

55. **विदेहक्षेत्र** – जहाँ सदैव तीर्थंकरों का सद्भाव पाया जाता है। जम्बूद्वीप के सप्त क्षेत्रों में चौथा।

56. **समवसरण** – वह सभा जहाँ तीर्थंकर धर्म का बोध कराते हैं। देवेन्द्र दिव्य सामग्री से इसका निर्माण करते हैं। यह जहाँ चाहे वहाँ चलित हो सकता है और इसमें कितने ही लोग बैठ सकते हैं।

57. **सम्मेदशिखर** – यहाँ से बीस तीर्थंकर निर्वाण को प्राप्त हुए हैं। झारखण्ड राज्य में स्थित तीर्थ। समुद्र सतह से 4481 फुट ऊँचा है।

58. **सामायिक** – त्रिकाल संध्या में की जाने वाली प्रार्थना।

59. **सिद्ध** – देहधारी परमात्मा को अर्हन्त कहते हैं। देह से मुक्त परमात्मा को सिद्ध कहते हैं। यह आत्मविकास की परिपूर्ण सिद्धि की स्थिति है।

60. **सिद्धलोक** – जैनागमों के अनुसार त्रिलोक में अंतिम लोक, जहाँ सिद्ध जीव अनंतकाल तक स्थिर रहते हैं।

61. **हंसकलोपासना** – अन्तर्मुखी होकर आत्म चिन्तन में लीन रहने की स्थिति।

62. **हरिहर** – इन्होंने कन्नड़ में गिरिजा–कल्याण (महाकाव्य) तथा शिव भक्तों का चरित लिखा है।

❑❑❑